मुनिश्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन : पुष्प ४८

○ पुस्तक—जैन श्रीकृष्ण-कथा

○ लेखक—उपाध्याय श्री मधुकर मुनि

○ सम्पादक—श्रीचन्द सुराना 'सरस'

○ सहयोगी सम्पादक—डा० बृजमोहन जैन

○ सम्प्रेरक—श्री विनयमुनि 'भीम'
श्री महेन्द्रमुनि 'दिनकर'

○ प्रथमावृत्ति—वि० स० २०३५ श्रावण
ई० सन् १९७८ अगस्त

○ मुद्रक—श्रीचन्द सुराना के लिए
श्री विष्णु प्रिंटिंग प्रेस, आगरा–२

○ मूल्य . पाँच रुपये मात्र [सयुक्त ३ भाग]

प्रकाशन में अर्थ सहयोग

जैन श्रीकृष्ण-कथा के प्रकाशन मे सस्था को अनेक उदारचेता सज्जनो का अर्थ सहयोग प्राप्त हुआ है। उनके सहयोग के आधार पर ही हम साहित्य को लागत मूल्य पर ही पाठको के हाथो मे पहुँचाते है। अनेक प्रकाशनो मे तो अर्थ हानि उठाकर भी कम मूल्य मे देने की स्थिति रही है। अत सहयोगियो के प्रति आभार प्रदर्शन के साथ ही उदारमना सज्जनो से सहयोग का अधिकाधिक हाथ बढाते रहने की विनती करते है।

❀ १००१) एक गुप्त दानी सज्जन।

●

❀ ५०१) श्री भवरलालजी लूकड, पाली
❀ ५०१) श्री जवरीलालजी लूँकड, पाली

आपके दो अनुज भ्राता भी है। श्री गुमानमलजी और लाभचन्द जी।

आप दोनो सहोदर भ्राता है। आपने अपने पूज्य पिताजी श्री धनराज जी की पुण्यस्मृति मे यह अर्थ-सहयोग दिया है।

आप दोनो भ्राता धार्मिक प्रकृति के सज्जन पुरुष है। दोनो के पापड का व्यवसाय है। श्री भँवरलालजी इस समय इन्दौर मे रहते है। श्री जवरीलाल जी अपनी जन्म-भूमि पाली मे ही अपना व्यवसाय करते है।

इस अर्थ-सहयोग के लिये सस्था भ्रातृ युगल का आभार मानती है। समय-समय पर सस्था को आपका अर्थ सहयोग मिलता रहेगा, ऐसी आशा है।

●

२०१) श्रीमती नाथीवाई पाली
धर्म-पत्नी—स्व० श्री केसरीमल जी तलेसरा

२०१) श्रीमती सुकनियावाई पाली
धर्म-पत्नी – स्व० श्री धनराजजी लूकड

१२५) श्रीमती सायर वाई पाली
धर्म-पत्नी—श्री सज्जनराजजी मूथा

१००) श्रीमती मोहनबाई पाली
धर्म-पत्नी—स्व० श्री छोटमलजी धाडीवाल

१००) श्रीमती वस्तुवाई पाली
धर्म-पत्नी—फूलचन्दजी काठेड

१००) श्रीमती सुकदेवी पाली
धर्म-पत्नी—श्री प्रेमराजजी मेहता

५१) श्रीमती मोहनवाई पाली
धर्म-पत्नी—स्व० श्री मुकनचदजी मरलेचा

५१) गुप्त अर्थ-सहयोगिनी

५०) श्रीमती ज्ञानावाई पाली
धर्म-पत्नी—श्री रूपराजजी मूथा

२१) श्रीमती घिनियावाई पाली
धर्म-पत्नी—श्री चम्पालालजी सकलेचा

उक्त सभी सहयोगियो के प्रति हम आभार व्यक्त करते है।

—मन्त्री
मुनिश्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन, ब्यावर।

प्रकाशकीय

आज से लगभग ६ वर्ष पूर्व उपाध्याय श्री मधुकर मुनिजी म० के अन्त करण मे एक योजना स्फुरित हुई थी, कि जैन साहित्य के अक्षय-अपार कथा साहित्य का दोहन कर सरल-सुबोध भाषा-शैली मे जैन कथा वाड्मय का प्रकाशन किया जाय। मुनिश्री की यह शुभ भावना शीघ्र ही फलवती हुई और कार्य प्रारम्भ होगया। अब तक इस योजना मे ३० भाग प्रकाशित हो चुके है, जिसमे जैन कथा साहित्य की ३०० से अधिक प्रामाणिक कहानियो का प्रकाशन हो चुका है।

गत वर्ष जैन रामकथा का प्रकाशन हुआ था। एक ही जिल्द मे पॉच भाग निविष्ट कर लगभग ५२० से अधिक पृष्ठो की वह पुस्तक पाठको के हाथो मे पहुँची, सर्वत्र ही उसका आदर हुआ। कथा के साथ-साथ वह एक प्रकार का सदर्भ ग्रथ भी बन गया था जिसमे जैन राम-कथा एव वैदिक रामकथा का व्यापक व तुलनात्मक वर्णन भी था। अब उसी शैली मे **जैन श्रीकृष्ण-कथा** तीन भाग एक ही जिल्द मे पाठको के हाथो मे प्रस्तुत है।

हमे विश्वास है यह प्रकाशन भी पूर्व प्रकाशनो की भॉति पाठको को मनोरजन के साथ शिक्षा प्रदान कर ज्ञान वृद्धि मे उपयोगी होगा।

अमरचंद मोदी

—मत्री

मुनिश्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन

स्व-कथ्य

वासुदेव श्रीकृष्ण भारतीय सस्कृति के ही नही, अपितु विश्व संस्कृति के एक महापुरुष है। धर्म और राजनीति—दोनो ही क्षेत्रो मे उनका विशिष्ट अवदान रहा है।

जैन परम्परा मे तिरेसठ शलाका (विशिष्ट) पुरुष वताये गये है, उनमे जहाँ भगवान आदिनाथ, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ और भगवान महावीर की गणना की गई है वही भरत चक्रवर्ती, मर्यादा पुरुषोत्तम राम और वासुदेव श्रीकृष्ण के नाम भी सम्मिलित है। श्रीकृष्ण नवम वासुदेव और वलभद्र नवम वलदेव हुए है। जैन आगमो व पश्चात्वर्ती साहित्य मे वासुदेव श्रीकृष्ण के कर्मयोगी जीवन के विविध प्रसग आते है। घटनाओ व प्रसगो की दृष्टि से श्रीराम के जीवन से भी अधिक घटनाएँ श्रीकृष्ण के जीवन की जैन आगम-साहित्य मे मिलती हैं। जैन आगमगत वर्णन का अध्ययन करने से वासुदेव श्रीकृष्ण का उदात्त जीवन एक कर्मयोगी के रूप मे सामने आता है। वे न्यायनिष्ठ, सत्यवादी, प्रजावत्सल, महान पराक्रमी और परम नीतिनिपुण तो है ही, इसी के साथ महान धर्मप्रेमी, उदार, सहिष्णु, गुणज्ञ, मित्र-सहायक और अनीति के कट्टर विरोधी, महान शासक भी है।

जैन परम्परा एव हिन्दू परम्परा मे, श्रीकृष्ण के जीवन विपयक, व्यक्तित्व विपयक मतभेद भी है और समानताएँ भी। मतभेद होना कोई वुरी वात नही है, यह विचार स्वातत्र्य का सूचक है, जो भारतीय सस्कृति की अपनी शाश्वत गरिमा है। जैन परम्परा मे दर्शन की दृष्टि से आत्मा के विकास की अनन्त सभावनाएँ है। आत्मा परमात्मा वनता है, किन्तु परमात्मा, भगवान या ईश्वर कभी आत्मा के रूप मे धरा पर पुन जन्म धारण कर अवतार नही लेता। जवकि हिन्दूधर्म

'अवतारवादी' विचारधारा का समर्थक है। महापुरुषो के सम्वन्ध मे जैनो व हिन्दुओ मे यही मौलिक मतभेद है। राम व श्रीकृष्ण के विषय मे भी इसी धारणा के कारण मतभेद हुए है, कथाओ मे अन्तर आया है। मेरे विचार मे आज इस वात का महत्व उतना नही रहा, कि कोई राम या श्रीकृष्ण को जन्म से ही भगवान माने या कृतित्व से भगवान माने, आज तो आवश्यकता है कि उनका उदात्त चरित्र हमे क्या, कितनी और कैसी प्रेरणा देता है। हम उनके आदर्शो से अपना जीवन-विकास कितना साधते है और हम कितना उनकी शिक्षाओ का पालन करते है। अस्तु।

प्रस्तुत जैन श्रीकृष्ण-कथा के आलेखन मे मूलत मेरा दृष्टिकोण समन्वय-प्रधान रहा है। श्वेताम्बर परम्परामान्य त्रिषष्टि-शलाका पुरुषचरित के आधार पर श्रीकृष्ण-कथा लिखी गई है। आगम व वसुदेवहिडी आदि ग्रथो से भी कथासूत्र जोडा है। दिगम्वर जैन परम्परा के प्रमाणभूत ग्रन्थो मे कही-कही घटना मे, कही घटना के कारणो मे व कही व्यक्तियो के नामो मे अन्तर है, पर कोई मौलिक अन्तर नही है। जवकि वैदिक परम्परा के ग्रथो—श्रीमद्‌भागवत, महाभारत आदि मे काफी अन्तर है। हजारो वर्ष की साहित्य धारा मे इतना अन्तर हो जाना कोई आश्चर्यजनक वात भी नही है। क्योकि विचारक्षेत्र मे सदा से ही **'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना'** का सिद्धान्त चलता आया है। फिर भी मेरा प्रयत्न यह रहा है कि मतभेद को वढावा न देकर उसकी दूरी को पाटना व मतभेदजन्य कटुता को मिटाना—ताकि सभी धार्मिक व विचारक एक दूसरे को समझे, निकट आये और जीवन मे सहिष्णु वने। धर्म-सहिष्णुता वहुत वडी चीज है, वह तभी आयेगी जव हम समभाव के साथ एक दूसरे को पढेंगे-सुनेंगे। इसी कारण जैन श्रीकृष्ण-कथा के लेखन मे, फुटनोट के रूप मे भागवत, महाभारत आदि के कथान्तरो का उल्लेख भी किया गया है। कुल मिलाकर वासुदेव श्रीकृष्ण के 'लोकमगलकारी' अखण्ड स्वरूप को वनाये रखने की चेष्टा मैंने की है।

मेरे विचार व दृष्टिकोण के अनुकूल इस ग्रन्थ का सम्पादन हुआ है। मेरे आत्मप्रिय सहयोगी श्रीचन्दजी सुराना 'सरस' ने अथक श्रम करके पूर्वग्रन्थो की भाँति ही इसका भी विद्वत्तापूर्ण सपादन किया है। डा० श्री वृजमोहन जी जैन का भी अच्छा सहयोग रहा है। प्रारम्भिक प्रस्तावना मे सपादक-बन्धु ने श्रीकृष्ण-कथा का अनुशीलन कर जो वक्तव्य लिखा है, वह प्रत्येक पाठक को पठनीय व मननीय है। मैं सम्पादकद्वय को भूरिश साधुवाद देता हूँ।

मेरे प्रेरणास्रोत श्रद्धेय स्वामीजी श्री वृजलालजी महाराज की वात्सल्यपूरित प्रेरणा का ही यह सुफल है कि मैं यत्किंचित् साहित्य-सर्जना कर लेता हूँ। श्री विनयमुनि एव श्री महेन्द्रमुनि की सेवा शुश्रूषा से मेरी साहित्य सेवा गतिशील रहती है। गुरुजनो की कृपा व शिष्यो की भक्ति के प्रति मेरा हृदय पूर्ण कृतज्ञ है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि पूर्व पुस्तको की भाँति ही पाठक जैन श्रीकृष्ण-कथा को मनोयोगपूर्वक पढेगे। हाँ, इस पुस्तक के साथ ही त्रिषष्टिशलाका पुरुषो के जीवन चरित्र का लेखन भी सपन्नता को प्राप्त हो रहा है। अगले भागो मे जैन साहित्य की स्फुट कथाओ को लेने का विचार है। अस्तु

जैन स्थानक
व्यावर

—मधुकर मुनि

प्रस्तावना

भारतीय साहित्य में श्रीकृष्ण-कथा

भारतीय वाङ्मय मे जितना अधिक साहित्य श्रीकृष्ण के सम्बन्ध मे मिलता है, उतना अन्य किसी महापुरुष के सम्बन्ध मे नही। इनके असाधारण, अद्भुत और अलौकिक व्यक्तित्व एव कृतित्व के प्रति जैन व हिन्दू कवि ही नही मुसलमान कवि भी आकर्षित हुए और उन्होने भी इनका गुणानुवाद किया, जिनमे रसखान, रहीम आदि प्रमुख हैं।

श्रीकृष्ण का चरित्र इतना विविधतापूर्ण और विचित्र रहा है कि प्राचीन काल मे अब तक इनके पुजारी और आलोचक दोनो ही रहे है। जब ये विद्यमान थे तब भी दुर्योधन, शल्य, जरासध आदि ने तो आलोचना की ही, इनकी पटरानियो मे से सत्यभामा भी इन्हे नटखट और चालाक समझती रही। दूसरी ओर उन पर अडिग विश्वास करने वाले पाडव, रुक्मिणी आदि अनेक लोग भी रहे। विदुर का विश्वास तो पूजा—उपासना की सीमा तक बढा हुआ था। सभवत यही कारण था कि एक ओर कुछ लोग इन्हे 'चोराग्रगण्य' की उपाधि से विभूषित करते थे तो दूसरी ओर अधिकाश जनता इन्हे 'लोकमगलकारी' के रूप मे देखती थी। इसी कारण श्रीकृष्ण चरित्र विविधतापूर्ण हो गया—कही अलौकिक और चमत्कारी घटनाएँ जुड गई हैं तो कही माखनचोरी, गोपीरजन आदि की लीला प्रधान घटनाएँ भी। किन्तु इतना सत्य है कि अपने विभिन्न रूपो और विविध प्रकार के अद्भुत क्रियाकलापो द्वारा जितना इन्होने भारतीय मानस को प्रभावित किया उतना और किसी ने नही। उनका जीवन चरित्र भारत की तीनो धर्म परम्पराओ—वैदिक, बौद्ध और जैन—मे मिलता है।

वैदिक परम्परा मे श्रीकृष्ण

मथुरा के राजा कस के बन्दीगृह मे देवकी की कोख से वसुदेव-पुत्र कृष्ण का जन्म हुआ। 'देवकी का पुत्र कस को मारेगा' इस आकाशवाणी को

सुनकर कस उन दोनो को बन्दीगृह मे डाल देता है। अर्द्ध-रात्रि को वि० पू० स० ३१२८ की भाद्रपद कृष्णा अष्टमी, वृषभलग्न, रोहिणी नक्षत्र, हर्षल योग मे उनका जन्म हुआ। पुत्र की रक्षा हेतु मूसलाधार बरसात मे उफनती यमुना नदी को पार कर वसुदेव उन्हे गोकुल मे नन्द के पास ले जाते है। वहाँ से वे नन्द-सुता को लाते है, जिसे मार कर कस अपनी सन्तुष्टि करता है। इससे पहिले भी वह इसी प्रकार देवकी के छह पुत्रो को मार चुका है किन्तु यह कन्या 'तुम्हारा शत्रु तो उत्पन्न हो गया है और गोकुल मे वृद्धि पा रहा है' कहकर आकाश मे उड जाती है।

इसके पश्चात् कृष्ण गोकुल मे बढते है। वहाँ बाल-लीलाओ से नन्द-भामिनि यशोदा और समस्त गोकुलवासियो को प्रसन्न करते है। कस उनके वध के लिए पूतना आदि राक्षसियो और बकासुर आदि राक्षसो को भेजता है किन्तु कृष्ण उन सबको यमलोक पहुँचा देते हैं। वे इन्द्रपूजा बन्द कराके गोवर्द्धन पूजा प्रारम्भ कराते है और इन्द्र के कोप—अतिवृष्टि मे गोकुल-वासियो की रक्षा करते है। कालिया नाग का दमन करके यमुना के जल को निर्विष करते है। रासलीलाएँ रचाकर गोपियो को प्रसन्न करते है और १२ वर्ष की आयु मे कस-वध करके अपने माता-पिता को बन्दीगृह मे मुक्त करा देते हैं।

कस की मृत्यु के कारण जरासध मथुरा पर १८ बार आक्रमण करता है। मथुरा की प्रजा की विकलता के कारण वे पश्चिम की ओर द्वारिका को चले जाते है। रुक्मिणी से विवाह करते है और द्रौपदी के स्वयवर मे उनकी भेंट पाडवो से हो जाती है। भीम के द्वारा जरासध वध करवाते है। द्यूत क्रीडा मे पाडवो के पराजित होने पर द्रौपदी का चीर बढाकर उसकी लाज बचाते है। वनवास की अवधि समाप्त होने पर शान्तिदूत बनकर कौरवो की सभा मे जाते है। वहाँ से असफल होकर लौटते है तो महाभारत युद्ध होता है और उन्ही की नीति से पाडव विजयी होते हैं। इसके पश्चात उषा-अनिरुद्ध विवाह आदि छोटी-मोटी अनेक घटनाएँ होती है। कृष्ण-सुदामा मिलन भी तभी होता है। अन्त मे १२० वर्ष की आयु मे वि० पू० ३००८ मे उनका तिरोधान हो जाता है।

वैदिक परम्परा म उनके जीवन चरित्र का वर्णन करने वाले अनेक ग्रथ है—जिनमे श्रीमद्भागवत, महाभारत, वायुपुराण, अग्निपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, मार्कण्डेयपुराण, नारदपुराण, वामनपुराण, कूर्मपुराण, गरुड-पुराण, ब्रह्माण्डपुराण, देवी भागवत, हरिवशपुराण आदि प्रमुख है।

इन्ही पुराणो के अनुसार वाद के कवियो ने भी अपभ्र श'तथा अन्य देशज भाषाओ मे श्रीकृष्ण का गुणगान किया। पश्चातवर्ती कवियो पर सर्वाधिक प्रभाव श्रीमद्भागवत और जयदेव के गीत-गोविन्द का पडा। चैतन्य महाप्रभु, विद्यापति, सूरदास, मीरावाई तथा अनेक भक्त कवि कृष्ण के लीला-विहारी और रसिक शिरोमणि रूप पर ही अधिक रीझे है। रसखान तथा अन्य मुसलमान कवियो ने भी उनके इसी रूप की उपासना की है।

मध्यकाल से यह धारा आधुनिक युग मे अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' के 'प्रिय प्रवास' और सेठ गोविन्ददास के 'कर्तव्य' तक वह आई है।

यद्यपि वैदिक परम्परा और सनातन धर्म के अनुयायी कृष्ण के नाम का उल्लेख वेदो मे वताते है किन्तु वे कृष्ण नाम के व्यक्ति और थे—देवकीपुत्र कृष्ण नही। कृष्ण नाम के उल्लेख इस प्रकार है—

(१) ऋग्वेद के अष्टम मण्डल के ७४वे मत्र के सृष्टा ऋषि कृष्ण है।[1]

(२) ऋग्वेद के अष्टम मण्डल के ८५, ८६, ८७वे तथा दशम मण्डल के ४२, ४३, ४४वे मन्त्रो के सृष्टा भी ऋषि कृष्ण है।[2]

(३) ऐतरेय आरण्यक मे 'कृष्ण हरित' यह नाम आया है।[3]

(४) कृष्ण नाम का एक असुर अपने दस हजार सैनिको के साथ अशुमती (यमुना नदी) के तटवर्ती प्रदेश मे रहता था। वृहस्पति की सहायता से इन्द्र ने उसे पराजित किया।[4]

(५) इन्द्र ने कृष्णासुर की गर्भवती स्त्रियो का वध किया।[5]

---

१ प्रभुदयाल मित्तल—व्रज का सांस्कृतिक इतिहास, पृष्ठ १५-१६।

२ भाण्डारकर—वैष्णविज्म शैविज्म, पृष्ठ १५।

३ सांख्यायन ब्राह्मण, अ० ३०, प्रकाशक—आनन्दाश्रम, पूना।

४ ऐतरेय आरण्यक ३/२/६।

५ ऋग्वेद १/१०/११।

स्पष्टत ये सभी कृष्ण देवकी-पुत्र कृष्ण नही है ।

वैदिक परम्परानुसार श्रीकृष्ण की कीर्ति का प्रमुख आधारस्तम्भ श्रीमद्भगवद्गीता है, जो उनके द्वारा उपदिष्ट है। इसी में उनका योगेश्वर रूप परिस्फुट हुआ ।

बौद्ध साहित्य में श्रीकृष्ण

बौद्ध परम्परा का कथा साहित्य जातको मे वर्णित है । जातक खुद्दक-निकाय के अन्तर्गत परिगणित किए जाते हैं। जातक कथाओ मे घटजातक मे श्रीकृष्ण का चरित्र वर्णित है ।[1] इसकी सक्षिप्त कथा इस प्रकार है —

प्राचीन काल मे उत्तरापथ के कसभोग राज्य के अन्तर्गत असितजन नाम का नगर था। उसमे मकाकस नाम का राजा राज्य करता था। उसके दो पुत्र थे—कस और उपकस तथा एक पुत्री थी देवागम्भा । पुत्री के जन्म पर ज्योतिषियो ने भविष्यवाणी की कि 'इसके पुत्र के द्वारा कस के वंश का विनाश होगा।' मकाकस पुत्री के प्रति मोह के कारण उसे मरवा न सका ।

मकाकस की मृत्यु के बाद कस राजा बना और उपकस युवराज । कस ने भी अपनी बहिन को मरवाया नही किन्तु पृथक राज-महल मे उसे बन्दी बना दिया और पहरे पर नन्दगोपा तथा उसके पति अधकवेणु को रख दिया। उसने बहिन का विवाह न करने का निश्चय किया और सोचा जब विवाह ही न होगा तो पुत्र कहाँ से आयेगा। यह व्यवस्था करके कस सन्तुष्ट हो गया।

उसी समय उत्तर मथुरा मे महासागर नाम का राजा राज्य करता था। उसके दो पुत्र थे—सागर और उपसागर। पिता की मृत्यु के बाद सागर राजा बना और उपसागर युवराज। उपसागर और उपकस सहपाठी थे। उपसागर ने अपने भाई के अन्त पुर मे कोई दुराचरण किया अत अग्रज सागर से भयभीत होकर वह उपकस के पास आ गया। कस-उपकस ने उसे आदरपूर्वक रखा।

एक दिन उपसागर ने देवागम्भा को देख लिया। दोनो मे प्रेम हो गया। नन्दगोपा की सहायता से वे मिलने लगे और देवागम्भा गर्भवती हो गई। रहस्योद्घाटन होने पर कस ने देवागम्भा से उसका विवाह इस शर्त पर कर

---

१ पालि साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २८० ।

दिया कि वे उससे उत्पन्न पुत्र को मार देंगे। देवागम्भा ने पुत्री को जन्म दिया। उसका नाम अजनदेवी रखा गया। कस ने गोवड्ढमान गाँव उपसागर को दे दिया और वह वहाँ अपनी पत्नी देवागम्भा और सेविका नदगोपा तथा सेवक अधकवेणु के साथ रहने लगा।

सयोग से देवागम्भा और नदगोपा साथ ही गर्भवती होती। देवागम्भा के पुत्र होते और नदगोपा के पुत्रियाँ। देवागम्भा 'भाई पुत्र को मार डालेंगे' इस भय के कारण अपने पुत्र नन्दगोपा को दे देती और उसकी पुत्रियाँ स्वय ले लेती। इस प्रकार उसके दस पुत्र हुए—(१) वासुदेव, (२) वलदेव, (३) चन्द्रदेव, (४) सूर्यदेव, (५) अग्निदेव, (६) वरुणदेव, (७) अर्जुन, (८) प्रद्युम्न, (९) घटपडित और (१०) अकुर। ये सभी अधकवेणु-दास-पुत्र कहलाए। बडे होकर ये सभी लूट-मार करने लगे। जब कस ने अधकवेणु को बुलाया और उसको दण्ड देने का भय दिखाया तो उसने सारा भेद खोल दिया।

अब कस ने उन दसो को बुलाया और अपने मल्ल मुष्टिक और चाणूर से मरवाने का प्रयास किया किन्तु वलदेव ने उन दोनो मल्लो को मार डाला और वासुदेव ने अपने चक्र से कस और उपकस को धराशायी कर दिया। इसके वाद वे जम्बूद्वीप विजय करने निकले। उन्होने अयोध्या के राजा कालसेन को परास्त कर उसका राज्य हथिया लिया। द्वारवती के राजा को मार कर वहाँ अपना अधिकार कर लिया। इनके अतिरिक्त त्रेसठ हजार राजाओ का चक्र से शिरच्छेद करके उनके राज्यो को अपने अधीन कर लिया। फिर अपने राज्य को दस विभागो मे विभाजित कर दिया। नौ भाइयो ने तो अपने भाग ले लिए किन्तु अकुर ने व्यापार करने की इच्छा प्रगट की। उसका भाग अजनदेवी को मिला।

वासुदेव का प्रिय पुत्र मर गया तो उसके सताप-शोक को घट पडित ने बडी चतुराई से दूर किया।

इन दस भाइयो की सतानो ने एक वार कृष्ण द्वीपायन का अपमान करने के लिए एक तरुण राजकुमार को गर्भवती स्त्री वनाकर पूछा—'इसके गर्भ से क्या उत्पन्न होगा?' कृष्ण द्वीपायन सब कुछ समझ गए। उन्होने वताया—

'एक लकडी का टुकडा होगा। उसमे वासुदेव के वश का नाश हो जायगा।' उपाय पूछने पर उन्होंने वताया—'इस लकडी को जलाकर उसकी राख नदी मे फेक देना।' किन्तु उसी राख से एरण्ड के पत्ते उत्पन्न हुए और उन्ही पत्तो से परस्पर लडकर सभी लोग मर गए। मुष्टिक मरकर यक्ष हुआ और वलदेव को खा गया। वासुदेव अपनी वहिन और पुरोहित को लेकर वन मे निकल गया तो वहाँ जरा नाम के शिकारी ने सुवर के भ्रम मे शक्ति के प्रयोग द्वारा उसका प्राणान्त कर दिया।

इतनी कथा सुनाने के वाद बुद्ध ने कहा—उस जन्म मे सारिपुत्र वासुदेव था, आनन्द अमात्य रोहिणेय्य और स्वय मै घट पडित।

घट जातक की इस कथा मे जैन और वैदिक कृष्ण चरित्र मे पर्याप्त अन्तर दिखाई पडता है। नामो मे भी काफी अतर है। जैसे—कस के पिता का नाम उग्रसेन न होकर मकाकस है। उसकी राजधानी भी मथुरा न होकर असितजन नगर है। वहिन का नाम भी देवकी न होकर देवागभा है। देवागभा के पति का नाम भी वसुदेव न होकर उपसागर है। यशोदा का नाम तो नदगोपा है और नद का नाम अधकवेणु। इसमे कस और उपकस अत्याचारी नही दिखाए गए है वरन् देवकी के दसो पुत्र ही लुटेरे, निर्दयी और सर्वजन-सहारक थे। उन्होने अपने मामाओ को मारकर उनका राज्य छीन लिया था। इसके अतिरिक्त जबूद्वीप के हजारो राजाओ का भी शिर चक्र से काट डाला था।[1]

इन विभिन्नताओ के वावजूद भी नदगोपा और देवागम्भा का परस्पर पुत्र-पुत्रियो को वदल लेना, मुष्टिक और चाणूर से युद्ध, कस की मृत्यु, देवागम्भा पर पहरा विठाकर उसे वन्दी-जैसा वना लेना, द्वारका विनाश, द्वैपायन का अपमान, जराकुमार के द्वारा वासुदेव की मृत्यु कुछ ऐसे साम्य है, जो इसे स्पष्ट कृष्ण-कथा प्रमाणित करते है।

---

१ विस्तृत रूप से यह कथा घट जातक मे दी हुई है। इसके विस्तृत अध्ययन के लिए भदन्त आनद कौशल्यायन द्वारा अनुवादित जातक कथाओ के चतुर्थ खड मे स० ४५४ की 'घट जातक' कथा देखिए।

श्रीकृष्ण के जीवन-चरित्र को इस ढग मे वर्णित करने मे समवत धार्मिक पूर्वाग्रह ही प्रमुख कारण रहा होगा ।

जैन परंपरा में श्रीकृष्ण

जैन साहित्य मे श्रीकृष्ण पर विस्तृत जानकारी उपलब्ध होती है द्वादशागी के अतर्गत अतकृत्दशाग (द्वारका का वैभव, गजसुकुमाल की कथा, द्वारका का विनाश और कृष्ण का देहत्याग), समवायाग (कृष्ण और जरासन्ध का वर्णन), णायाधम्मकहाओ (थावच्चापुत्र की दीक्षा, अमरकका जाकर द्रौपदी को लाने का वर्णन), स्थानाग (कृष्ण की आठ अग्रमहिषियो के नाम और उनका वर्णन), प्रश्नव्याकरण (श्रीकृष्ण द्वारा अपनी दो अग्रमहिषियो—रुक्मिणी और पद्मावती को लाने के लिए हुए युद्धो का वर्णन), आदि मे उल्लेख मिलता है ।

आगमेतर साहित्य मे श्रीकृष्ण वर्णन क्रमबद्ध रूप से प्राप्त होता है । उनमे से प्रमुख ग्रन्थ निम्न है—

(१) **वसुदेव हिंडी**—यह जैन वाङ्मय का सर्वाधिक प्राचीन कथा ग्रन्थ माना जाता है । इसके रचयिता सघदास गणी हैं । इसमे कृष्ण की अपेक्षा उनके पिता वसुदेव का चरित्र अधिक विस्तार व सरसता के साथ वर्णित किया गया है । पीठिका मे कृष्ण-पुत्र प्रद्युम्न, शाव की कथा और कृष्ण की अग्रमहिषियो और वलदेव का चित्रण है । देवकी लम्भक मे कृष्ण-जन्म आदि का वर्णन है । कौरव पाडवो का भी संक्षिप्त वर्णन है ।

(२) **चउप्पन महापुरिस चरिय**—यह आचार्य शीलाक की कृति है । इसके ४९, ५०, ५१वे अध्याय मे कृष्ण-वलदेव का जीवन चरित्र है ।

(३) **नेमिनाह चरिउ**—यह आचार्य हरिभद्र सूरि द्वितीय की रचना है । इसमे भी कृष्ण का जीवन-चरित्र वर्णित हुआ है ।

(४) **भव-भावना**—इसकी रचना मलधारी आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने सन् ११७० ई० मे की है । इसमे कस वृतान्त, वसुदेव-देवकी विवाह, कृष्ण-जन्म, कस-वध आदि विविध प्रसगो का वर्णन है ।

(५) **कण्ह चरित**—यह देवेन्द्र सूरि की रचना है । इसमे वसुदेव और कृष्ण का विस्तृत जीवन चरित्र है ।

इनके अतिरिक्त प्राकृत भाषा मे उपदेशमाला प्रकरण, कुमारपाल पडिबोह (कुमारपाल प्रतिबोध) आदि मे भी श्रीकृष्ण का चरित्र वर्णित हुआ है।

प्राकृत के अतिरिक्त सस्कृत, अपभ्र श और देशज भाषाओ मे जैनाचार्यो एव लेखको (दिगम्बर और श्वेताबर दोनो) ने ही कृष्ण चरित्र से सबधित रचनाएँ की है। इनमे से प्रमुख निम्न हैं :—

(१) **हरिवश पुराण**—यह दिगम्बर आचार्य जिनसेन की रचना है। इसमे श्रीकृष्ण का वर्णन विस्तारपूर्वक है।

(२) **उत्तर पुराण**—यह भी दिगम्बर आचार्य गुणभद्र की रचना है। इसके ७१, ७२, ७३वे पर्व मे कृष्ण-कथा वर्णित की गई है।

(३) **प्रद्युम्न चरित**—महासेनाचार्य ने इसमे कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के पराक्रम का वर्णन किया है।

(४) **पाडव-पुराण**—यह भट्टारक शुभचन्द्र की कृति है।

(५) **त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र**—यह कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र की महत्वपूर्ण कृति है। इसके आठवे पर्व मे कृष्ण चरित्र विस्तृत रूप से क्रमबद्ध आया है।

इनके अतिरिक्त भट्टारक सकलकीर्ति का 'हरिवश पुराण' और 'प्रद्युम्न चरित्र', भट्टारक श्रीभूषण का 'पाडव पुराण', 'हरिवशपुराण', महाकवि वाग्भट्ट का 'नेमि निर्वाण', ब्रह्मचारी नेमिदत्त का 'नेमिनाथ पुराण', भट्टारक धर्मकीर्ति का 'हरिवश पुराण' आदि दिगम्बर आचार्यो की महत्वपूर्ण रचनाएँ है।

श्वेताम्बर आचार्यो मे वाग्भट्ट का 'नेमि निर्वाण काव्य', रत्नप्रभ सूरि का 'अरिष्टनेमि चरित्र', विजयसेन सूरि का 'नेमिनाथ चरित्र', कीर्तिराज का 'नेमिनाथ चरित्र' (महाकाव्य), विजयगणी का अरिष्टनेमि चरित्र', गुणविजयगणी का 'नेमिनाथ चरित्र,' वज्रसेन के शिष्य हरि का 'नेमिनाथ चरित्र', तिलकाचार्य का 'नेमिनाथ चरित्र' आदि अनेक ग्रन्थ है जिनमे कृष्ण का जीवन चरित्र वर्णित है।

धनजय का द्विसधान अथवा 'राघव पाडवीय महाकाव्य' एक विशिष्ट रचना है जिसमे प्रत्येक पद्य के दो अर्थ निकलते हैं—एक रामायण (राम)

सबधी और दूसरा कृष्ण से सबधित। इसी प्रकार की रचना द्रोणाचार्य के शिष्य सूराचार्यकृत 'नेमिनाथ चरित्र' भी है।

इनके अतिरिक्त और भी अनेक ग्रन्थो के नाम गिनाए जा सकते हैं।

देशज भाषाओ मे भी इसी प्रकार ग्रन्थ रचना होती रही।

आधुनिक युग की शोध प्रधान रचनाओ मे—पडित सुखलालजी का 'चार तीर्थंकर', अगरचन्द नाहटा का 'प्राचीन जैन ग्रन्थो मे श्रीकृष्ण', श्रीचन्द रामपुरिया का 'अर्हत अरिष्टनेमि और वासुदेव श्रीकृष्ण,' देवेन्द्र मुनि शास्त्री का 'भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण,' महावीर कोटिया का जैन कृष्ण साहित्य मे श्रीकृष्ण' तथा प्रो० हीरालाल रसिकदास कापडिया का 'श्रीकृष्ण अने जैन साहित्य' आदि उल्लेखनीय हैं।

उक्त वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि श्रीकृष्ण सबधी जैन साहित्य यदि वैदिक साहित्य की तुलना मे अधिक नही है तो कम भी नही है।

जैन और वैदिक परपरा के कृष्ण चरित्र की तुलना

साम्य होते हुए भी जैन और वैदिक परपराओ के कृष्ण चरित्र की घटनाओ मे कुछ अन्तर हैं।

(१) वैदिक परपरा के अनुसार श्रीकृष्ण जरासध को स्वय नही मारते वरन् भीम द्वारा मल्लयुद्ध मे उसकी मृत्यु कराते है। कारण यह बताया गया है कि उसने अनेक राजाओ को बलि देने के लिए बन्दी बना रखा था। जबकि जैन परपरा मे जरासध ही स्वय युद्ध करने आता है और युद्ध मे इसका अत कृष्ण स्वय अपने चक्र से करते है।

(२) शिशुपाल वध कृष्ण द्वारा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ मे होता है जबकि जैन परपरा मे वह जरासध का सहयोगी बनकर युद्ध करता है और रणक्षेत्र मे ही वह धराशायी हो जाता है।

(३) वैदिक परपरा कौरव-पाडव युद्ध—महाभारत का युद्ध-स्वतत्र युद्ध मानती है जिसके नायक एक ओर दुर्योधन आदि कौरव थे और दूसरी ओर युधिष्ठिर आदि पाडव। कृष्ण इसमे पाडवो की ओर वे नीति निर्धारक रहते हैं, वे स्वय प्रत्यक्ष रूप से कोई भाग नही लेते। केवल अर्जुन का रथ सचालन करते हैं। यही अर्जुन का मोह नाश करने के लिए गीता का उपदेश देते है

और अपना विराट रूप दिखाकर तथा उनमें कौरवों आदि को मरा दिखा कर युद्ध के लिए अर्जुन को प्रेरित करते हैं। जैन परपरा में महाभारत युद्ध के अतिरिक्त जरासंध-कृष्ण युद्ध मे भी पाडव कृष्ण की ओर से जरासंध के विरुद्ध युद्ध में सम्मिलित होते हैं। महाभारत युद्ध का कारण है—दुर्योधन का अत्यधिक मान और पाडवों को सुई की नोक के बराबर भी भूमि न देना लेकिन जरासंध ने कृष्ण को नष्ट करने के लिए ही आक्रमण किया था।

(४) वैदिक परपरानुमोदित महाभारत युद्ध मे कृष्ण का ऐसा रूप आता है जिसे सभ्य भाषा मे चतुराई या राजनीति कहा जाता है और असभ्य भाषा मे छल-प्रपच। वे पितामह भीष्म, गुरु द्रोणाचार्य, दानवीर कर्ण आदि सभी महारथियों का छलपूर्वक नाश कराते है, जबकि जैन परपरा मे कृष्ण को नीतिनिपुण तो बताया है किन्तु उन्होने कही भी छल नही किया। सदैव अपने साहस और पराक्रम से ही विरोधी का पराभव किया।

(५) महाभारत मे दुर्योधन को पापी और अत्याचारी दिखाया गया है। वह द्यूत क्रीडा मे विजय प्राप्त करके द्रौपदी को भरी सभा मे निर्वस्त्र करना चाहता है और कृष्ण उसकी साड़ी असीमित रूप से लम्बी करके उसकी लाज बचाते है।

जबकि जैन परम्परा मे दुर्योधन का ऐसा रूप नही है। वह द्यूत क्रीडा मे पाडवों का राज्य तो जीत लेता है और द्रौपदी को निर्वस्त्र करने का प्रयास भी करता है। लेकिन चीर बढाने का अद्भुत कार्य श्रीकृष्ण द्वारा नही कराया गया है।

(६) वैदिक परम्परा मे पाडव भी स्वतन्त्र राजा है और कृष्ण भी। उनमे केवल मैत्री और पारिवारिक सबंध है। जैन परम्परा मे पारिवारिक सम्बन्धो के साथ-साथ पाडवों को कृष्ण के अधीन दिखाया गया है। उन्ही की आज्ञा से वे हस्तिनापुर के राज्य को त्याग कर दक्षिण समुद्रतट पर पाडु मथुरा नगरी बसा कर उसमे निवास करते हैं।

(७) वैदिक परम्परानुसार कृष्ण, विष्णु के सम्पूर्ण सोलह कला सम्पन्न अवतार, त्रिलोकीनाथ है, जबकि जैन परम्परानुसार वे समस्त दक्षिण भरतार्द्ध के स्वामी त्रिखण्डेश्वर है।

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य ऐसी घटनाएं हैं जिनका जैन परम्परा मे उल्लेख नही है। उदाहरण स्वरूप—इन्द्र की पूजा बन्द करवाना गोवर्द्धन पर्वत को अगुली पर उठाना, सुदामा-कृष्ण मिलन, गाधारी के शाप से यदुवश का विनाश आदि।

कुछ घटनाएँ ऐसी भी हैं जो वैदिक परम्परा मे प्राप्त नही होती। उदाहरणस्वरूप—धातकीखण्ड की अमरकका नगरी के राजा पद्म द्वारा द्रौपदी का हरण और कृष्ण का उसे वापिस लाना, बलभद्र की तपस्या और स्वर्ग गमन आदि।

श्रीकृष्ण के चरित्र मे सम्बन्धित कुछ घटनाएँ ऐसी हैं जो जैन और वैदिक दोनो परम्पराओ मे मिलती हैं, किन्तु उनका रूप भिन्न है। इनमे से प्रमुख घटना है—उषा-अनिरुद्ध के विवाह के समय श्रीकृष्ण-बाणासुर युद्ध। बाणासुर की ओर से स्वय शकरजी (महादेव) युद्ध मे प्रवृत्त होते है और कृष्ण उनका पराभव कर देते हैं, जबकि जैन परम्परा मे शकर नाम का एक साधारण देव बताया गया है और वह भी बाणासुर को इतना ही वरदान देता है कि 'स्त्री-सम्बन्धी युद्ध के अतिरिक्त तुम सभी प्रकार के युद्धो मे अजेय हो।' इस प्रकार जैन ग्रन्थो मे महादेव के गौरव की पूर्ण रक्षा की गई है।

जैन और वैदिक ग्रन्थो मे सर्वप्रमुख अन्तर श्रीकृष्ण की आयु के सम्बन्ध मे है। वैदिक ग्रन्थो मे उनकी आयु १२० वर्ष की मानी गई है जबकि जैन ग्रन्थो मे एक हजार वर्ष की। वैदिक ग्रन्थो मे उनका तिथिवार विवरण मिलता है। जीवन की प्रमुख घटनाओ का वर्ष निश्चित है[1] जबकि जैन परपरा मे ऐसी बात नही है।

---

१ श्री चिन्तामणि वैद्य की मराठी पुस्तक 'श्रीकृष्ण चरित्र' मे वैदिक परम्परानुमोदित श्रीकृष्ण के जीवन की प्रमुख घटनाओ के वर्ष निम्नानुसार हैं :—

(१) मथुरा मे जन्म और गोकुल को प्रस्थान—विक्रम पूर्व स० ३१२८, भाद्रपद कृष्णा अष्टमी, वृषभ लग्न, रोहिणी नक्षत्र, अर्द्ध रात्रि।

(२) गोकुल से वृन्दावन को प्रस्थान—आयु ४ वर्ष, स० ३१२४ वि० पू०

(३) कालियानाग का दमन—आयु ८ वर्ष, स० ३१२० वि० पू०।

तुलना का आशय

इस तुलना का आशय मतभेद बटाना न होकर कृष्ण चरित्र के सम्बन्ध मे विशद् अध्ययन करना है। इसका उद्देश्य उनके उन क्रिया-कलापो, महानताओ और विशिष्टताओ को प्रकाश मे लाना है जो वैदिक परम्परा के लेखको की दृष्टि से ओझल रह गई थी। वस्तुस्थिति यह भी है कि किसी

---

(४) गोवर्द्धन धारण—आयु १० वर्ष, स० ३११८ वि० पू०।

(५) राम-लीला—आयु ११ वर्ष, स० ३११७ वि० पू०।

(६) वृन्दावन मे मथुरा प्रस्थान और कंस वध—आयु १२ वर्ष, स० ३११६ वि० पू० फाल्गुन शुक्ला १४।

(७) मथुरा मे यज्ञोपवीत और सादीपनि के गुरुकुल को प्रस्थान—आयु १२ वर्ष, स० ३११६ वि० पूर्व।

(८) जरासन्ध का मथुरा पर प्रथम आक्रमण—आयु १३ वर्ष, स० ३११५ वि० पू०।

(९) मथुरा का जीवन और जरासध के १७ आक्रमण—आयु १३ से ३० वर्ष, स० ३११५ से ३०९८ वि० पू०।

(१०) द्वारिका-प्रस्थान और रुक्मिणी विवाह—आयु ३१ वर्ष, स० ३०९७ वि० पू०।

(११) द्रौपदी स्वयवर और पाडवो से मिलन—आयु ४३ वर्ष, स० ३०८५ वि० पू०।

(१२) अर्जुन-सुभद्रा विवाह—आयु ६५ वर्ष, स० ३०६३ वि० पू०।

(१३) अभिमन्यु-जन्म—आयु ६७ वर्ष, स० ३०६१ वि० पू०।

(१४) युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ—आयु ६८ वर्ष, स० ३०६० वि० पू०।

(१५) महाभारत का युद्ध—आयु ८३ वर्ष, स० ३०४५ वि० पू० मार्गशीर्ष शुक्ला १४।

(१६) कलियुग का प्रारम्भ और परीक्षित का जन्म—आयु ८४ वर्ष, स० ३०४४ वि० पू० चैत्र शुक्ला १।

(१७) श्रीकृष्ण का तिरोधान और द्वारिका का अन्त—आयु १२० वर्ष, स० ३००८ वि० पू०।

भी महापुरुष के जीवन की समस्त घटनाओ का आकलन-सकलन एक लेखक अथवा एक परपरा के लिए सभव भी नही हो पाता। इसका कारण मानव की स्वयं की ज्ञान चिन्तन की सीमाएँ भी हैं, उसकी स्वय की दृष्टि भी है और परपरा का बन्धन भी है। वैदिक परपरा मे वे विष्णु के पूर्ण अवतार होते हुए भी अनेक ऐसे कार्य करते है जिन्हे सामाजिक दृष्टि से बालसुलभ चचलता ही कहा जा सकता है। उदाहरणस्वरूप—यमुना मे स्नान करती हुई स्त्रियो के चीर हरण कर लेना, दूध-दही-मक्खन चुराकर खा जाना। इस प्रकार की घटनाओ के चित्रण मे पश्चात्वर्ती कवियो की स्वय की रसिक वृत्ति ही अधिक प्रगट हुई है। एक रीतिकालीन कवि ने लिखा है—

आगे के सुकवि रीझिहैं तो कविताई,
नहि तो राधा हरि सुमिरन को बहानो है।

और यह बहाना इतना अधिक बढा कि कृष्ण एक सामान्य नटवर नन्द-किशोर ही बन कर गए। उनका गौरवमयी रूप विद्वानो और उच्च कोटि के ग्रन्थो तक ही सीमित रह गया।

जैन लेखको ने उनके गौरव की आद्योपान्त रक्षा की है।

श्रीराम और श्रीकृष्ण की तुलना

यहाँ यह अप्रासगिक न होगा कि श्रीराम से श्रीकृष्ण की तुलना की जाय। दोनो ही महापुरुष मानव जाति की महान विभूति है। दोनो ही भारतीय सस्कृति के आधार-स्तभ और जन-जन के कण्ठहार है। दोनो ने ही अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध सघर्ष किया और धर्म की—न्याय की स्थापना की। श्रीराम ने लकापति रावण का समूल विनाश करके पर-स्त्री हरण की लोकनिन्द्य परपरा का नाश किया तो कृष्ण ने कस का वध करके निरपराध देवकी-वसुदेव को बन्दीगृह मे रखने और उनके छह पुत्रो की अकारण हत्या का विरोध किया और एक निरकुश आततायी शासक को समाप्त कर प्रजा की रक्षा की।

किन्तु इन दोनो की परिस्थितियो मे भिन्नता थी। राम राजपुत्र थे, उनका जन्म राजमहल मे हुआ और वन-वास से पहले उन्हे किसी प्रकार का

कष्ट नही था जवकि कृष्ण का जन्म वन्दीगृह मे हुआ। उत्पन्न होते ही माता-पिता से विछुड गए और नन्द के घर उसका लालन-पालन हुआ।

श्रीकृष्ण ने शिशुवय मे ही अलौकिक कार्य करने प्रारम्भ कर दिये—पूतना वध, वकासुर वध, आदि जवकि राम सोलह वर्ष की आयु के पश्चात् ही अपने पराक्रम का परिचय देते है।

दोनो ही महापुरुषो को अपना मूल स्थान छोडना पडता है। राम को कैकेई के कारण और कृष्ण को जरासध के कारण।

कस को मारने के ममय कृष्ण भी निहत्थे थे केवल उनका अदम्य साहम और पराक्रम ही उनका साथी था और राम ने भी जिस समय सीता का हरण करने वाले का नाश करने की प्रतिज्ञा की उस समय वे भी केवल दो ही भाई थे और वह भी साधनहीन।

दोनो ही महापुरुषो ने अधर्म से युद्ध किया और नीति, न्याय एव सदा--चार की स्थापना की।

इतना होते हुए भी राम और कृष्ण के चरित्र मे कुछ भिन्नताएँ हैं। राम मर्यादाओ के पालक रहे और कृष्ण ने लोक परपराओ की चिन्ता नही की। मीता-परित्याग राम के जीवन में मर्यादा पालन करने की भावना को अनूठे ढग से प्रदर्शित करता है। जवकि कृष्ण ने इस वात की चिन्ता नही की। उन्होंने इन्द्रपूजा वन्द कराके अन्धविश्वास को मिटाया। इसी कारण एक वार 'कल्याण' के सम्पादक श्री जयदयालजी गोयन्दका ने राम को 'लोकरजन-कारी' और कृष्ण को 'लोकमगलकारी' लिखा था। यही वात सेठ गोविन्ददास ने अपने 'कर्तव्य' नाटक मे लिखी है। वहाँ कृष्ण के मुख से स्पष्ट कहलवाया है कि—'मैंने जन्म ही सडी-गली परपराओ और मर्यादाओ के भजन के लिए लिया है।' इनका यह मर्यादा-भजक रूप ही उनकी आलोचनाओ का कारण वना और राम का मर्यादा-पालन ही उन्हे मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप मे प्रतिष्ठित कर गया। फिर भी वन्दीगृह में उत्पन्न होकर त्रिखण्डेश्वर के रूप मे प्रतिष्ठित हो जाना श्रीकृष्ण के अदम्य माहम,पराक्रम और नीतिनिपुणता की ही कहानी हे।

जैन कृष्ण-कथा की विशेषताएँ

जैन कृष्ण-कथा की कुछ ऐमी विशेषताएँ है जो वैदिक परम्परा के कृष्ण

चरित्र मे नही मिलती। इनमे से प्रमुख विशेषता है—कृष्ण के पिता वसुदेव का जीवन-चरित्र। वास्तव मे वैदिक लेखक कृष्ण की यशोगाथा मे इतने लवलीन हो गए कि उन्होने वसुदेव की ओर ध्यान ही नही दिया। जिस व्यक्ति की आँखो के सामने ही उसके छह नवजात शिशुओ की क्रूरतापूर्ण हत्या कर दी जाय—उसके दुःख, पीडा और अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण भी वैदिक परपरा मे नही किया गया। वहाँ वसुदेव विलकुल ही शक्तिहीन, असहाय और निरीह प्राणी हैं, जो कस की ओर टुकुर-टुकुर देखते रहते है, उससे कुछ कह भी नही पाते।

यह विवशता जैन ग्रथो मे भी है किन्तु उसका कारण है—उनकी वचन-बद्धता। वैसे वे अप्रतिम वीर थे। जैन परपरा मे उनकी वीरता और पराक्रम की यथेष्ट चर्चा है। वे अकेले ही अनेक राजाओ का पराभव करते हैं। उनकी पुत्रियो से विवाह करते हैं और बडी ऋद्धि-समृद्धि प्राप्त करते हैं। अनेक बार उन्होंने जरासन्ध को भी छकाया और अनेक युद्धो मे विजय प्राप्त की।

कृष्ण-चरित्र की प्रेरणाएँ

कर्मयोगी श्रीकृष्ण का चरित्र पग-पग पर प्रेरणाओ से भरा पडा है। क्या वैदिक और क्या जैन दोनो ही परपराओ मे उनके क्रियाकलाप जन-जन के लिए प्रेरणादायी हैं।

वैदिक परम्परानुसार गीता उनका उपदिष्ट ग्रन्थ है। उसमे उन्होने निष्काम कर्मयोग की स्थापना कर भाग्यवाद का निरसन किया और आलस्य एव अकर्मण्यता को दूर किया। इन्द्र-पूजा वन्द करवाकर मानवो के अन्ध-विश्वास को समाप्त करने का प्रयास किया।

जैन ग्रन्थो मे श्रीकृष्ण का चरित्र वहुत ही उदात्त दिखाया गया है। वे सदाचारी, सत्यवक्ता, अतिवली और सेवाभावी है। **परोपकारी** ऐसे कि एक वृद्ध की ईटे स्वय पहुँचाते हैं। **साहस** का उदाहरण कसवध और अमरकका नगरी मे देखा जा सकता है, जहाँ ये अकेले ही जाकर सघर्ष करते है और विजय प्राप्त करते है। **कष्ट सहिष्णुता** के दर्शन जराकुमार का वाण लगने पर होते हैं। अपने कष्ट और पीडा की चिन्ता न करते हुए उसे प्राण बचाने की प्रेरणा देते है। **गुणग्राहकता** के सवध मे देव भी परीक्षा लेकर सतुष्ट होता है। पिशाच-युद्ध मे उनकी **शाति-तितिक्षा** देखने योग्य है। द्वारकादाह

के अवसर पर अपने प्राणो की चिन्ता न करके माता-पिता को बचाने मे प्रयत्नशील होते हैं। यह उनकी मातृ-पितृ-भक्ति का परिचायक है। उनका व्यवहार यशोदा के साथ भी माता का सा ही रहा। बलभद्र से यह जान लेने पर भी कि 'यशोदा उनकी दासी है' उनकी भावना मे कोई अन्तर नहीं आया। उन्होंने बलभद्र से यह वचन ले ही लिया कि आगे वे कभी यशोदा को दासी नही कहेंगे। इसी प्रकार उन्होने अज्ञात कुलशील वाले वीरक को अपनी पुत्री केतुमजरी व्याह दी। उन्होंने अपने जीवनकाल मे अनेक लोगो को सयम पालन की प्रेरणा दी। केतुमजरी को प्रतिबोध इसी भावना से दिया। उनका साहस अदम्य था तो क्षमा अद्भुत। अपने अपकारी प्राणघाती को भी क्षमा कर देते हैं। पाडवो से क्षमा याचना कर लेते हैं। जैन कृष्णचरित्र मे ऐसा एक भी प्रसग नही है कि उन्होंने कभी असत्य भाषण किया हो अथवा छल-प्रपच का सहारा लिया हो, वे सदैव सत्यवादी और न्यायप्रिय रहे। न्याय-निष्ठा के कारण ही उन्होने अपने पुत्र शाबकुमार को द्वारका से बाहर निकाल दिया।

इस प्रकार श्रीकृष्ण के चरित्र मे अनेक उदात्त गुण, नीतिनिष्ठा और लोकनायक की गरिमा विद्यमान है।

सक्षेप मे श्रीकृष्ण का सपूर्ण जीवन कष्टो और सघर्षो मे जूझने की अविस्मरणीय कथा है। उदात्त गुणो से आप्लावित उनका जीवन-चरित्र एक ऐसा प्रकाशपुज है, जो मानव को निरतर गतिशील रहने को प्रेरित करता है। सफलता की एक ऐसी कहानी है, जो युगयुगो तक जन-जन को पुरुषार्थ और निष्काम कर्मपथ पर अग्रसर करती रहेगी।

प्रस्तुत पुस्तक का ध्येय यही है कि पाठक को जैन-ग्रन्थो मे वर्णित कृष्ण-चरित्र का ज्ञान हो जाय और साथ ही उसे वैदिक ग्रथो मे उल्लिखित कृष्ण चरित्र की भी झाकी मिल जाय। पाठक उनके उज्ज्वल गुणो को अपने जीवन मे अपनाने को प्रयत्नशील हो। ग्रन्थगत एव परम्परागत भेदो को भुलाकर जीवन मे अभेद (एकरूपता) का आचरण करें—यही इस लेखन सपादन का ध्येय है।

—श्रीचन्द सुराना 'सरस'
—बृज मोहन 'जैन'

अनुक्रम

भाग ३१ [वसुदेव चरित]

भाग ३२ [द्वारका का वैभव]

भाग ३३ [यदुवन के फूल]

इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र की मथुरा नगरी पर राजा वसु[1] के पुत्र बृहद्ध्वज[2] के पश्चात उसके वश के अनेक राजाओ ने राज्य किया।

वहुत समय वाद उसी वंश मे यदु नाम का प्रतापी राजा हुआ। यदु के सूर्य के समान एक तेजस्वी पुत्र हुआ शूर और शूर राजा के शौरि और सुवीर नाम के दो पुत्र हुए। राजा शूर ने शौरि को राज्य पद और सुवीर को युवराज पद देकर दीक्षा ग्रहण कर ली।

शौरि ने मथुरा का राज्य तो अनुज सुवीर को दिया और स्वय कुशार्त देश चला गया। वहाँ उसने शौर्यपुर नाम की एक नई नगरी बसाई।

राजा शौरि के पुत्र का नाम था अधकवृष्णि और सुवीर का पुत्र था भोजवृष्णि। सुवीर ने भी अपने पुत्र भोजवृष्णि को मथुरा का राज्य दिया और स्वय सिधुदेश मे जाकर सौवीरपुर नामक एक नई नगरी बसा कर रहने लगा। राजा शौरि अपने पुत्र अधकवृष्णि को राज्य देकर सुप्रतिष्ठ मुनि के पास प्रव्रजित हुआ और तप करके मोक्ष गया।

---

१ यह वसु प्रसिद्ध शुक्तिमती नगरी का स्वामी था। इसी ने हिंसक यज्ञो के वारे मे पर्वत-नारद विवाद मे पर्वत का पक्ष लिया था। असत्य कथन के कारण देवताओ ने इसकी स्फटिक आसन वेदिका चूर्ण कर दी और यह पृथ्वी पर गिर कर मृत्यु को प्राप्त हुआ।

२ बृहद्ध्वज राजा वसु का दसवाँ पुत्र था। यह पिता और अपने आठ वडे भाइयो की मृत्यु से भयभीत होकर मथुरा भाग आया था।

मथुरा नरेश भोजवृष्णि के उग्रसेन नाम का एक पराक्रमी पुत्र हुआ।

शौर्यपुर अधिपति अधकवृष्णि की रानी सुभद्रा से दश पुत्र हुए—समुद्रविजय, अक्षोभ्य, स्तिमित, सागर, हिमवान, अचल, धरण, पूरण, अभिचन्द्र और वसुदेव। ये दशो दशार्ह कहलाते थे। कुन्ती और मद्री दो पुत्रियाँ भी हुई। कुन्ती का विवाह हुआ राजा पाडु से और मद्री का राजा दमघोष के साथ।

एक बार राजा अधकवृष्णि ने अवधिज्ञानी मुनि सुप्रतिष्ठ से पूछा—

—प्रभो! वसुदेव नाम का मेरा दशवाँ पुत्र अति पराक्रमी और रूप सौभाग्य वाला है। उसका क्या कारण है?

—यह उसके पूर्व जन्म के शुभ कर्मो का फल है, राजन्!—मुनि श्री ने सक्षिप्त-सा उत्तर दिया।

किन्तु इस सक्षिप्त उत्तर से अधकवृष्णि की तृप्ति कहाँ होने वाली थी? उसने अजलि बाँधकर पुन विनती की—

—वह कौन सा शुभ कर्म है, जो उसने किया? जानने की जिज्ञासा है।

मुनिश्री ने देखा कि राजा आसन्न (निकट) भव्य है। इसे वसुदेव का पूर्वभव सुनाना व्यर्थ नही जायेगा, वरन् इसके वैराग्य का निमित्त ही बनेगा। यह दीक्षा ग्रहण कर अपना आत्म-कल्याण करेगा। उन्होने राजा को सबोधित करके कहना प्रारभ किया—

मगध देश के नदिग्राम मे एक निर्धन ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री का नाम था सोमिला और पुत्र का नाम नंदिषेण। नदिषेण के दुर्भाग्य से उसके माता-पिता बाल्यावस्था मे ही मर गये। नदिषेण स्वय ही कुरूप था। उसके बडे-बडे दाँत, बाहर निकला हुआ उदर, चपटी नाक, भोडे नेत्र कुरूपता के साक्षात साक्षी थे। उसकी इस बदसूरती के कारण उसके स्वजनो ने भी उसे त्याग दिया।

नदिषेण को शरण प्राप्त हुई अपने मामा के घर। मामा के यहाँ विवाह-वय की सात कन्याएँ थी। मामा ने उसे आश्वासन दिया—'मै अपनी एक कन्या के साथ तुम्हारा विवाह कर दूँगा।'

विवाह के लोभ मे नन्दिषेण मामा के घर का सभी कार्य करने लगा। पिता की इच्छा उन कन्याओ को भी ज्ञात हुई तो पहली ने कहा –

—यदि पिताजी ने मुझे उस कुरूप से ब्याह दिया तो मै अवश्य ही मर जाउँगी।

दूसरी ने कहा—उससे लग्न हो इसमे तो मर जाना ही अच्छा है।

—उसके साथ शैय्या पर लेटने से अच्छा है जीवित ही चिता पर लेट जाना। —तीसरी का विचार था।

चौथी उससे भी आगे बढकर बोली—तुम सोने की बात कर रही हो। उसके हाथो मे हाथ देने के बजाय मै तो यमराज के ही हाथो मे हाथ दे दूँगी।

पाँचवी ने अपने मनोभाव व्यक्त किये—मुझे तो वह फूटी आँख भी नही सुहाता। देखते ही मितली आने लगती है।

छठी क्यो पीछे रहती ? उसने भी कह दिया—सूरत देखना तो दूर मैं तो नाम से भी घृणा करती हूँ उस बदशक्ल से। न जाने पिताजी ने क्यो उसे रख छोडा है ?

—रख क्यो छोडा है ? यह भी कोई कहने की बात है। गधे की तरह रात-दिन घर के काम मे जुटा रहता है, बस ! —सातवी ने भी अपनी घृणा व्यक्त कर दी।

सातो कन्याओ के ऐसे विचार नन्दिषेण और उसके मामा को ज्ञात हुए तो मामा ने उसे धैर्य बँधाया—

—मैं किसी दूसरे की कन्या से तुम्हारा लग्न कर दूँगा।

परन्तु मामा का यह मधुर वचन और आश्वासन नन्दिषेण को सन्तुष्ट न कर सका। वह सोचने लगा—'जब मामा की पुत्रियाँ ही मुझे नही चाहती तो दूसरी कोई मुझ जैसे कुरूप को क्यो चाहेगी ?'

इस प्रकार विरक्त होकर वह मामा के घर से निकल कर रत्नपुर नगर मे आया। वहाँ किन्ही पति-पत्नियो को क्रीडा करते देखकर

वह अपनी निदा करने लगा। उसकी निदा का भाव इतना तीव्र हुआ कि वह आत्महत्या को तत्पर होकर एक उपवन मे आया।

उपवन मे उसे सुस्थित मुनि दिखाई पड गये। नदिषेण ने उनकी वदना की। मुनि ने अपने विशिष्ट ज्ञान से उसके मनोभाव जान लिए। उसे आत्महत्या से विरत करते हुए बोले—

—भद्र ! आत्महत्या का दुस्साहस मत करो। इससे तो तुम्हारे दु ख जन्म-जन्मान्तर तक के लिए वढ जायेगे।

नदिपेण की आँखे नम हो आयी। मुनिराज ने उसके मनोभावो को उजागर जो कर दिया था। बोला—

—मैं क्या करूँ, नाथ ! सर्वत्र मेरा तिरस्कार ही होता है। जीवन भार हो गया है इस संसार मे।

—जीवन के भार को उतारने के लिए धर्म का आश्रय लो।

कुछ देर तक तो नदिपेण सोचता रहा, फिर वोला—

—मैं आपकी शरण मे हूँ गुरुदेव ! मुझे प्रव्रजित करके धर्म का मर्म वताइये।

मुनि सुस्थित ने उसे प्रव्रजित कर लिया और धर्म का मर्म वताया—सेवा, वैयावृत्य।

नदिपेण ने भी प्रव्रजित होकर साधुओ की वैयावृत्य करने का अभिग्रह ले लिया। अव वह वाल और ग्लान मुनियो की वैयावृत्य विना ग्लानि करने लगा। साधु-सेवा ही उसका धर्म वन गया। वह शातचित्त होकर मुनि-सेवा करता और मन मे सतोष पाता।

एक दिन देवराज इन्द्र ने अपनी सभा मे नन्दिषेण की अग्लान साधु-सेवा की वहुत प्रशसा की। एक देव को इन्द्र की वात पर विश्वास नही हुआ। वह रत्नपुर के वाहर वन मे आया और ग्लान-मुनि के रूप मे प्रकट हो गया। एक अन्य मुनि का रूप रख कर नन्दिषेण मुनि के स्थान पर गया। उस समय नदिपेण पारणे के लिए बैठकर पहला ग्रास खाने ही वाले थे, तभी मुनि ने आकर कहा—

—भद्र ! साधु-सेवा का व्रत लेकर भी तुम इस समय पारणे के लिए कैसे बैठ गये ?

मुनि के वचन सुन कर नदिषेण उत्सुक होकर उनकी ओर देखने लगे।

मुनि रूपधारी देव ने ही पुन कहा—

—नगर के बाहर वन मे अतिसार रोग से पीडित मुनि भूखे-प्यासे पडे है।

यह सुनते ही नदिषेण ने आहार छोडा और उठकर प्रासुक पानी की खोज मे चल दिये। शुद्ध जल की प्राप्ति मे देव ने अनेक विघ्न किये किन्तु कठिन अभिग्रह वाले नदिषेण के सम्मुख उसकी शक्ति सफल न हो सकी। मुनि प्रासुक जल लेकर वन मे गये। वहाँ उन्हे अतिसार से पीडित मुनि दिखाई पडे। मुनि का शरीर मलमूत्र आदि के कारण दुर्गन्धयुक्त था। उनके पास ठहरना भी कठिन था किन्तु नदिषेण ने दुर्गन्ध को दुर्गन्ध नही समझा और वे पीडित मुनि के पास पहुँचे। उन्हे देखकर रोगी साधु ने आक्रोशपूर्वक कठोर शब्द कहे—

—मै तो इस दशा मे पडा हूँ और तुम भोजन मे लपट हुए यहाँ इतनी देर मे आये। धिक्कार है तुम्हारी साधु-सेवा की प्रतिज्ञा को !

नदिषेण ने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया —

—हे मुने ! मेरे अपराध को क्षमा करिए। मै शुद्ध जल लाया हूँ।

यह कहकर नदिषेण ने उन्हे प्रासुक जल का पान कराया और कहा - आप जरा बैठ जाइये। मैं आपके शरीर को साफ कर दूँ।

— देखते नही मैं कितना अशक्त हूँ? —मुनि ने कुपित मुद्रा मे कहा।

नदिषेण ने बिना खेद किये उनके अगो का प्रक्षालन किया और कधे पर बिठाकर उपाश्रय की ओर चल दिये।

मुनि ने कहा—

—अरे मूर्ख ! इतनी तेजी से चल कर मुझे क्यो दुखी कर रहा है ? देखता नही अगो के हिलने से मुझे कष्ट होता है।

धीरे-धीरे चले नदिषेण तो उन्हे पुन सुनाई पडा—

—इतनी धीमी चाल मे कब तक उपाश्रय पहुँचोगे ? तुम्हारे कन्धे की हड्डियाँ छिद कर मुझे पीडित कर रही है।

'किस प्रकार चलूँ कि इन मुनि को कष्ट न हो' यह सोच ही रहे थे नन्दिषेण कि मुनि ने विष्टा कर दी। नन्दिषेण का शरीर ऊपर से नीचे तक विष्टा से सन गया। घोर दुर्गन्ध फैल गई। नदिषेण मार्ग मे ही रुक कर विष्टा साफ करने का विचार करने लगे और इसी हेतु तनिक ठहरे तो मुनि ने कहा—

—चलता क्यो नही ? क्या मुझे मार्ग मे ही गिरा कर भाग जाने का विचार है ?

मुनि नदिषेण चलने लगे। उनके हृदय मे बार-बार यही विचार आता कि 'अहो ! इन मुनि को बडा कष्ट है। कैसे भी इनका कष्ट दूर हो। रोग की शाति हो जाय। मेरे कारण भी इन्हे पीडा हो रही है।' इन विचारो के आते ही नदिषेण सँभल-सँभल कर कदम रखते। कही मुनि का कोई अग हिल न जाय जिससे इन्हे तनिक भी पीडा हो।

उनकी ऐसी अविचल साधु-सेवा देखकर देव दग रह गया। उसे विश्वास हो गया देवराज इन्द्र के शब्द अक्षरश सत्य है। मुनि नदिषेण की प्रतिज्ञा खरी है। उसने अपना दिव्य रूप प्रगट किया और तीन प्रदक्षिणा करके बोला—

मुनिवर ! जब आपकी प्रतिज्ञा की प्रशसा इन्द्र ने की तो मुझे विश्वास नही हुआ था। इसीलिए मैने आपकी परीक्षा ली। धन्य है आपका धैर्य और अग्लान साधु सेवा ! मेरा अपराध क्षमा करिए।

—तुम्हारा कोई अपराध नही है, देव !—नदिषेण ने सहज स्वर मे कहा।

—मै आपको क्या दूँ ?—देव ने विनीत स्वर मे पूछा ।

नदिषेण ने उत्तर दिया—

—देव ! सर्वत्यागी जैन श्रमण सदैव ही इच्छा-त्यागी होते है । उन्हे किसी भी ससारी वस्तु की आकाक्षा नही होती । मुझे कुछ नही चाहिए ।

देव ने गद्गद् होकर पुन नमन किया । भक्तिपूर्ण हृदय लेकर वह अपने स्थान को चला गया और मुनि नदिषेण उपाश्रय लौट आये ।

उपाश्रय मे अन्य मुनियो ने पूछा—

—भद्र ! वे रोगी मुनि कहाँ है ?

तब नदिषेण ने सब कुछ सहज स्वर मे बता दिया । सभी मुनि सतुष्ट हुए ।

इसके पश्चात् नदिषेण ने बारह हजार वर्ष तक घोर तप किया । अनेक प्रकार के अभिग्रह और अनशन करते हुए वे तपश्चरण मे लीन रहते ।

एक बार वे अनशनपूर्वक तप मे लीन थे कि अचानक उन्हे अपने दुर्भाग्य और तिरस्कार की स्मृति हो आई । मामा की पुत्रियो के वचन और घृणा प्रदर्शित करती हुई मुख-मुद्रा उनके मानस-पटल पर दौड गई । उसके बाद दृश्य उभरा उद्यान मे क्रीडा करते पति-पत्नी का ।

मुनि का ध्यान भग हो गया । कषाय के तीव्र आवेग मे उन्होने निदान किया—'इस तप के प्रभाव से अगले जन्म मे मै स्त्रियो का अति प्रिय बनूँ ।'

काल धर्म प्राप्त करके मुनि नदिषेण महाशुक्र देवलोक मे देव हुए ।

मुनि सुप्रतिष्ठ ने राजा अधकवृष्णि को सबोधित करके कहा—

—राजन् ! मुनि नदिषेण का जीव ही महाशुक्र देवलोक मे च्यवकर

तुम्हारा पुत्र वसुदेव बना है। पूर्वजन्म के निदान के कारण ही यह स्त्रियो को इतना प्रिय है।

राजा अधकवृष्णि को मुनिराज के वचन सुन कर वैराग्य हो आया। उसने अपने बड़े पुत्र समुद्रविजय को राज्य पद देकर स्वयं दीक्षा ग्रहण कर ली।

अधकवृष्णि ने मुनि पर्याय धारण करने के पश्चात् घोर तप किया। निरतिचार ज्ञान सयम की आराधना करते हुए वे दीर्घकाल तक पृथ्वी पर विचरते रहे।

केवली होकर उन्होने देह त्यागी और शाश्वत सुख मे जा विराजे।

—वसुदेव हिंडी, श्यामा-विजया लभक
—त्रिषष्टि शलाका० ८।२
—उत्तरपुराण, पर्व ७० श्लोक २००-२१४

---

० उत्तर पुराण के अनुसार—
१ नदिषेण के पिता का नाम सोमशर्मा था और मामा का नाम था देवशर्मा।
२ नट का तमाशा देखने गया तो वहाँ बलवानो के समूह भीड को पार न कर सका। लोगो ने ताली बजाकर उसका तिरस्कार किया और तब वह आत्महत्या के लिये गया। (श्लोक २०३-२०४)
३ मुनि का नाम सुस्थित की बजाय द्रुमषेण है। (श्लोक २०४)
० वसुदेव हिंडी मे—
नदिषेण के पिता का नाम स्कन्दिल है और इसे पलाशपुर ग्राम का निवासी बताया है।

२.

तापस का बदला

[कस का जन्म]

भोजवृष्णि के प्रव्रजित होने के वाद मथुरा के राजसिंहासन पर उनके पुत्र उग्रसेन का राजतिलक हुआ। उग्रसेन की पटरानी का नाम धारिणी था।

एक वार राजा उग्रसेन नगर के वाहर जा रहे थे। वहाँ एकान्त वन मे उन्हे एक तापस दिखाई पडा। उन्होने तापस मे महल मे आकर भोजन करने की प्रार्थना की। तापस ने उत्तर दिया—

—राजन्! मै एक मास के अनशन के वाद एक दिन ही भोजन करता हूँ और वह भी एक ही घर मे। दूसरे घर नही जाता। यदि पहले घर मे भोजन मिले तो पुन मासोपवास प्रारम्भ कर देता हूँ।

राजा ने तापस का अभिप्राय समझा और उसे भोजन का निमत्रण दे दिया।

तापस निश्चित तिथि को भोजन के निमित्त आया किन्तु किसी ने उसकी ओर देखा तक नही। निराश तापस लौट गया और एक मास का अनशन करने लगा। मथुरा नरेश तो उसे निमत्रण देकर भूल ही गये थे।

मथुरापति पुन उस मार्ग से निकले तो तापस को देखकर उनकी स्मृति मे निमत्रण की वात कौंध गई। राजा ने तापस से अपने अपराध की क्षमा माँगी और पुन निमत्रण दिया। तापस ने भी राजा का निमत्रण सहज रूप से स्वीकार कर लिया।

दूसरे मास भी राजा भूल गया और तापस को भूखा रह जाना पडा।

तीसरे मास भी क्षमा माँग कर राजा ने तापस को भोजन हेतु निमंत्रित किया। राजा पुनः भूल गया और तापस पुनः निराश वापिस लौट आया।

तापस को तीन महीने हो गये निराहार। क्षुधा की तीव्र वेदना से उसके प्राण कंठ तक आ गये। उसने क्रोध में आकर निदान किया—'इस तपस्या के फलस्वरूप मैं अगले जन्म में इस राजा को मारने वाला बनूँ।'

राजा उग्रसेन ने अपने प्रमाद के कारण व्यर्थ ही तापस को अपना शत्रु बना लिया।[१]

तापस ने अनशन स्वीकार करके मरण किया और उग्रसेन की पटरानी धारिणी के गर्भ में अवस्थित हो गया।

ज्यों-ज्यों गर्भ बढ़ने लगा, रानी की प्रवृत्तियों में क्रूरता आने लगी। उसे एक विचित्र दोहद उत्पन्न हुआ—'मैं अपने पति के उदर का मांस खाऊँ।'

अपने इस क्रूर दोहद को धारिणी किसी से कह भी नहीं सकती थी। वह ज्यों-ज्यों अपनी इच्छा दबाती त्यों-त्यों वह प्रबल से प्रबलतर होती जाती। इस कशमकश में रानी दुर्बल होने लगी।

राजा के बहुत आग्रह पर रानी ने अपना दोहद बताया, तब मंत्रियों ने शशक (खरगोश) का मांस राजा के उदर पर रख कर काटा। राजा ने ऐसा आर्तनाद किया मानो उसी के पेट से मांस काटा जा रहा हो। रानी ने अपना दोहद पूरा किया।

दोहद पूरा हो जाने के बाद रानी का विवेक जाग्रत हुआ। घोर पश्चात्तापपूर्ण स्वर में कहने लगी—

—अब मेरा जीवित रह कर क्या होगा?

अत्यधिक शोकावेग में रानी ने मरने का निश्चय कर लिया।

रानी के इस निर्णय को जानकर मंत्रियों ने आश्वासन दिया—

---

१ इसी प्रकार का घटना प्रसंग श्रेणिक एवं कूणिक के पूर्व भवों का भी है।

—महारानीजी ! आप प्राण-त्याग का निर्णय न करें। हम लोग मंत्र बल से राजा को पुनर्जीवित कर देंगे।

रानी धारिणी विस्मय से मंत्रियों का मुख देखने लगी। उसे सहसा विश्वास ही नहीं हुआ। बोली—

—क्या कहते हैं, आप लोग ? महाराज जीवित हो जायेंगे।

—हाँ महारानीजी ! आप अवश्य महाराज से मिलेंगी। कुछ दिन धैर्य रखें।

—कितने दिन धैर्य रखना पड़ेगा ?

—केवल सात दिन।

महारानी अब भी आश्वस्त नहीं हुई थी। वह समझी कि मंत्री लोग उसे दिलासा ही दे रहे हैं। उसने निर्णयात्मक स्वर में कहा—

—आप लोग मुझे भुलावे में डाल रहे हैं। खैर, मैं सात दिन तक प्रतीक्षा कर लूँगी। यदि आप अपने वचन को सत्य सिद्ध न कर सके तो

—उसकी नौबत ही नहीं आयेगी। आप विश्वास रखें महारानी जी ! आपका मिलन महाराज से सात दिन के अन्दर-अन्दर अवश्य होगा।

रानी मौन हो गई और मंत्रीगण चले गये।

सातवें दिन रानी ने विस्मयपूर्वक देखा कि महाराज उग्रसेन सही-सलामत, अक्षत-शरीर उसके सम्मुख आ खड़े हुए।

पति को कुशल देखकर रानी की प्रसन्नता का पार न रहा। वह अपने को बहुत भाग्यशाली समझने लगी।

अनुक्रम से गर्भ बढ़ने लगा और पौष कृष्णा १४ मूल नक्षत्र में रात्रि के समय रानी ने पुत्र प्रसव किया। पुत्र का मुख देखते ही एक क्षण के लिए तो रानी को प्रसन्नता हुई किन्तु दूसरे ही क्षण उसे विचार आया—'जिस पुत्र के गर्भ में आने पर मुझे ऐसा क्रूर दोहद उत्पन्न हुआ, वह बड़ा होकर न जाने क्या उत्पात करेगा। पिता को जीवित भी छोड़ेगा या नहीं।' यह विचार आते ही माता को पुत्र से

अरुचि उत्पन्न हो गई। वह घृणापूर्वक टकटकी लगा कर उसे देखने लगी। धारिणी की घृणा तीव्र से तीव्रतर होती गई। उसने अपनी निजी दासी को बुलाकर आदेश दिया—

—तुरन्त कासी की एक पेटी ले आओ।

'जो आज्ञा' कहकर दासी चली गई।

जब तक दासी पेटी लेकर लौटी तब तक रानी ने पूरी तैयारी कर ली। उसने पेटी मे अपनी और राजा उग्रसेन की नामाकित मुद्रा रखी, साथ ही पूरा विवरण लिख कर एक पत्र तथा बहुत से रत्न भर दिये। उनके ऊपर अपने नव-जात शिशु को लिटा कर दासी को आज्ञा दी कि 'इसे यमुना नदी मे प्रवाहित कर आओ।'

पेटी का ढक्कन बन्द करते हुए रानी की एक आँख हँस रही थी और एक रो रही थी। पति और पुत्र स्त्री की दो आँखे ही तो है।

दासी ने स्वामिनी की आज्ञा का पालन किया। पेटी (सन्दूक) यमुना मे बहा दी गई।

---

० उत्तर पुराण मे तापस के निराहार रहने के कारणो का भी उल्लेख हुआ है और उसका नाम बताया है—जठर कौशिक। सक्षिप्त घटनाक्रम इस प्रकार है—

गगा और गधवती के सगम पर तापसो का आश्रम था। उसका कुलपति था जठर कौशिक। एक बार वहाँ गुणभद्र और वीरभद्र नाम के दो मुनि आए। उनकी प्रेरणा से वह बाल तप से विरत हुआ। उसके बाद तपस्या के प्रभाव से उसके पास सात व्यतर देवियाँ आई किन्तु उसने यह कहकर लौटा दिया कि अभी कुछ काम नही है, अगले जन्म मे सहायता करना। (श्लोक ३२८-३३०)

इसके पश्चात वह विचरण करता हुआ मथुरा नगरी मे आया। उसने मासखमण का अभिग्रह लिया था। राजा उग्रसेन ने उसे देखा तो भोजन का निमन्त्रण दे दिया। साथ ही प्रजा को आदेश दिया कि इन मुनि को कोई भी आहार न दे। (श्लोक ३३३)

प्रात. जव राजा उग्रसेन ने रानी से पूछा तो उसने कह दिया—'पुत्र उत्पन्न होते ही मर गया।'

राजा ने विश्वास कर लिया और वात आई गई हो गई।

—वसुदेव हिंडी, देवकी लंभक
—त्रिषष्टि० ८/२
—उत्तरपुराण ७०/३२२-३४६

❀

पहली वार मुनि भोजन हेतु आए तो राजभवन मे आग लग गई। अत किसी ने ध्यान नही दिया। (श्लोक ३३४)

दूसरी वार राजा के निमत्रण पर आए तो पट्ट हाथी विगड गया था। अत उन्हे निराहार रहना पडा। (श्लोक ३३५)

तीसरी वार राजा उग्रसेन के विशेष आग्रह पर पारणे हेतु पधारे। उस समय जरासध ने कुछ ऐसे पत्र भेजे थे कि उग्रसेन का चित्त व्याकुल हो रहा था अत उस दिन भी मुनि को लौटना पडा। (श्लोक ३३६)

तव प्रजा ने कहा कि राजा न तो स्वय आहार देता है और न हमको देने देता है न जाने उसकी क्या इच्छा है। यह सुनकर मुनि ने उग्रसेन को मारने का निदान कर लिया। (श्लोक ३३८-३४०)

कस की माता का नाम पद्मावती दिया है। (श्लोक ३४१)

कंस का पराक्रम ३.

कासी की पेटी यमुना की लहरो पर तिरती-तिरती मथुरा से शौर्यपुर नगर आ पहुँची।

प्रात काल सुभद्र नाम का रसवणिक[1] आवश्यक शारीरिक क्रियाओं से निवृत्त होने नदी के किनारे आया। उसने यह पेटी देखी तो उत्सुकतावश किनारे पर खीच लाया। पेटी मे एक नवजात शिशु तथा नामाकित राज-मुद्रा और पत्र से सब कुछ जान लिया।

सुभद्र ने वह पेटी लाकर घर मे रखी और अपनी इन्दु नाम की पत्नी को उस शिशु के पालन-पोषण का भार सौपा। कासी की पेटी मे मिलने के कारण शिशु का नाम रखा गया कस।

कस ज्यो-ज्यो बडा हुआ उसके बुरे लक्षण प्रगट होने लगे। वह अपने साथी बालको को मारता-पीटता। परिणामस्वरूप उस वणिक दम्पत्ति के पास नित्य ही उपालभ आने लगे। सुभद्र ने उसे डराया, धमकाया, वर्जना दी, ताडना दी किन्तु कस पर कोई प्रभाव न पडा। उसके उत्पात दिनोदिन बढते गये। क्रूरता तो कस के मुख पर हर समय खेलती रहती। उसकी भुजाओ मे खुजली चलती रहती। वह मचलता रहता किसी को मारने-कूटने के लिए।

दश वर्ष की अवस्था मे ही वह इतना दुर्दमनीय हो गया कि वणिक सुभद्र के काबू मे न रहा। जब सुभद्र के सभी प्रयास निष्फल हो गये तो उसने कस को ले जाकर वसुदेव का सेवक बना दिया।

---

१ घी-तेल आदि के व्यापारी को रसवणिक कहा जाता था।

[सम्पादक]

वसुदेवकुमार के पास कस को अपनी रुचि के अनुकूल वातावरण मिला। कुमार के निर्देशन मे वह अस्त्र-शस्त्र विद्या सीखने लगा। अन्य कलाओ का ज्ञान भी वसुदेव ने उसे करा दिया। कस वसुदेव से कलाएँ और विद्याएँ सीखता हुआ युवा हो गया। उसके अग-प्रत्यग पूर्ण विकसित हो गए और वल-पराक्रम भी वढ गया।

× × ×

शौर्यपुर के राजा समुद्रविजय अपने सभी छोटे भाइयो[1] तथा सभासदो के साथ राज्य सभा मे वैठे हुए थे। तभी द्वारपाल से आज्ञा लेकर एक दूत ने प्रवेश किया और अभिवादन करके अपना परिचय देता हुआ कहने लगा—

राजन्! मै राजगृह नरेश अर्द्धचक्री महाराज जरासध[2] का दूत हूँ।

---

१ समुद्रविजय के छोटे भाइया के नाम ये है—अक्षोभ्य, स्तिमित, सागर, हिमवान, अचल, धरण, पूरण, अभिचन्द्र और वसुदेव। इस प्रकार समुद्रविजय दश भाई थे और ये दशार्ह के नाम से प्रसिद्ध थे।

२ जरासध राजा वसु की वश परपरा मे उत्पन्न हुआ था।

शुक्तिमती नगरी के स्वामी वसु (प्रसिद्ध पर्वत-नारद विवाद का निर्णायक, हिंसक यज्ञो के पक्ष मे निर्णय देने के कारण नरक मे जाने वाला) की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र सुवसु अपने प्राण बचाकर नागपुर भाग गया था। (देखिए मधुकर मुनि जी कृत—राम-कथा हिंसक यज्ञो की उत्पत्ति, और त्रिषष्टि० ७।२)। उसका पुत्र वृहद्रथ हुआ। वृहद्रथ नागपुर छोडकर राजगृह नगर मे जा वसा। उसके पश्चात उसकी वश परम्परा मे अनेक राजा हुए। इसी वश परम्परा मे पुन वृहद्रथ नाम का राजा हुआ। इसका पुत्र हुआ जरासध। यह जरासध प्रचड आज्ञा वाला, भरतक्षेत्र के तीन खडो का स्वामी और प्रतिवासुदेव था।

[देखिए त्रिषष्टि शलाका ८।२ गुजराती अनुवाद, पृष्ठ २२०]

समुद्रविजय ने दूत को आदर सहित उचित आसन देकर पूछा।

—सब कुशल तो है ? क्या विशेष सदेश लाये हो ?

दूत ने अपने स्वामी का सन्देश बताया—

—राजन् ! वैताढ्यगिरि के समीप सिहपुर नगर के राजा सिह रथ को बाँध लाइये।

—क्यो ? क्या अपराध है उसका ?

—वह बडा दुर्मद और दुस्सह हो गया है। स्वामी ने यह भी कहा है कि सिहरथ को बन्दी बनाने वाले पुरुष के साथ उनकी पुत्री जीवयशा का विवाह कर दिया जायगा और पारितोपिक रूप मे एक समृद्ध नगर दिया जायगा।

राजा समुद्रविजय को पारितोपिक का लोभ तो बिल्कुल भी न था वरन् वे जीवयशा से दूर ही रहना चाहते थे। किन्तु जरासघ की इच्छा की अवहेलना भी नही की जा सकती थी। वे सोच-विचार मे पड गये। उनकी चिन्तित मुख-मुद्रा देखकर दूत ने व्यग किया—

—क्या सिहरथ का नाम सुनते ही दिल बैठ गया।

कुमार वसुदेव से रहा नही गया। वे तुरन्त बोल पड़े—

—दूत ! तुम निश्चिन्त रहो। सिहरथ को बन्दी ही समझो।

और उन्होने अग्रज समुद्रविजय से विनती की—

—भैया ! आप मुझे आज्ञा दीजिए। मैं सिहरथ को बन्दी बनाकर आपके सामने हाजिर कर दूंगा।

समुद्रविजय ने गभीरतापूर्वक उत्तर दिया—

—नही कुमार ! मैं ही सिहरथ को विजय करूँगा।

कुमार वसुदेव ने पुन. आग्रह किया। समुद्रविजय ने कुछ सोच कर उन्हे आज्ञा दी और चेतावनी देते हुए कहा—

—वसुदेव ! तुम जाना ही चाहते हो तो मैं रोकूंगा नही। साथ मे अपने सेवक कस को भी अवश्य ले जाओ तथा उसे पराक्रम दिखाने

का भरपूर अवसर देना। इसके अतिरिक्त सिहरथ को वन्दी वनाकर मेरे पास लाना, सीधे जाकर जरासघ को मत सौप देना।

समुद्रविजय की चेतावनी वसुदेव कुमार ने हृदयगम की और सिहपुर की ओर चल दिये।

राजा सिहरथ ने जैसे ही सुना कि वसुदेव कुमार युद्ध हेतु आये है, वह भी सेना सहित नगर से वाहर निकल आया।

दोनो ओर की सेनाओ मे युद्ध होने लगा। कस वसुदेव का सारथी था। सिहरथ और वसुदेव मे भयकर युद्ध हुआ। दोनो मे से कोई भी पीछे नही हटता था। जय-पराजय का निर्णय नही हो पा रहा था।

एकाएक कस रथ पर से कूदा और गदा प्रहार से सिहरथ का रथ भग कर दिया। सिहरथ कस को मारने के लिए तलवार निकाल कर दौडा तो वसुदेव ने अपने क्षुरप्र वाण से उसका तलवार वाला हाथ छेद दिया। छलकपट मे निपुण कस ने सिहरथ को अचानक ही उठाया और वसुदेव के रथ मे फेक दिया।

राजा के गिरते ही सेना शात हो गई। वसुदेव विजयी हुए।

सिहरथ को वन्दी वनाकर वे अपने नगर शौर्यपुर आ पहुँचे।

अग्रज समुद्रविजय ने विजयी अनुज वसुदेव को कठ से लगा लिया।

अनुज वसुदेव को एकान्त मे ले जाकर समुद्र कहने लगे—

—वसुदेव! मेरी वात ध्यान से सुनो। कोप्टुकी नाम के ज्ञानी ने एक वार मुझसे कहा था कि 'जरासध की पुत्री जीवयशा कनिष्ठ लक्षणो वाली होने के कारण पति और पिता दोनो कुलो का नाश करने वाली है।' इसलिए उसके साथ तुम्हारा विवाह नही होना चाहिए।

अव कुमार वसुदेव को अग्रज की चिन्ता का कारण समझ मे आया। जव जरासध के दूत ने 'जीवयशा' देने की वात कही थी तभी तो उनके मुख पर चिन्ता की रेखा खिच आई थी। वसुदेव ने पूछा—

—तात! अव क्या हो? इस जीवयशा से कैसे छुटकारा मिले?

समुद्रविजय ने अपनी योजना समझाई—

—तुम चिन्ता मत करो कुमार ! मै पहले ही निर्णय कर चुका हूँ। कह देना कस ने ही सिंहरथ का पराभव किया है। इसीलिए तो भेजा था उसे तुम्हारे साथ।

अग्रज की दूरदर्शिता और चतुराई से कुमार प्रभावित हुए। किन्तु अपने हृदय की शका उन्होंने कह डाली—

—परन्तु कस तो वैश्य पुत्र है, और जरासध क्षत्रिय। वह अपनी कन्या इसे देगा ही क्यो ?

यह समस्या वास्तव मे गभीर थी। क्षत्रिय अपनी पुत्री वैश्य को नही देते—यह परम्परा है। समुद्रविजय कुछ क्षण मौन होकर सोचते रहे फिर बोले—

—बात तो तुम ठीक कह रहे हो परन्तु कस की प्रवृत्तियाँ तो क्रूर है, वणिकवृत्ति उसमे बिल्कुल भी नही है।

—हाँ है तो यही बात ! युद्धभूमि मे उसकी निर्भीकता, साहस और पराक्रम को देखकर कोई भी उसे वैश्य-पुत्र नही मान सकता। मुझे तो ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह क्षत्रिय-पुत्र ही हो। उसके जन्म के सम्बन्ध मे कोई रहस्य तो नही है ?

एक नई राह मिली समुद्रविजय को। तुरन्त रसवणिक सुभद्र को बुलाया गया।

सुभद्र आया तो समुद्रविजय ने उससे छूटते ही प्रश्न कर दिया—

—सेठ ! कस किसका पुत्र है ?

प्रश्न अचानक था और वह भी राजा द्वारा किया गया। काँप गया रसवणिक। उसके मुख से आवाज ही नही निकल सकी।

—बोलते क्यो नही ?—राजा की आवाज फिर गूँजी।

—ज ज जी महारा ज !—हकलाते हुए सेठ के मुख से निकला।

राजा समझ गये कि सेठ घबडा गया है। उन्होने स्वर को मधुर बनाते हुए आश्वस्त किया—

—कस के जन्म का रहस्य जानना चाहते है हम ।

अब तक सेठ सुभद्र भी आश्वस्त हो चुका था। किन्तु कस की क्रूर वृत्ति को वह भली-भाँति जानता था। उसने समझा कि कोई बहुत ही गभीर वात हो गई है। इसीलिए राजा ने यह प्रश्न किया है। विनम्र स्वर मे पूछा—

—क्या कोई गभीर अपराध हो गया, महाराज ?

—नही, अपराध तो नही हुआ किन्तु उसके वश परिचय की आवश्यकता आ पडी ।

—अभय दे, महाराज ! —सेठ का हृदय अव भी सशकित था ।

—तुम पूर्ण रूप से निश्चिन्त रहो। मेरी ओर से अभय है।—राजा समुद्रविजय ने उसे अभय दिया ।

महाराज के वचनो से पूर्ण आश्वस्त होकर सेठ कहने लगा—

—यह वालक मुझे यमुना नदी मे वहती हुई एक कासी की पेटी मे मिला था। कासी की पेटी मे होने के कारण ही इसका नाम कस पडा। उस पेटी मे मथुरापति महाराज उग्रसेन और उनकी पटरानी धारिणी की नामाकित मुद्राएँ थी और पत्र तथा कुछ रत्न। वह पत्र इस वात का साक्षी है कि यह महाराज उग्रसेन का ही पुत्र है। ज्यो-ज्यो कस वढ़ता गया त्यो-त्यो उसकी क्रूर प्रवृत्तियाँ उजागर होती गई। वह पडौसियो के वच्चो को मारने-पीटने लगा। मैंने उसे सँभालने का वहुत प्रयास किया किन्तु जव वह मेरी सामर्थ्य से वाहर निकल गया तो दश वर्ष की आयु मे ही मैंने उसे कुमार वसुदेव की सेवा मे अर्पित कर दिया ।

श्री महाराज ! यही है कस के जन्म की कहानी ।

—कहाँ है, वे नामाकित मुद्रा और पत्र ?—समुद्रविजय ने कस जन्म का रहस्य जानकर पूछा ।

—घर पर ही है, मैंने उन्हे सुरक्षित रूप से रख छोडा है।—सेठ ने वताया ।

—तुरन्त जाकर ले आओ।—राजा समुद्रविजय ने आदेश दिया ।

रसवणिक ने महाराज को प्रणाम किया और 'जो आज्ञा' कहकर चल दिया।

उसने शीघ्र ही नामांकित मुद्रा और पत्र महाराज के समक्ष उपस्थित कर दिये।

राजा का संकेत पाकर वणिक् अपने घर चला आया।

अब समुद्रविजय ने अनुज वसुदेव कुमार से कहा—

—यह समस्या भी हल हो गई। निश्चय हो गया कि कंस मथुरा-पति उग्रसेन का पुत्र है।

समुद्रविजय और वसुदेव कुमार अपने साथ कंस और वन्दी सिंहरथ को लेकर जरासंध के पास पहुँचे। प्रसन्न होकर जरासंध ने जीवयशा के साथ लग्न की बात कही तो वसुदेव ने कंस के पराक्रम उल्लेख करते हुए बताया कि 'सिंहरथ राजा को इसी ने वंदी बनाया है। इसलिए जीवयशा का उचित अधिकारी यही है।'

अपने स्वामी वसुदेव के इन वचनों को सुनकर कंस कृतज्ञता से भर गया और जरासंध प्रसन्न होकर अपनी पुत्री जीवयशा का विवाह उससे करने को प्रस्तुत हो गया।

कंस के वंश के सम्बन्ध में जरासंध ने जानना चाहा तो समुद्र विजय ने पूरा वृत्तान्त सुनाकर कहा - 'यह महाभुज कंस यादव वंशी महाराज उग्रसेन का पुत्र है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं।'

जीवयशा और कंस का परिणय हो जाने के बाद जरासंध ने उससे पूछा—

—कंस! तुम्हें कौन सी नगरी का राज्य चाहिए? निस्संकोच माँग लो।

अपने वंश का परिचय जानते ही कंस जलकर खाक हो गया था। उसे अपने पिता पर बड़ा क्रोध आ रहा था। वसुदेव के प्रति कृतज्ञता और आदर के कारण वह स्पष्ट तो कुछ कह नहीं सका परन्तु मन ही मन अपने माता-पिता को पीडित करने का उसने निश्चय कर लिया।

उसे गभीर विचार मे निमग्न देख कर जरासध पुन बोला—

—किस विचार मे निमग्न हो गये ? सकोच की आवश्यकता नही । जो नगरी पसन्द हो, माँग लो ।

कस ने माँगी—

—यदि आप मुझे देना ही चाहते है तो मथुरा नगरी का राज्य दीजिए ।

हँस कर जरासध ने कहा—

– मथुरा पर तो तुम्हारे पिता का अधिकार है ही । वह तो तुम्हे वैसे ही मिल जायगी । कोई और नगरी माँग लो ।

अपने मनोभावो को दवाकर कस वोला—

—पिता के राज्य के रूप मे नही, मथुरा का राज्य आप मेरे पराक्रम के प्रतिफल के रूप मे दीजिए ।

—'जैसी तुम्हारी इच्छा' कहकर जरासध ने मथुरा नगरी कस को दे दी और साथ ही दी वहुत वडी सेना ।

जरासध से प्राप्त सेना साथ लेकर कस धकधकाता हुआ राजगृह से मथुरा की ओर चल दिया ।

मथुरा आकर उसने अपने पिता उग्रसेन को वन्दी वनाकर पिजडे मे रख दिया ।

उग्रसेन के अतिमुक्त आदि कई अन्य पुत्र भी थे । पिता के पराभव से दु खी होकर अतिमुक्त प्रव्रजित हो गये ।

कस ने अपने पालनकर्ता सुभद्र वणिक को बुलाकर धन आदि से उसका वहुत सत्कार किया ।

उसने अपनी माता धारिणी को वन्दी नही वनाया । धारिणी वार-वार उससे प्रार्थना करती रही कि 'सारा अपराध मेरा है, तुम्हारे पिता का कोई दोष नही । उन्हे इस वारे मे कुछ भी मालूम नही है । उन्हे छोड दो ।' किन्तु कस ने उसकी एक न सुनी ।

जब कंस ने माता की बात न मानी तो रानी धारिणी कंस के अन्य मान्य पुरुषों के पास जाकर पुकार करने लगी। धारिणी के सभी प्रयास विफल हो गये। कंस ने उग्रसेन को नहीं छोड़ा। 'पूर्वजन्म का किया हुआ निदान कभी मिथ्या नहीं होता।'

—वसुदेव हिंडी, श्यामा-विजया लम्भक

त्रिषष्टि० ८/२

—उत्तरपुराण ७०/३४८-३६८

---

० उत्तरपुराण के अनुसार

१ पेटिका को कौशाबी की शूद्र स्त्री मदोदरी ने निकाला था। बचपन मे ही क्रूर प्रवृत्ति से तंग आकर मदोदरी ने उसे घर से निकाल दिया और वह सूरीपुर जाकर वसुदेव का सेवक बन गया। (श्लोक ३४८-३५१)

२ सिंहरथ को सुरम्य देश के अन्तर्गत पोदनपुर का राजा माना गया है। (श्लोक ३५३)

यहाँ मदोदरी वह सन्दूक जरासंध को दिखाती है। (श्लोक ३६१)

४. वसुदेव का निष्क्रमण

जरासंध से सत्कारपूर्वक विदा होकर राजा समुद्रविजय और वसुदेव कुमार वापिस शौर्यपुर लौट आये।

शौर्यपुर मे वसुदेव कुमार स्वेच्छा पूर्वक घूमते। उनकी रूपराशि इतनी आकर्षक थी कि स्त्रियाँ उन्हे देखकर आकृष्ट हो जाती। वे घर के काम-काज और लोकमर्यादा को तिलाजलि देकर एकटक उन्हे ही देखने लगती। युवतियो और किशोरियो की तो बात ही क्या प्रौढा और वृद्धा भी कामविह्वल हो जाती। किन्तु वसुदेव कुमार इस सबसे निर्लिप्त अपनी धुन और मस्ती मे इधर-उधर घूमते और मनोरंजन करते रहते।

कुछ दिन तक तो प्रजाजनो ने सहन किया लेकिन जब स्थिति अधिक बिगड गई तो एकान्त मे आकर राजा समुद्रविजय से फरियाद की—

—महाराज! आपके छोटे भाई वसुदेव कुमार के रूप के कारण नगर की स्त्रियो ने मर्यादा का त्याग कर दिया है। जो इन्हे एक बार देख लेती है वह इनका ही नाम रटने लगती है। तो जब ये बार-बार दिखाई देते है तब क्या दशा होती होगी, आप स्वय विचार कर लीजिए।

अनुज वसुदेव कुमार अतिशय रूपवान हैं यह तो राजा समुद्रविजय भी जानते थे किन्तु बात इतनी आगे बढ चुकी है, इसका उन्हे स्वप्न में भी अनुमान नही था। रूपवान होना तो अच्छा है, यह पुण्य का फल है किन्तु अतिशय रूप जो लोक मर्यादा के नाश का कारण

बन जाय, अवश्य ही बन्धन लगाने योग्य है। राजा समुद्रविजय ने प्रजाजनो को आश्वासन दिया—

—मै उचित व्यवस्था कर दूंगा। आप लोग इस बात की चर्चा वसुदेव से न करे।

प्रजाजनो ने आश्वस्त होकर महाराज को प्रणाम किया और अपने घरो को लौट गये। उन्हे क्या आवश्यकता थी कुमार से चर्चा करने की—पेड गिनने से मतलब या आम खाने से।

राजा समुद्रविजय विचार करने लगे कि कोई ऐसा उपाय हो जिससे साँप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे। प्रजा की शिकायत भी दूर हो जाय और कुमार को भी बुरा न लगे। सोचते-सोचते एक विचार मस्तिष्क मे कौधा और उसे ही क्रियान्वित करने का उन्होने निर्णय कर लिया।

अनुज को अपनी बगल मे बिठाकर स्नेहार्द्र स्वर मे समुद्रविजय बोले—

—दिनभर इधर-उधर बाहर घूमते रहते हो। देखो तो सही देह-काति कैसी क्षीण हो गई है।

—तो महल मे बैठा-बैठा क्या करूँ? मन लगता नही निठल्ले बैठे और आप कोई काम बताते नही।

—अरे काम की क्या बात? जो कलाएँ तुमने नही सीखी उन्हे सीखो और जो सीख ली है उनका पुन अभ्यास करो। क्योकि कला बिना अभ्यास के विस्मृत हो जाती है।

—ठीक है, आज से ऐसा ही करूँगा।

अग्रज की इच्छानुसार अनुज महल मे रहकर नृत्य, गान, सगीत आदि कलाओ का अभ्यास करके ही मनोविनोद मे अपना समय बिताने लगे।

प्रजा की शिकायत भी मिट गई और कुमार को बुरा भी न लगा।

एक दिन कुब्जा नाम की दासी गध लेकर जा रही थी कि कुमार वसुदेव को दिखाई दे गई। कुमार ने उससे पूछा—

—यह गध किसके लिये ले जा रही हो ?

—कुमार ! महारानी शिवादेवी की आज्ञा से महाराज समुद्र-विजय के लिए ।

मुस्कराकर कुमार ने कहा—'यह सुगन्धित द्रव्य मेरे काम आयेगा ।' और गध का पात्र कुब्जा के हाथ से ले लिया ।

कुब्जा अनुनयपूर्ण स्वर मे गध-पात्र माँगती रही और कमार हँसते-मुस्कराते उसे खिझाते रहे । तुनक कर कुब्जा बोली—

—ऐसे क्रिया-कलापो के कारण ही तो तुम यहाँ पडे हो ।

—क्या अभिप्राय ?

—अभिप्राय स्पष्ट है । आपकी दशा यहाँ वन्दियो की सी है ।

—साफ-साफ वताओ मामला क्या है ?

अब कुब्जा[१] को आभास हुआ कि उसके मुख से एक गूढ रहस्य प्रगट हो गया है ।

कुमार वार-वार रहस्य वताने का आग्रह करने लगे और कुब्जा कन्नी काटने लगी । किन्तु कहाँ दासी और कहाँ कुमार, उसे सपूर्ण रहस्य वताना ही पडा ।

कुब्जा के रहस्योद्घाटन ने वसुदेव के हृदय मे हलचल मचा दी । उन्होने गध पात्र तो कुब्जा को लौटा दिया और स्वय विचार निमग्न हो गये । उन्होने नगर छोडने का निश्चय कर लिया ।

---

१ कुब्जा नामक दासी के स्थान पर उत्तरपुराण मे निपुणमती नाम के बहुत बोलने वाले सेवक द्वारा यह रहस्योद्घाटन कराया गया है । निपुणमती के वचनो की परीक्षा करने के लिए जब वसुदेव बाहर जाने लगे तो द्वारपालो ने यह कह कर उन्हे रोक दिया कि 'आपके बडे भाई ने हम लोगो को यह आज्ञा दी है कि आपको बाहर न जाने दिया जाय, इसलिए आप बाहर न जाये ।' यह सुन कर उस समय तो वसुदेव वही रह गये पर दूसरे ही दिन विद्या सिद्ध करने के बहाने घोडे पर सवार होकर श्मशान चले गये ।

[उत्तरपुराण ७०/२२९-४१]

उसी रात के अंधेरे मे गुटिका से अपना रूप परिवर्तित करके वे महल से बाहर निकल गये।

नगर से बाहर निकल कर वसुदेव कुमार श्मशान पहुँचे और वहाँ किसी अनाथ शव को एक चिता मे डाल दिया। इसके बाद उन्होने लिखा—'लोगो ने गुरुजनो के सामने मेरे गुण को दोष रूप मे प्रकट किया और अग्रज ने भी उन पर विश्वास कर लिया इसलिए मैं लोकापवाद के कारण अग्नि मे प्रवेश करता हूँ। सभी मेरे दोषो को क्षमा करे।'

यह लिखकर उन्होने एक स्तंभ[1] पर लटका दिया और स्वय ब्राह्मण का वेश बना कर आगे चल दिये।

कुछ समय तक मार्ग मे भटकने के बाद वे सही रास्ते पर आये। तभी रथ मे बैठी किसी स्त्री ने उन्हे देखा। वह अपने पिता के घर जा रही थी। स्त्री ने अपनी माता से कहा—

—माँ! यह ब्राह्मण बहुत थका दिखाई पडता है। इसे रथ मे बिठा लो।

माता ने स्वीकृति दे दी और वे दोनो रथ मे बिठा कर वसुदेव कुमार को अपने ग्राम ले आई।

स्नान भोजन आदि से निवृत्त होकर ब्राह्मण रात को किसी यक्ष मन्दिर मे जा सोया।

× × ×

दूसरे दिन प्रातःकाल वसुदेव कुमार शौर्यपुर के राज महल मे न मिले तो चारो ओर उनकी खोज प्रारम्भ हो गई।

राज्य कर्मचारी और प्रजाजन उन्हे खोजते हुए श्मशान आ पहुँचे। श्मशान मे एक स्तम्भ पर उनके हाथ का लिखा हुआ पत्र और समीप ही अधजला विकृत-सा शव दिखाई दिया।

---

१ उत्तर पुराण मे घोडे के गले मे बाँधने का उल्लेख है। साथ ही उसमे ये शब्द और है—इस लोकापवाद से मृत्यु अच्छी इसलिए मैं अग्नि प्रवेश करता हूँ। [उत्तर पुराण ७०/२४२]

सभी को विश्वास हो गया कि वास्तव मे ही कुमार ने अग्नि प्रवेश कर लिया है।

यह समाचार मिलते ही महल मे रुदन मच गया। सपूर्ण यादव परिवार शोक निमग्न हो गया।[1]

यादवो ने कुमार वसुदेव को मरा जान कर उनकी उत्तर क्रिया कर दी।

कर्ण परम्परा द्वारा यह समाचार वसुदेव को भी ज्ञात हो गया। वे निश्चित होकर आगे बढ गये।

—त्रिषष्टि० ८/२
—उत्तरपुराण ७०/२१७-४७
—वसुदेव हिंडी, श्यामा-विजया लभक

❀

वसुदेव का वीणा-वादन ५.

चलते-चलते वसुदेव विजयखेट नगर मे जा पहुँचे । उनकी कला-गुण-सम्पन्नता से प्रभावित हो नगरपति राजा सुग्रीव ने अपनी दोनो पुत्रियो—श्यामा और विजयसेना का लग्न उनके साथ कर दिया । अपनी दोनो स्त्रियो के साथ वे सुख से रहने लगे । विजयसेना से उनके अक्रूर नाम का पुत्र हुआ ।

अचानक ही उनका दिल उचट गया और एक रात्रि को वे राज महल छोडकर चल दिये । चलते-चलते वे एक घोर जगल मे जा पहुँचे । मार्ग की थकान के कारण उन्हे प्यास लग आई । प्यास बुझाने के लिए वे जलावर्त नाम के एक सरोवर के पास जा पहुँचे ।

वसुदेव तृपातृप्ति के लिए सरोवर मे उतरने को ही थे कि बीच मे एक बाधा आ पडी । सामने से आकर एक विशालकाय हाथी ने उनका मार्ग रोक लिया । वसुदेव ने प्रयास किया कि मुठभेड न हो —गजराज अपनी राह चला जाय और वे अपनी प्यास बुझा कर अपनी राह पकडे किन्तु गजराज विशाल चट्टान की भाँति अड गया । जब दूसरा मार्ग न बचा तो वसुदेव कुमार सिह के समान उछलकर उसकी गर्दन पर जा चढे और अपने भुजदडो मे उसकी गर्दन जकड कर उसे निर्मद कर दिया ।

यह दृश्य आकाश से अर्चिमाली और पवनजय नाम के दो विद्या-धर देख रहे थे । वे तुरन्त नीचे उतरे और उन्हे अपने साथ कुजरावर्त नगर को ले गये । वहाँ के राजा अशनिवेग ने अपनी पुत्री श्यामा का लग्न उनके साथ कर दिया ।

श्यामा के साथ वसुदेव के दिन सुख मे व्यतीत होने लगे। एक दिन श्यामा ने इतना सुन्दर और मधुर वीणावादन किया कि वसुदेव ने प्रसन्न होकर उससे वर माँगने को कहा। श्यामा ने वरदान माँगा—'मुझसे आपका वियोग कभी न हो।'

हँस कर वसुदेव बोले—

—यह तो कोई वरदान न हुआ। स्त्री मात्र की इच्छा है यह तो।

—मुझे यही वरदान चाहिए।—श्यामा ने आग्रहपूर्वक उत्तर दिया।

बात सामान्य थी किन्तु श्यामा के विशेष आग्रह के कारण वसुदेव को उसमे किसी रहस्य का आभास हुआ। वे बोले—

—प्रिये! तुम्हारी बात मे कोई रहस्य नजर आता है।

—रहस्य है तो होने दीजिए। आपको वरदान देने मे क्या आपत्ति है?

—आपत्ति की बात तो अलग है। मुझे वह रहस्य बताओ।

वसुदेव के आग्रह पर श्यामा कहने लगी—

वैताढ्यगिरि पर किन्नरगीत नाम के नगर मे अर्चिमाली नाम का राजा राज्य करता था। उसके ज्वलनवेग और अशनिवेग नाम के दो पुत्र हुए। अर्चिमाली ने ज्वलनवेग को राज्य पद देकर सयम ग्रहण कर लिया। ज्वलनवेग के अर्चिमाल नाम की स्त्री से एक पुत्र हुआ अगारक, और अशनिवेग को सुप्रभा स्त्री से एक पुत्री हुई श्यामा-यानी मैं। ज्वलनवेग तो मेरे पिता अशनिवेग को सिहासन पर बिठा कर स्वर्ग चले गये किन्तु उनका पुत्र अगारक राज्य लोभी था। उसकी इच्छा स्वय राजा बनने की थी। उसने मुख से तो कुछ नही कहा परन्तु विद्या बल से मेरे पिता अशनिवेग को राज्य से बाहर निकाल दिया और स्वय राजा बन बैठा।

मेरे पिता अष्टापद पर्वत पर गये। वहाँ अगिरस नाम के चारण मुनि से उन्होने पूछा—

—गुरुदेव ! मुझे राज्य मिलेगा या नही ?

मुनिश्री का उत्तर था—

—तुम्हारी पुत्री श्यामा के पति के प्रभाव से तुम्हे राज्य की प्राप्ति होगी ।

—कौन होगा, श्यामा का पति ? कैसे पहचानूँगा मै उसे ? —प्रश्न उद्बुद्ध हुआ ।

—जलावर्त सरोवर के समीप जो पुरुष एक हाथी पर सवार होकर भुजाओ से ही उसे निर्मद कर दे, वही श्यामा का पति होगा । —उत्तर मिला ।

उसी दिन से मेरे पिता यही एक नगरी वसा कर रहने लगे । साथ ही जलावर्त सरोवर के किनारे कुछ विद्याधर तैनात कर दिये । उनमे से ही दो विद्याधर आपको ससम्मान यहाँ लाये थे ।

एक वार इसी स्थान पर धरणेन्द्र, नागेन्द्र और विद्याधरो की एक सभा हुई उसमे यह तय हुआ कि जो पुरुष साधुओ के समीप बैठा हो अथवा जिसके साथ स्त्री हो उसे मारने वाले विद्याधर की सभी विद्याएँ नष्ट हो जायेगी ।

हे स्वामी ! इसी कारण मैंने यह वरदान माँगा है कि 'मैं आपसे कभी अलग न होऊँ ।' क्योकि मुझे भय है कि आपको अकेला पाकर कही अगारक मार न डाले ।

वसुदेव कुमार ने श्यामा की इच्छा स्वीकार कर ली ।

दु ख के वाद सुख और सुख के वाद दु ख सृष्टि के इस नियम के अनुसार एक दिन अवसर पाकर सोते हुए वसुदेव कुमार को अगारक ले उडा । वसुदेव की नीद खुली तो उन्होने देखा कि 'श्यामा उन्हे आकाश मार्ग से उडाये लिए जा रही है ।' वे कुछ सोच-समझ पाते तव तक श्यामा की आवाज उनके कानो मे पडी 'खडा रह, खडा रह ।'

दो श्यामा देखकर वसुदेव कुमार सभ्रमित हो गये । पहली श्यामा ने दूसरी श्यामा के तलवार से दो टुकडे कर दिये । अव दो श्यामाएँ

पहली श्यामा से लडने लगी। वस्तुत अगारक ने अपना रूप श्यामा का सा वना रखा था। वसुदेव ने समझ लिया कि यह सब माया है। उन्होंने अपना मुष्टि का प्रहार कर दिया। वज्रसमान मुष्टिका-आघात से अगारक पीडित हो गया। उसने वसुदेव को वही से छोड दिया।

वसुदेव आकाश से गिरे तो सरोवर मे जा पडे। यह सरोवर चपा नगरी के बाहर था। हस के समान उन्होने तैर कर तालाव पार किया और किनारे पर ही रात बिताई। प्रात काल एक ब्राह्मण के साथ नगर मे आ गये।

नगर मे एक विचित्र वात दिखाई पडी उन्हे। जिस युवक को देखो, उसी के हाथ मे वीणा। सभी वीणावादन सीखने मे तत्पर। मानो नगरी का नाम चपापुरी न होकर वीणापुरी हो। मार्ग मे एक ब्राह्मण से वसुदेव ने इसका कारण पूछा तो उसने बताया—

इस नगर मे सेठ चारुदत्त की कन्या है गन्धर्वसेना। गन्धर्वसेना अति रूपवती और कला निपुण है। वीणावादन मे तो उसका कोई मुकाबिला ही नही। उसने प्रतिज्ञा की है कि 'जो मुझे वीणावादन मे जीत लेगा उसी को अपना पति बनाऊँगी।' उसी को प्राप्त करने हेतु ये सब युवक वीणा सीखने मे रत है।

ब्राह्मण के मुख से कारण सुनकर वसुदेव के मुख पर मुस्कान की एक रेखा खेल गई। उन्होने पुन पूछा—

—ये सभी युवक किस श्रेष्ठ गायनाचार्य से शिक्षा प्राप्त कर रहे है ?

मुस्करा पडा ब्राह्मण। वोला—

—तुम्हारे भी हृदय मे गधर्वसेना की गध वस गई ? गायनाचार्य सुग्रीव और यशोग्रीव यहाँ के शिक्षाचार्य भी है और उन्ही के समक्ष प्रति मास प्रतियोगिता भी होती है।

—क्या अभी तक कोई विजयी नही हो सका, प्रतियोगिता मे ?

—हुआ क्यो नही ? श्रेष्ठि-पुत्री गधर्वसेना वाजी जीतती रही है।

यह कह कर ब्राह्मण अपनी राह चला गया और वसुदेव जा पहुचे गायनाचार्य सुग्रीव के घर। सुग्रीव को अभिवादन करके अपना मतव्य प्रकट किया—

—मैं गौतम गोत्री स्कन्दिल नाम का ब्राह्मण हूँ। मेरी इच्छा गधर्वसेना से परिणय करने की है। आप मुझे शिष्य रूप मे स्वीकार करके सगीत सिखाइये।

गायनाचार्य ने उन्हे नजर भर देखा और चुप हो गये। मुँह से न 'हॉ' कहा न 'ना'। वे किस-किस का आदर करते ? वहॉ तो रोज दो-चार युवक गधर्वसेना की गध से बावले होकर आते थे।

वसुदेव ने गायनाचार्य की 'हॉ' 'ना' की चिन्ता नही की। वे वही रहने लगे। अनाडी के समान वे गायनविद्या सीखते और ग्राम्य वचन[1] बोल कर लोगो का मनोरजन करते।

प्रतियोगिता वाले दिन आचार्य सुग्रीव की स्त्री ने उन्हे पहनने के लिए सुन्दर वस्त्र का जोटा (चागा) दिया। वसुदेव ने वह चोगा अपने पुराने वस्त्रो के ऊपर ही पहिन लिया और प्रतियोगिता स्थल की ओर चल दिये।

इस विचित्र वेश-भूषा के कारण नगर निवासी उनका उपहास करते, खिल्ली उडाते।

'तुम्हे ही गधर्वसेना वरण करेगी। जल्दी-जल्दी चलो।' इस प्रकार कहते हुए अनेक युवक उनके साथ चलने लगे।

नगर निवासियो के उपहास मे स्वय भी हँसते हुए कुमार वसुदेव प्रतियोगिता-स्थल पर जा पहुँचे।

युवको ने मुख से ही उनकी हँसी नही उडाई वरन् वे कुछ और आगे बढ गये। उन्हे एक ऊँचे आसन पर बिठा दिया गया।

वसुदेव कुमार सब कुछ समझ रहे थे किन्तु उन्होने इस ओर कोई ध्यान ही दिया। उन्हे अपनी कला पर पूर्ण विश्वास था।

---

१ व्याकरण से रहित अशुद्ध उच्चारण पूर्वक बोले गये वचन जो सभ्य और सुसस्कृत व्यक्तियो के हास्य का कारण होते है।

सभी लोगो के उचित स्थान पर बैठने के बाद गधर्वसेना सभा मडप मे आई। उसका दप-दप करता रूप सभी की आँखो मे बस गया मानो कोई देवागना ही पृथ्वी पर उतर आई हो। सभी पर एक विहगम दृष्टि डालकर वह अपने नियत आसन पर बैठ गई।

अब प्रारभ हुई वीणा-वादन प्रतियोगिता। एक-एक करके सभी विदेशी और स्वदेशी युवक हारते चले गये। गधर्वसेना की आँखो मे विजय-मुस्कान खेलने लगी। अन्त मे बारी आई वसुदेवकुमार की।

विजयी मुद्रा मे मुख उठाकर गधर्वसेना ने वसुदेव को देखा तो देखती ही रह गई। इतना सुन्दर रूप, ऐसा लावण्य, देवो को भी लज्जित करने वाली काति—यह मनुष्य है या देव! श्रेष्ठि-पुत्री की आँखे खुली की खुली रह गई। वह अपलक देखने लगी मानो कुमार की रूप सुधा को आँखो से पी जाना चाहती हो।

गायको ने जब गधर्वसेना की यह दशा देखी तो उनकी नजरे भी कुमार की ओर उठ गई। यह क्या चमत्कार? साधारण सा उपहास-प्रद युवक ऐसा सुरूपवान कैसे बन गया? सभी आश्चर्य मे डूबकर काना-फूसी करने लगे।

वास्तव मे कुमार वसुदेव ने इस समय अपना असली रूप प्रगट कर दिया था।

लोगो की काना-फूसी कुछ उच्च स्वर मे परिणत हो गई। श्रेष्ठि-पुत्री का ध्यान भग हुआ। उसे अपनी प्रतिज्ञा याद आ गई। उसके सकेत पर दासियो ने एक वीणा कुमार के हाथो मे दे दी। कुमार ने उसमे दोष निकाल कर वापिस कर दिया। एक के बाद एक वीणाएँ आती गई और कुमार उन्हे सदोष बताकर वापिस करते रहे। अन्त मे गधर्वसेना ने अपनी वीणा दी। वीणा के तारो को मिलाते हुए वसुदेव ने पूछा—

—शुभे! क्या बजाऊँ?

—गीतज्ञ ! पद्म चक्रवर्ती के बड़े भाई मुनि विष्णुकुमार के त्रिविक्रम सबधी गीत को इस वीणा मे बजाओ।

'जैसी तुम्हारी इच्छा' कहकर कुमार ने वीणा के तार झकृत किये। प्रथम झकार ही मानो मधुप झकार थी। सभा सुधारस से आप्लावित हो गई। वसुदेव की अगुलियाँ वीणा के तारो से खेलने लगी। आरोह, अवरोह, तीव्र, मध्यम, मद, तार सप्तक, सुतार सप्तक, लय, आदि मानो सगीत देवता स्वय साकार हो गये। महा-मुनि विष्णुकुमार की एक-एक क्रिया सगीत-लहरी के द्वारा कानो मे होकर सुनने वालो के मस्तिष्क मे नाचने लगी। ऐसा लगा कि विष्णुकुमार मुनि साक्षात् सामने उपस्थित हो। मुनियो के उपसर्ग मे करुण रस का उद्रेक हुआ तो महामुनि के रूप मे वीर रस का और अन्त मे भक्ति रस और शात रस की ग गा मे गोता लगाकर सभी पवित्र हो गये। वादक आत्म विभोर था और श्रोता आत्म-विस्मृत। किसी को यह भान नही रहा कि वीणा बज रही है। वे तो यही समझ रहे थे कि उनके मस्तिष्क के तत् स्पन्दन कर रहे है। इन्ही के कारण यह स्वर निकल रहा है और मस्तिष्क पटल पर साक्षात् दृश्य दिखाई दे रहा है। सगीत विद्या की पराकाष्ठा ही कर दी कुमार वसुदेव ने !

वीणावादन रुक जाने के बाद भी कुछ समय तक मधुर ध्वनि गूँजती रही। एकाएक ध्वनि बन्द हुई तो लोगो की बन्द आँखे खुल गई। वसुदेव कुमार और श्रेष्ठि-पुत्री आत्म विस्मृत से पलके बन्द किये बैठे थे।

'धन्य' 'धन्य' की आवाजो से उनकी आँखे खुली। एक स्वर से सबने स्वीकार किया—देवोपम ! सगीत की पराकाष्ठा हो गई। निश्चित ही इस युवक की जीत हुई।

गधर्वसेना दृष्टि नीची करके कुमार के चरणो को देखने लगी। उसके मुख पर लज्जा थी—हार की नही, गुणज्ञ पति के प्रति प्रेम की।

सेठ चारुदत्त ने सभी गायको को विदा करके कुमार को रोक लिया। बडे आदर-सत्कार के साथ उन्हे अपने घर लाया।

चारुदत्त के घर मे विवाह के मगल वाद्य बजने लगे। विवाह की तैयारियाँ होने लगी। लग्न का दिन भी आ गया। वर-वधू लग्न-मडप मे बैठे थे उस समय सेठ चारुदत्त ने बड़े स्नेह से पूछा—

—कुमार! अपना गोत्र बताओ जिससे मै उसे उद्देश्य कर दान दूँ।

कुमार ने हँसकर उत्तर दिया—

—आपकी जो इच्छा हो वही गोत्र समझ लीजिए।

सेठ कुमार के शब्दो मे छिपे व्यग को समझ गये। बोले—

—यह वणिक-पुत्री है, इसीलिए व्यग कर रहे है आप?

—इसमे सन्देह भी क्या है? वणिक् पुत्री तो वणिक् पुत्री ही रहेगी।

—नही कुमार! जब तुम्हे इसके वश का परिचय प्राप्त होगा तब तुम आश्चर्य करोगे। यह अवसर उस लम्बी घटना को सुनाने का नही है।

वसुदेवकुमार आश्चर्यचकित होकर सेठ की ओर देखने लगे। सेठ ने ही पुन कहा—

—तुम्हारे छिपाने पर भी मैं जान गया हूँ कि तुम्हारा नाम वसुदेव कुमार है और तुम यदुवशी क्षत्रिय हो।

वसुदेव की आँखे विस्मय से फटी रह गई।

सेठ ने कुमार को विस्मित ही छोडकर विवाह की रस्मे पूरी की।

गायनाचार्य सुग्रीव और यशोग्रीव ने अपनी पुत्रियाँ श्यामा और विजया का विवाह वसुदेव के साथ कर दिया।

गन्धर्वसेना के साथ कुमार वसुदेव सुख से दिन तो विताने लगे किन्तु उनके हृदय मे उसके विगत जीवन को जानने की जिज्ञासा बनी रही ।

—त्रिषष्टि० ८/२
—उत्तरपुराण ७०/२४९-२९६
—वसुदेव हिंडी, श्यामा-विजया तथा श्यामली और गधर्वदत्ता लभक

० उत्तर पुराण की भिन्नताएँ इस प्रकार है—

(१) विजयपुर के स्थान पर विजयखेट नगर वताया है और राजा का नाम सुग्रीव के वजाय मगधेश तथा पुत्री का नाम श्यामा के स्थान पर श्यामला । (श्लोक २४९-५०)

(२) वन का नाम देवदारु है । (श्लोक २५२)

(३) कुजरावर्त नगर के स्थान पर किन्नरगीत नगर । (श्लोक २५३)

(४) श्यामा के स्थान पर शाल्मलिदत्ता । (श्लोक २५४)

(५) सुप्रभा के स्थान पर पवनवेगा । (श्लोक २५५)

(६) यहाँ निमित्त ज्ञानी कहा गया है । साथ ही नाम नही वताया गया । (श्लोक २५५)

(६) यहाँ इतना उल्लेख है कि शाल्मलिदत्ता ने उन्हे पर्णलघी विद्या से चपापुर नगर के समीप वाले सरोवर के वीच टीले पर धीरे से उतार दिया । (श्लोक २५७-५८)

(८) सगीताचार्य का नाम मनोहर है। (श्लोक २६२)

(९) गधर्वदत्ता के स्वयवर मे वसुदेव पहले विष्णुकुमार मुनि की कथा सुनाकर कहते हैं कि देवो ने उस समय घोषा, सुघोषा, महासुघोषा और घोषवती ये चार वीणाएँ दी थी उनमे से घोषवती वीणा आपके परिवार मे है, उसे लाओ । (श्लोक २९५-९६) इसके वाद वे वीणा-वादन करके गधर्वदत्ता को जीतते है । (यहाँ गधर्वसेना का ही नाम गधर्वदत्ता है ।)

० वसुदेव हिंडी मे भी उत्तर पुराण के अनुसार विष्णुकुमार मुनि की कथा और देवप्रदत्त वीणा वजाने का उल्लेख है और गधर्वसेना का नाम भी गधर्वदत्ता है । (गधर्वदत्ता लम्भक)

६ नवकार मन्त्र का दिव्य प्रभाव

एक दिन वसुदेव कुमार ने पूछ ही लिया—

—सेठजी ! आपने मेरा नाम और वश कैसे जाना ? क्या रहस्य है गधर्वसेना के विगत जीवन का ?

सेठ चारुदत्त ने उत्तर दिया—

—कुमार ! ध्यान से सुनो। मै तुम्हे पूरी घटना सुनाता हूँ।

इसी चपानगरी मे भानु नाम का एक सेठ रहता था। उसके सुभद्रा नाम की एक पुत्री तो थी किन्तु पुत्र कोई नही। पुत्र की चिन्ता मे वह दु खी रहता था। एक वार उसने किसी चारण मुनि से पूछा—प्रभो मुझे पुत्र प्राप्ति होगी या नही। मुनिराज ने वताया—'होगी'। उसके वाद मेरा जन्म हुआ।

एक दिन मैं अपने मित्रो के साथ सागर तट पर क्रीडा करने गया। वहाँ मुझे दो जोडी पद-चिन्ह दिखाई दिये। उनमे से एक पुरुष के चिन्ह थे और दूसरी स्त्री के। उत्सुकतावश मैं पद-चिन्हो को देखता-देखता आगे चला तो वे पद-चिन्ह एक कदलीकुज मे जाकर समाप्त हो गये थे। कदलीकुज मे झाँक कर देखा तो पुष्प शैया व ढाल-तलवार दिखाई दी और उनके पास ही तीन छोटी-छोटी पोटलियाँ। मै इतना तो समझ गया कि यहाँ एक पुरुष और एक स्त्री आये थे; पर अव वह दोनो कहाँ चले गये, यह जिज्ञासा मेरे मन मे उठ रही थी। उन्हे ढूँढने आगे चला तो क्या देखता हूँ कि मोटे वृक्ष के तने से एक पुरुष लोहे की कीलो से विधा पडा है। किसी ने उसे अचेत करके वृक्ष के तने के सहारे खडा किया और कीले ठोक दी।

उस पुरुष पर मुझे वडी दया आई। मै उसे वन्धन मुक्त करने का उपाय सोचने लगा। आयु भी मेरी छोटी थी। अभी किशोर ही

तो था मैं। मैंने अपने बुद्धि बल का प्रयोग किया। तीनो पोटलियो को उठा लाया। एक के प्रयोग से वे कीले निकल गई, दूसरी से उसके घाव भर गये और तीसरी ने उसे सचेत कर दिया।

मैं अपनी सफलता से प्रसन्न हो गया। उस पुरुप ने आँखे खोलते ही मुझे सामने खडा पाया तो मेरी ओर ध्यान से देखने लगा। मैंने उससे पूछा—

—महाभाग ! आप कौन है और आपकी यह दशा किसने की ?

वह पुरुप बताने लगा—

—उपकारी ! वैताढ्यगिरि पर शिवमदिर नगर के राजा महेन्द्र-विक्रम का पुत्र मैं अमितगति विद्याधर हूँ। एक बार धूमशिख और गौरमुड नाम के दो मित्रो के साथ क्रीडा करता हुआ हिमवान् पर्वत पर जा पहुँचा। वहाँ हिरण्यरोम नाम के मेरे तपस्वी मामा की सुन्दर पुत्री सुकुमालिका मुझे दिखाई दे गई। मेरे हृदय मे उसके प्रति अनुराग तो उत्पन्न हुआ किन्तु मैंने कुछ कहा नही। लौटकर अपने नगर को आ गया। मित्रो ने मेरा मनोभाव पिता को कह सुनाया और पिताजी ने मेरा विवाह सुकुमालिका के साथ कर दिया। हम दोनो पति-पत्नी परस्पर मनोरजन करते और सुख से दिन विताते।

मेरे मित्र धूमशिख के हृदय मे भी सुकुमालिका के प्रति काम भाव जाग्रत हो गया था। उसकी कुचेष्टाएँ समझ तो मैं भी गया किन्तु मैंने कुछ ध्यान नही दिया। एक दिन मैं अपनी पत्नी तथा मित्र धूम-शिख के साथ यहाँ आया। असावधान जानकर उसने मुझे तो अचेत करके बधनो मे जकड दिया और सुकुमालिका का हरण करके ले गया।

मित्र ! तुमने मुझे इस महाकष्ट मे बचाया है। इस उपकार के बदले मैं तुम्हारा क्या काम करूँ ?

मैंने उससे कह दिया—

—आपके दर्शनो से ही मैं कृतार्थ हो गया। मुझे किसी वस्तु की आवश्यकता नही।

यह सुनकर वह विद्याधर कृतज्ञता प्रकट करके चला गया और मैं अपने घर लौट आया।

युवावस्था मे प्रवेश करने के बाद माता-पिता ने मेरा लग्न मित्रवती के साथ कर दिया। मित्रवती मेरे मामा सर्वार्थ की पुत्री थी। मेरी चित्तवृत्ति कला और विद्याओ मे थी इस कारण स्त्री मे आसक्त न हो सका। पिता ने मेरे इस व्यवहार को बदलने के लिए श्रृगारपरक साधन जुटा दिये। उपवन आदि मे घूमते-फिरते एक दिन मेरी भेट कलिगसेना की पुत्री वसन्तसेना वेश्या से हो गई। उसके पास मैं बारह वर्ष तक रहा और पिता की सोलह करोड स्वर्ण मुद्राएँ बरबाद कर दी। कगाल जानकर कलिगसेना ने मुझे घर से निकाल दिया।

वेश्या के घर से निकल कर अपने घर आया तो माता-पिता का स्वर्गवास हो चुका था। व्यापार के लिए धन शेष नही था। निदान अपनी पत्नी के आभूषण लेकर मामा के साथ उशीरवर्ती नगरी मे आया। वहाँ आभूषण बेचकर कपास खरीदा। कपास लेकर ताम्रलिप्ती नगरी जा रहा था कि मार्ग मे दावानल मे सब कुछ स्वाहा हो गया। मामा ने भाग्यहीन समझ कर मुझे त्याग दिया।

अश्व की पीठ पर बैठकर मैं अकेला ही पश्चिम दिशा की ओर चल दिया। मार्ग मे मेरा घोडा भी मर गया। अब पैदल ही चलता हुआ भूख-प्यास से व्याकुल प्रियगु नगर मे जा पहुँचा।

वहाँ पिता के मित्र सुरेन्द्रदत्त मुझे अपने घर ले गये। कुछ दिन सुखपूर्वक रहकर मैंने उनसे एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ व्याज पर ली और वाहन भरकर समुद्र मार्ग से व्यापारार्थ चल दिया। यमुना द्वीप तथा अन्य द्वीपो मे मेरा माल अच्छे लाभ से बिका। अब मेरे पास आठ करोड स्वर्ण मुद्राएँ हो गई। उन सब को लेकर समुद्र मार्ग से अपने नगर की ओर चला तो वाहन टूट गया। सारा उपार्जित धन तो समुद्र के गर्भ मे समा गया और मेरे हाथ लगा एक लकडी का तख्ता। जीव को प्राण सबसे ज्यादा प्यारे होते है। उस लकडी के मामूली से

तख्ते को प्राणाधार समझकर मैंने कस कर पकड़ लिया। सात दिन तक सागर की लहरो ने मुझे जिन्दगी और मौत का झूला झुलाकर तट पर ला फेंका। यह तट था उदुंबरावती कुल का और समीप ही था राजपुर नाम का एक नगर।

राजपुर नगर मे दिनकर प्रभ नाम का एक त्रिदण्डी साधु रहता था। मै दु खी तो था ही, अपना सारा दुःखड़ा उससे कह सुनाया। उसने मुझे अपने पास रख लिया।

एक दिन त्रिदण्डी ने कहा—

—तुझे धन की आवश्यकता है। कल हम लोग पर्वत के ऊपर चलेगे। वहाँ से मै तुझे एक रस दे दूँगा। उस रस के प्रभाव से करोडो का स्वर्ण तुझे प्राप्त हो जायगा और तेरी दरिद्रता सदा को मिट जायगी।

त्रिदण्डी के ये शब्द सुनकर मै बहुत प्रसन्न हुआ। दूसरे दिन प्रातःकाल हम दोनो चल दिये। एक भयकर वन को पार करके पर्वत पर चढने लगे। ऊपर पहुँच कर देखा तो वहाँ अनेक अभिमत्रित शिलाएँ पडी थी। त्रिदण्डी ने एक शिला को मत्र बल से हटाया तो दुर्ग पाताल नाम की एक भयकर कदरा दिखायी दी। हम दोनो उस कन्दरा मे प्रवेश कर गये। बहुत दूर तक चलने के बाद हम एक रस-कूप के पास पहुँचे। मैंने उसमे झाँक कर देखा तो ऐसा मालूम पडा मानो नरक का द्वार ही हो—घुप-अँधेरा था उसमे।

त्रिदण्डी ने मुझसे कहा—'इस कूप मे उतर कर तू एक तुबी रस भर ले।' मैं तो तैयार था ही तुरन्त स्वीकृति दे दी। एक छीके (माँची) मे बिठाकर उसने मुझे उतारा। वहाँ मैने उसमे घूमती एक जजीर और रस देखा। ज्यो ही मै तुबी मे रस भरने लगा किसी ने मुझे रोकने का प्रयास किया। मैंने पूछा—

—त्रिदण्डी ने मुझे रस लेने के लिए उतारा है, तुम क्यो रोकते हो ?

—इसीलिए तो रोकता हूँ।

—तुम हो कौन ?

—मै भी तुम्हारी ही तरह धन का लोभी हूँ।

—तुम इस कूप मे कैसे आ पडे ?

—इसी त्रिदण्डो ने मुझे गिरा दिया। मुझे भी इसने तुम्हारी ही तरह इस कूप मे उतारा था। जव मैंने इसे रस की तुवी दे दी तो इसने वजाय मुझे निकालने के इस कुए मे धकेल दिया। इस रस मे पड़े रहने के कारण मेरा माँस गल गया है। इसीलिए कह रहा हूँ कि तुम रस मे हाथ मत डालो। मुझे तुबी दे दो मै भर दूँगा।

मैने उसे तुवी दे दी और उसने रस भर दिया। तुवी एक हाथ मे लेकर दूसरे हाथ से मैंने रस्सी हिला दी। त्रिदण्डी ने रस्सी खीच ली। जैसे ही मै ऊपर पहुँचा तो वह रस-तुवी माँगने लगा। मै पहले ही सतर्क हो चुका था, अत बोला—

—पहले मुझे वाहर निकालो तव रस-तुवी दूगा।

वह मुझसे तुवी माँगता और मैं स्वय को वाहर निकालने की वात कहता। इसी पर वात वढ गई। मैंने रस कुए मे ही फेक दिया। क्रोधित होकर त्रिदण्डी ने मुझे माँची सहित ही कुए में धकेल दिया। भाग्य से मै रस मे न गिर कर कुए की पहली वेदी[1] पर ही गिरा। त्रिदण्डी क्रोध मे पैर पटकता हुआ चला गया।

वह अकारण मित्र मुझसे वोला—

—भाई! दुख मत करो। यहाँ एक 'घो' रस पीने आती है। उसकी पूँछ पकड कर निकल जाना। जव तक वह नही आती तव तक प्रतीक्षा करो।

मैं उस वेदी पर वैठा नवकार मत्र जपने लगा। वह पुरुप अपनी आयु पूरी करके मर गया और मैं भी अपने दिन गिनने लगा। इतने मे एक भयकर शव्द मेरे कानो मे पडा। मै समझ गया कि 'घो' आ

---

१ वेदी या वेदिका—कुए की दीवारो मे एक-दो पुरुपो के वैठने योग्य स्थान को कहते है। ये स्थान कुए की सफाई आदि करने के समय पुरुपो के वैठने के काम आता है। इससे सफाई आदि मे सुविधा हो जाती है।

गई है। जैसे ही वह पानी पीकर चली मैंने उसकी पूछ पकड ली और बाहर निकल आया।

कुएँ मे निकल कर वन मे आया तो वहा यमराज के समान एक भैसा मुझ पर टूट पडा। बडी कठिनाई मे एक शिला पर चढा तो वह अपने सीगो से शिला को ही उखाडने लगा। तभी यमपाश के समान एक काला भुजग सर्प आ निकला। उसने भैसे को पकडा तो दोनो लडने लगे। मैंने अवसर का लाभ उठाया और वहाँ से निकल भागा। वन के प्रान्त भाग मे पहुँचा तो मेरे मामा के मित्र रुद्रदत्त ने मुझे सँभाला।

मै द्रव्यार्थी तो था ही। कुछ दिन बाद रुद्रदत्त के साथ सुवर्णभूमि की ओर चल दिया। मार्ग मे ईपुवेगवती नदी को पार करके गिरि-कूट पहुँच गये और वहाँ से एक वन मे। टकण देश मे आकर हमने दो मेढे खरीदे। उन पर बैठकर अजमार्ग[1] तय किया। जब हम लोग एक खुले स्थान पर पहुँच गये तो रुद्रदत्त ने कहा—

—अब इन बकरो (मेढो) को मार डालो।

—क्यो ?—मैंने विस्मित होकर पूछा।

यहाँ से आगे पैदल चल कर बाहर निकलने का रास्ता नही है।

—तब हम लोग बाहर कैसे निकलेगे ?

रुद्रदत्त ने बताया—

—इन मेढो को मारकर इनका माँस तो बाहर निकाल कर फेक देगे और इनकी खाल ओढकर बैठ जायेगे। मास लोलुपी भारड पक्षी

---

१ अजमार्ग से आशय ऐसे सकीर्ण और नीचे मार्ग से है जहाँ केवल बकरा (मेढा) ही चल सकता है, हाथी, घोडा, मनुष्य आदि नही। यह मार्ग इतना सकरा और नीचा होता है कि मनुष्य सीधा खडा नही हो सकता।

हमे मास का टुकडा समझकर पजो मे पकडकर ले जायेगे और इस तरह हम बाहर निकल जायेगे।

मातुल (मामा) के मित्र रुद्रदत्त की योजना सुनकर मै चकित रह गया। मेरी आँखे उन निरीह पशुओ की हत्या की बात सुनकर डबडबा आई। रुद्रदत्त ने तब तक अपने मेढे के पेट मे चाकू मार कर उसका प्राणात कर दिया। उसके आर्तनाद से मेरे आँसू बह निकले। मेरा वाला मेढा भी मुझे कातर दृष्टि से देख रहा था। मै मन ही मन सोच रहा था कि कितना स्वार्थी है मनुष्य जो धन प्राप्ति के लिए दूसरो का अकारण ही घातक बन जाता है।

रुद्रदत्त ने मुझसे कहा—

—अब देर मत करो, ये चाकू लो ओर मेढ का काम तमाम कर दो।

—मैं इसे नही मार सकूँगा।

—तो हम लोग निकलेगे कैसे ?

—न निकले, यही मर जाये, किन्तु यह हिसा मै नही कर सकता।

—तुम मत करो मैं ही इसे मारे देता हूँ।

यह कहकर रुद्रदत्त ने मेढे को पकडकर अपनी ओर खीचा, मेढे ने मेरी ओर देखकर पुकार की। मानो मुझ से बचा लेने की प्रार्थना कर रहा हो। मैने दुखी स्वर मे कहा—

— मित्र ! मै तुम्हारे प्राण तो नही बचा सकता किन्तु परलोक के पाथेय रूप सबल तुम्हे दे सकता हूँ।

मै उसे नवकार मन्त्र सुनाता रहा और रुद्रदत्त ने उसे मार डाला।

एक मेढे की खाल रुद्रदत्त ने ओढ ली और दूसरे की मुझे उढा दी। मास लोलुपी भारड पक्षी आये और हम दोनो को उठा ले गये। मैं उनके पजे से छूटकर एक तालाब मे जा गिरा। वहाँ से निकला तो सामने एक ऊँचा पर्वत खडा था। और कोई मार्ग न देखकर मै उस

पर चढा तो पर्वत शिखर पर पहुँचते ही मेरी आँखे शीतल हो गई, हृदय प्रसन्न हो गया और मैं अपने सब कष्ट भूल गया। सामने एक मुनि कायोत्सर्ग मे लीन खडे थे। मैंने उनकी वदना की। वे 'धर्म लाभ' रूप आशीष देकर बोले—

—अरे चारुदत्त ! तुम इस दुर्गम भूमि मे कहाँ से आ गये। देव, विद्याधर और पक्षियो के अलावा कोई दूसरा तो यहाँ आ ही नही सकता ?

मैंने विनम्रतापूर्वक अपनी सपूर्ण गाथा कह सुनाई। अपना नाम सुनकर मै समझा कि मुनिराज अवधिज्ञानी है। मेरी इस भावना को उन्होने मेरी मुख-मुद्रा से जान लिया और भ्रम निवारणार्थ बोले—

—भद्र ! मै वही अमितगति विद्याधर हूँ जिसे तुमने एक बार छुडाया था। इस कारण मै तुम्हे पहले से ही जानता हूँ।

—आपने सयम कब ले लिया ?—मैने जिज्ञासा प्रगट की तो उन्होने बताया—

—तुम्हारे पास से चलकर मै अपनी स्त्री सुकुमालिका की खोज मे लगा। वह मुझे मिली अष्टापद पर्वत के समीप। धूमशिख उसे छोडकर भाग गया था। मै स्त्री के साथ अपने नगर लौट गया। कुछ दिन बाद पिता ने मुझे राज्य देकर हिरण्यकुम्भ और सुवर्णकुम्भ नाम के दो चारण मुनियो के पास व्रत ग्रहण कर लिए। मेरी मनोरमा नाम की पत्नी से सिहयश और वराहग्रीव दो पुत्र हुए तथा विजयसेना नाम की दूसरी स्त्री से गधर्वसेना नाम की एक पुत्री। गधर्वसेना गायन विद्या मे अति चतुर है। अपने पुत्रो को राज्य और विद्या देकर मैं अपने पिता के गुरुओ के पास प्रव्रजित हो गया।

—यह कौन सा स्थान है ?—मैंने पूछा।

—लवण समुद्र के बीच कुभकटक द्वीप और इसमे यह है कर्कोटक नाम का पर्वत।—उत्तर मिला।

उसी समय दो विद्याधर वहाँ आये और मुनि को प्रणाम किया। उनका रूप मुनि के समान ही था। मैंने मन मे जान लिया कि ये दोनो ही मुनिश्री के पुत्र हैं। तभी उनसे मुनिश्री ने कहा—

—इस चारुदत्त को भी प्रणाम करो।

वे दोनो 'हे पिता ! हे पिता !' कहकर मेरे पैरो मे गिर पडे। मैंने उन्हे स्नेहपूर्वक उठाया और अपनी ही बगल मे बिठा लिया।

इसी दौरान आकाश से एक विमान उतरा। उसमे से एक देव ने निकल पहले मुझे प्रणाम किया और फिर प्रदक्षिणापूर्वक मुनि की वन्दना की। इस विपरीत बात पर दोनो विद्याधर विस्मित रह गये। उन्होने पूछा—

—हे देव ! तुमने वन्दना मे उलटा क्रम क्यो किया ? सकल सयमी की वन्दना पहले की जाती है, न कि बाद मे।

—विद्याधर ! चारुदत्त मेरा धर्मगुरु है। इसी कारण मैंने इसे पहले नमन किया है। देव ने उत्तर दिया।

जिज्ञासा जाग उठी दोनो विद्याधरो की। देव अपना पूर्व वृत्तान्त सुनाने लगा

काशीपुर मे दो सन्यासी रहते थे। उनकी बहने थी सुभद्रा और सुलसा। दोनो ही वेद-वेदागो की प्रकाड पडिता थी। अनेक वादी उनसे पराजित हो चुके थे। एक बार वाद-विवाद हेतु आया याज्ञ-वल्क्य नाम का सन्यासी। शर्त तय हुई कि हारने वाला विजयी का दासत्व स्वीकार करेगा। वाद हुआ। सुलसा पराजित होकर याज्ञवल्क्य दासी बन गई। तरुणी दासी सुलसा का सान्निध्य पाकर सन्यासी याज्ञवल्क्य की कामाग्नि प्रज्वलित हो गई। स्वामी का दासी पर पूर्ण अधिकार होता ही है। सन्यासी निराबाध काम सेवन करने लगा—परिणाम प्रगट हुआ एक पुत्र के रूप मे। पुत्र ने उनको दुहरी विपत्ति मे डाल दिया—एक तो निराबाध भोग मे बाधा और दूसरी लोकापवाद। ऐसे कटक को कौन गले बाँधे ? सन्यासी जी ने पुत्र को

एक पीपल के वृक्ष के नीचे छोडा और चल दिये सुलसा को साथ लेकर दूसरे स्थान को।

सुभद्रा सन्यासी याज्ञवल्क्य की इस करतूत मे अनभिज्ञ नही थी। उसने पुत्र को पीपल के वृक्ष के नीचे से उठाया और उसे पालने लगी। नाम रखा पिप्पलाद और उसे वेद-वेदाग का प्रकाड विद्वान वना दिया। उसकी ख्याति सुनकर वाद हेतु सुलसा और याज्ञवल्क्य भी आये। पिप्पलाद ने उन्हे पराजित कर दिया।

जव उसे मालूम हुआ कि 'यही दोनो मेरे माता-पिता है तो उसे वहुत क्रोध आया। क्रोध की प्रचड अग्नि मे झुलसते हुए उसने मातृमेघ और पितृमेघ यज्ञ का प्रचार किया और सुलसा तथा याज्ञ-वल्क्य को यज्ञाग्नि मे स्वाहा कर दिया।

देव ने विद्याधरो को सवोधित करके कहा—उस समय मैं पिप्पलाद का शिष्य था और मेरा नाथ था वार्ग्वलि। उन यज्ञो की अनुमोदना और सहायक होने के कारण मैंने नरक के घोर कष्ट झेले। वहाँ से निकला तो टकण देश मे मेढा हुआ। जव रुद्रदत्त ने मुझे मारा तव इसी चारुदत्त ने मुझे नवकार मन्त्र सुनाया जिसके प्रभाव से मुझे देव पर्याय की प्राप्ति हुई। परम कल्याणकारी अहिसा धर्म मे रुचि जगाने वाला यह चारुदत्त मेरा धर्मगुरु है। इसी कारण मैंने प्रथम इसे नमस्कार किया।

यह सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर विद्याधर वोले—

—चारुदत्त तो हमारा भी उपकारी है। हमारे पिता को भी एक वार इसने वन्धनमुक्त किया था।

सेठ चारुदत्त कुमार वसुदेव को सवोधित करके कहने लगा—इसके वाद देव ने मुझसे पूछा—

—भद्र! मैं आपकी क्या सेवा करूँ?

तव मैंने उसे यह कह कर विदा कर दिया—'योग्य समय पर आना।' देव अन्तर्धान हो गया और विद्याधर मुझे अपने नगर शिव-मदिर मे ले गये। वहाँ उन्होने मुझे वडे सत्कारपूर्वक वहुत दिन तक

रखा । जव मैंने अपने नगर आने की इच्छा प्रकट की तो उन दोनो विद्यावरो ने मुझे अपनी वहन गधर्वसेना देते हुए वताया कि दीक्षा लेते समय हमारे पिता ने हमसे कहा था कि 'एक ज्ञानी ने गधर्वसेना का विवाह भूमिगोचरी यदुवशी क्षत्रिय के साथ होना वताया है । इसलिए इसे चारुदत्त को दे देना ।' अव आप इसे अपने साथ ले जाइये ।

मैंने भी सोचा कि ले चलूँ, मेरा क्या जाता है । किन्तु पुन-पूछा—

—मैं कैसे जानूँगा कि यही गधर्वसेना का पति है ।

विद्यावरो ने कहा—

—हमारी वहन वीणा-वादन और सगीत विद्या मे अति निपुण है । इस विद्या मे इसे पराजित करने वाला वसुदेव कुमार ही है और कोई नही ।

मैंने गधर्वसेना को साथ ले जाने की स्वीकृत दे दी । तभी वह पहले वाला देव[1] और विद्यावर मुझे विमान मे विठाकर यहाँ लाये और मोती, माणिक आदि रत्न तथा करोडो स्वर्ण मुद्राएँ देकर अपने-अपने स्थानो को चले गये ।

प्रात काल मैं अपने स्वार्थी मामा, पत्नी मित्रवती और अखड-वेणी वधवाली[2] वेश्या वसतसेना से मिला और सुख से रहने लगा ।

हे वसुदेव कुमार ! यही है गंधर्वसेना का वश परिचय और न वताने पर भी तुम्हारा नाम जानने का कारण । अव तुम वणिक् पुत्री समझ कर इसका निरादर मत करना ।

यह सपूर्ण कथा कहकर सेठ चारुदत्त चुप हो गया ।

गधर्वसेना का वश परिचय पाकर वसुदेव हर्षित हुए । उनकी प्रीति और भी वढ गई । —त्रिषष्टि० ८/२

—वसुदेव हिंडी, गन्दर्भदत्ता लभक

---

१ उस मेटे का जीव जिसे चारुदत्त ने मरते समय नवकार मत्र सुनाया था ।

२. चारुदत्त के वियोग मे वसन्तसेना ने अपनी वेणी नही वाँधी थी । इसी-लिए उसे अखण्ड वेणीवध वाली कहा गया है ।

वसुदेव के अन्य विवाह ७.

—'रथ को वेग से चलाओ।' लाल नेत्र करके गधर्वसेना ने सारथी को आज्ञा दी।

इस आज्ञा का कारण था एक मातगी की ओर कुमार वसुदेव का आकृष्ट होना। मातगी भी उनकी ओर अनुरागपूर्वक देख रही थी। दोनो की ही यह कामपीडित दशा गधर्वसेना न देख सकी। स्त्री अपनी सपत्नी को वरदाश्त कर भी नही सकती। कैसे छिन जाने दे अपना एकाधिकार ?

गधर्वसेना अपने पति वसुदेव कुमार के साथ वसत उत्सव मनाने उद्यान जा रही थी। वीच मे ही यह वाधा आ टपकी तो उसे रोष आगया।

उद्यान मे गधर्वसेना के साथ के वसन्त क्रीडा करके वसुदेव वापिस चपा नगरी लौटे। उसी समय एक वृद्धा मातगी ने आशीष देकर उनसे कहा—

—मेरी वात ध्यान पूर्वक सुनो।

—कहिए, क्या कहना चाहती हैं, आप ? वसुदेव ने —उत्तर दिया।

मातगी कहने लगी—

पूर्व में आदिजिन भगवान ऋषभदेव ने दीक्षा ग्रहण करते समय जब भरतक्षेत्र के राज्य का विभाजन किया था तव दैवयोग से नमि

और विनमि[1] वहाँ नही थे। दीक्षित ध्यान मग्न भगवान के पास जब वे राज्य की याचना करने लगे तो उस समय प्रभु दर्शनो के निमित्त आये धरणेन्द्र ने उन्हे वैताढ्य गिरि की उत्तर और दक्षिण दोनो श्रेणियो का अलग-अलग राज्य तथा गौरी प्रज्ञप्ति अदि अडतालीस हजार विद्याएँ दी। नमि का पुत्र मातग हुआ। उसके वश में

---

१ नमि और विनमि विद्याधर वश के आदि पुरुष थे। इनकी कथा सक्षेप मे इस प्रकार है —

प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के दीक्षा ग्रहण करते समय प्रभु के साथ चार हजार अन्य राजा भी दीक्षित हुए थे। उनमे कच्छ और महाकच्छ भी थे। जब ये सभी क्षुधा-तृषा परीसह को न सह सके तो तापस होगए। इन्ही कच्छ महाकच्छ के पुत्र थे नमि और विनमि।

प्रभु के दीक्षा अवसर पर ये दोनो भाई किसी कार्यवश अन्यत्र गये हुए थे। जब वापिस आए तो उन्होने अपने पिता को तापस वेश मे देखा।

वे दोनो राज्य न पाने से किंचित् दुखी हुए। पर सोच-विचार कर भगवान ऋषभदेव के पास जा पहुँचे और राज्य की याचना करने लगे। प्रभु तो ससार से निर्लिप्त थे अत मौन हो गये। उनकी याचना का कोई उत्तर नही दिया। नमि-विनमि प्रभु के साथ ही लगे रहे। वे जहाँ-जहाँ गमन करते थे, दोनो भी उनके पीछे-पीछे चलते किन्तु अपनी राज्य-याचना की रट कभी न भूलते।

एक बार धरणेन्द्र प्रभु के दर्शनो के लिए आया तो इन्हे राज्य माँगते देखा। उसने बहुत समझाया कि भगवान के पास राज्य कहाँ रखा है, वे तो ससार से निस्पृह है किन्तु ये दोनो नही माने। प्रभु के प्रति अविचल भक्ति देखकर धरणेन्द्र प्रसन्न हो गया और उसने दोनो भाइयो को वैताढयगिरि की दोनो श्रेणियो का राज्य दे दिया साथ ही ४८००० विद्याएँ भी। [विस्तार के लिए देखिए त्रिषष्टि १/२ गुजराती अनुवाद पृष्ठ ६४–६७]

इस समय प्रहसित नाम का विद्याधर राजा है। उसकी हिरण्यवती नाम की स्त्री मै हूँ। मेरे पुत्र का नाम सिहदष्ट्र है ओर उसकी पुत्री है नीलयशा। वही नीलयगा तुमने उद्यान मे जाते समय देखी थी।

मातगी ने वसुदेव को सवोधित किया—

—हे कुमार! नीलयशा तुम्हे देखकर कामपीडित हो गई है। तुम उसका पाणिग्रहण करो।

पूरी घटना सुनने के वाद वसुदेव कुमार वोले—

—विवाह का निर्णय अचानक कैसे हो सकता है? शुभ लग्न आदि भी तो आवश्यक है।

—इस समय मुहूर्त शुभ ही है।

—कुछ समय के लिए ठहर जाओ।

—वह कन्या विलव नही सह सकती। उसकी इच्छा शीघ्र ही पूर्ण करिए, आपकी अति कृपा होगी।

वसुदेव इस आग्रह से कुछ चिढ से गए। उन्होने रुखाई से उत्तर दिया—

—मै आपको विचार कर उत्तर दूँगा। फिर कभी आइये मेरे पास।

मातगी वसुदेव की रुखाई न सह सकी। उसके आग्रह का यह रूखा उत्तर उसे खल गया। कडे स्वर मे उसने प्रत्युत्तर दिया—

—मैं तुम्हारे पास आऊँगी या तुम मेरे पास, यह तो समय ही वताएगा।

यह कहकर मातगी हिरण्यवती वहाँ से चली गई।

× × ×

श्मशान मे घोर रूप वाली मातगी हिरण्यवती के सम्मुख स्वय को पाकर वसुदेव कुमार अचकचा गये। तभी मातगी का स्वर सुनाई पडा—हे चन्द्रवदन! वहुत अच्छा किया, जो तुम यहाँ आये।

सोचने लगे वसुदेव—मैं यहाँ किस प्रकार आया ? मै तो गन्धर्व-सेना के पास सो रहा था। इधर-उधर दृष्टि दौडाई तो पार्श्व मे ही एक प्रेत खडा दिखाई पडा। विजली सी कौंधी मस्तिष्क मे और उन्हे सव कुछ याद आ गया। वह जल क्रीडा से थक कर गधर्वसेना की वगल मे सो रहे थे। तभी उन्हे ऐसा अनुभव हुआ कि कोई उनसे कह रहा है 'उठ, उठ' और फिर किसी ने उन्हे उठाया और ले चला। गहरी निद्रा मे निमग्न होने के कारण वे प्रतिरोध न कर सके। इस प्रेत के माध्यम से ही हिरण्यवती विद्याधरी ने मुझे बुलवा मँगाया है। देखते-देखते प्रेत अन्तर्धान हो गया। वसुदेवकुमार को विचारमग्न देखकर हिरण्यवती पुन वोली—

—कुमार ! आप किस सोच मे पड गये ?

—सोच रहा हूँ कि मुझे क्यो वुलाया गया है ?

—मुझे आप पहिचान तो गये ही होगे ?

—हाँ !

—तो मेरी इच्छा भी जान गये होगे ? नीलयशा से लग्न करिए।

कुमार वसुदेव कुछ उत्तर देते उससे पहले ही नीलयशा अपनी सखियो सहित वहाँ आ पहुँची। उसकी पितामही (दादी) हिरण्यवती ने पौत्री नीलयशा से कहा—

—अपने पति को ले जाओ।

पितामही की आज्ञा से नीलयशा कुमार वसुदेव को लेकर आकाश मार्ग से चली। तत्काल हिरण्यवती भी उनके साथ चल दी।

दूसरे दिन प्रात काल हिरण्यवती ने वसुदेव कुमार से कहा—

—कुमार ! मेघप्रभ वन से ढका हुआ यह ह्रीमान पर्वत है। इस गिरि पर ज्वलनवेग विद्याधर का पुत्र अगारक विद्याभ्रष्ट हुआ रह रहा है। पुन विद्याधरपति होने के लिए वह विद्या साधन कर रहा है। वैसे विद्या सिद्धि मे उसे वहुत समय लगेगा किन्तु यदि आपके

दर्शन हो जायेगे तो उसे जल्दी ही विद्या सिद्ध हो जायँगी। इसलिए दर्शन देकर उसका उपकार करिए।

—अगारक को देखने की अभी आवश्यकता नही है।—वसुदेव ने उत्तर दिया।

हिरण्यवती उन्हे लेकर वैताढ्य गिरि पर शिवमदिर नगर मे गई। वहाँ से सिहदष्ट्र राजा ने उन्हे अपने महल मे ले जाकर नीलयशा का लग्न उनके साथ कर दिया।

कुमार वसुदेव के विवाह को कुछ ही दिन व्यतीत हुए कि एक दिन उन्हे वाहर कोलाहल सुनाई पडा। कुमार ने द्वारपाल से इसका कारण पूछा तो वह वताने लगा—

यहाँ शकटमुख नाम का एक नगर है। उसमे राज्य करता था राजा नीलवान्। उसकी रानी नीलवती के उदर से एक पुत्री हुई नीलाजना और पुत्र नील। दोनो वहन-भाइयो मे यह तय हो गया कि अपने पुत्र-पुत्रियो का विवाह आपस मे करेगे। नील का पुत्र हुआ नील कण्ठ और नीलाजना की पुत्री नीलयशा। पहले वायदे के अनुसार नील ने अपने पुत्र नीलकठ के लिए नीलयशा की याचना की। नीलयशा के पिता सिहदष्ट्र ने बृहस्पति नाम के मुनि से पूछा तो उन्होने वताया —'नीलयशा का पति वसुदेव कुमार होगा।' इसीलिए नीलयशा का लग्न आपके साथ हुआ। विवाह का समाचार सुनकर नील युद्ध करने आया किन्तु सिहदष्ट्र ने उसे पराजित कर दिया। यही कारण है इस कोलाहल का।

वसुदेव कुमार द्वारपाल के इस कथन से सतुष्ट होगए। एक वार उन्हे शरद ऋतु मे विद्यासिद्धि और ओपधियो के लिए ह्रीमान पर्वत को विद्याधरो के समूह जाते दिखाई दिये। वसुदेव को भी विद्या सीखने की इच्छा जागृत हो आई। उन्होने नीलयशा से कहा—'मुझे विद्या सिखाओ' नीलयशा राजी हो गई।

नीलयशा और वसुदेव गये तो ह्रीमान पर्वत पर विद्यासिद्धि के लिए किन्तु करने लगे वहाँ रमण—इन्द्रिय सुख-भोग। भोग से तनिक निवृत हुए तो एक सुन्दर मयूर दिखाई पडा। उसे पकडने नील-यशा दौडी तो मयूर उसे अपनी पीठ पर विठा कर ले उडा। पीछे-पीछे वसुदेव भी दौडे। वे भूमि पर दौड रहे थे और मयूर आकाश मे उड रहा था। मयूर आकाश मे ही अदृश्य हो गया और वसुदेव एक नेहडे मे जा पहुँचे। गोपिकाओ ने सत्कारपूर्वक उन्हे रात्रि व्यतीत करने की आज्ञा दे दी।

प्रात हुआ तो वसुदेव दक्षिण दिशा की ओर चल दिये। गिरि तट पर एक गाँव आया। वहाँ उच्च स्वर मे वेद ध्वनि सुन कर वसु-देव ने एक ब्राह्मण से इसका कारण पूछा। ब्राह्मण ने वताया—

रावण के समय मे दिवाकर नाम के एक विद्याधर ने अपनी पुत्री का विवाह नारद के साथ कर दिया था। उस वश मे इस समय सुरदेव नाम का ब्राह्मण हुआ। यही इस ग्राम का प्रमुख ब्राह्मण है। उसकी क्षत्रिया नाम की स्त्री से सोमश्री नाम की एक पुत्री हुई। सोमश्री वेद की प्रकाड विद्वान है। उसके विवाह के सबध मे कराल नाम के ज्ञानी से पूछा तो उसने कहा—'जो इसे वेद मे जीत लेगा, वही इसका पति होगा।' उसी के परिणय के लिए अनेक युवक वेदाभ्यास कर रहे है।

वसुदेव ने पूछा—

—यहाँ वेदाचार्य कौन है ?

—ब्रह्मदत्त उपाध्याय!—ब्राह्मण का उत्तर था।

कुमार वसुदेव ने ब्राह्मण का वेश बनाया और ब्रह्मदत्त के पास जा पहुँचे। कहने लगे—

—मैं गौतम गोत्री स्कन्दिल ब्राह्मण हूँ। कृपया मुझे वेदाभ्यास कराइये।

ब्रह्मदत्त ने उन्हे शिष्य बना लिया। थोडे ही दिनो मे वसुदेव कुमार ने वेद के विद्वान बनकर सोमश्री को वाद मे पराजित किया और उसके साथ विवाह करके सुखपूर्वक रहने लगे।

—त्रिषष्टि०।८२

—वसुदेव हिंडी, नीलयशा एव सोमश्री लम्भक

विशेष—वसुदेव हिंडी मे मातगी के स्थान पर चाडाली शब्द आया है। इसी (नीलयशा) लम्भक मे भगवान ऋषभदेव का (पूर्वजन्मो सहित) विस्तृत वर्णन है।

(१) सोमश्री के पिता का नाम सुरदेव के स्थान पर देवसेन है।

(२) सोमश्री लम्भक मे नारद-पर्वत विवाद का विस्तृत वर्णन है। वसुदेव ने इसका वर्णन करके सोमश्री के पिता को पिता को तत्त्व ज्ञान दिया।

८ अनेक विवाह

उद्यान मे इन्द्रशर्मा इन्द्रजालिक के आश्चर्यजनक करतबो को देखकर वसुदेव कुमार ठगे से रह गये। इस विशिष्ट विद्या को सीखने की इच्छा जागृत हुई। तमाशा खत्म होने पर बोले—

—भद्र ! यह विद्या मुझे भी सिखा दो।

—सीख तो सकते है आप, किन्तु साधना थोडी कठिन है। —इन्द्रजालिक ने उत्तर दिया।

—कुछ भी हो यदि आप सिखाएँ तो मै अवश्य सीख लूँगा।

—यदि आप दृढ प्रतिज्ञ हैं तो इस मानसमोहिनी विद्या को ग्रहण कीजिए।

—इसकी साधना-विधि ?—वसुदेव ने पूछा।

इन्द्रशर्मा बताने लगा—

—इस विद्या का साधन सायकाल के समय प्रारम्भ किया जाता है और प्रात सूर्योदय तक सिद्ध हो जाती है। समय तो केवल एक रात का ही लगता है परन्तु उपद्रव बहुत होता है। इस कारण किसी सहायक का होना आवश्यक है।

—किन्तु मेरा तो कोई सहायक नही है। परदेशी का मित्र भी कौन हो सकता है ?

—मै बनूँगा आपका सहायक। आप चिन्ता न करे। विद्या सिद्ध करना प्रारम्भ कर दे। मै और मेरी स्त्री वनमालिका आपकी सहायता करेंगे।—इन्द्रशर्मा ने आश्वासन दिया।

आश्वस्त होकर वसुदेव विद्या-जाप करने लगे और सहायक बने इन्द्रशर्मा और उसकी पत्नी वनमालिका।

रात्रि के अन्धकार मे अपने अन्य अनुचरो की सहायता से इन्द्र-शर्मा ने जप करते हुए वसुदेव को शिविका मे विठाया और ले चला। वसुदेव समझे कि यह देवकृत उपद्रव है इसलिए वे जाप मे ही लीन रहे।

रात्रि वीती। सूर्योदय हुआ। वसुदेव शिविका से कूद पडे। वे समझ गये कि यह उपसर्ग नही, इन्द्रशर्मा की चाल है। उन्हे कूदते देखकर इन्द्रशर्मा आदि भाग खडे हुए।

वसुदेव सध्या समय तृण शोपक नामक स्थान पर पहुँचे और एक खाली मकान मे सो गये।

अर्ध रात्रि के भयानक अन्धकार मे एक भयानक राक्षस आया और उन्हे उठाकर पटक दिया। अकस्मात प्रहार से वसुदेव की निद्रा टूट गई। जव तक वे सँभल पाते एक लात पडी, लुढककर वसुदेव दूर जा गिरे।

विद्युत की सी फुर्ती मे वे सीधे खड़े हो गये। उछलकर प्रतिद्वन्द्वी पर मुष्टि प्रहार किया। वज्र के समान भयकर आघात से वह प्रति-द्वन्द्वी दूर जा गिरा। अव सँभलने का अवसर न दिया वसुदेव ने। पैर पकड कर उठाया और जमीन पर दे मारा। एक वार नही, दो वार नही तव तक मारते रहे जव तक कि उसके प्राण ही न निकल गये। भयंकर चीखो से रात्रि का निस्तव्ध वातावरण भयकर हो गया।

प्रात रवि किरणो के साथ ही नगर-निवासी निकले तो उस नर-पिशाच को मरा देखकर वडे प्रसन्न हुए। वसुदेव का सम्मान किया। वड़े आदरपूर्वक उन्हे अपने पास रखा। कुमार ने पूछा—

—यह नर-पिशाच कौन है ?

उनमे से एक पुरुप वोला—

कलिग देश के काचनपुर नगर मे जितशत्रु नाम का एक पराक्रमी राजा था। उसके पुत्र का नाम था सोदास। सोदास मास लोलुपी था। एक दिन भी उसे विना मास के चैन नही पडता। उसका रसोइया नित्य प्रति उसके लिए एक मयूर का वध करता। एक दिन रसोई

मे से मयूर को बिल्ली ले गई तो रसोइये ने एक मृत शिशु का मांस पकाकर खिला दिया। उस दिन से सोदास को मानव-मांस खाने की लत लग गई। उसका यह पाप कब तक छिपता ? एक दिन राजा को खबर लग गई तो उसने उसे अपने राज्य से निकाल बाहर कर दिया।

वह दुष्ट सोदास यहाँ आ बसा और रोज रात को पाँच-छह मनुष्यो को खा जाता था। आपने उसे मार कर हम लोगो को अभय कर दिया।

सब लोगो ने मिलकर वसुदेव को पाँच सौ कन्याएँ दी।

× × ×

तृणशोषक स्थान पर एक रात्रि व्यतीत कर प्रात श्री वसुदेव चल दिये। अचल ग्राम पहुँचे तो वहाँ सार्थवाह ने अपनी पुत्री मित्रश्री के साथ उनका विवाह कर दिया।[1]

आगे चल कर वसुदेव वेदसाम नगर आये। वहाँ उन्हे वनमाला (वनमालिका, इन्द्रजालिक इन्द्रशर्मा की पत्नी) दिखाई पडी। वनमाला भी उन्हे देखकर बोली—'इधर आओ, कुमार ! इधर आओ।'

यह कह कर वसुदेव को वह अपने घर ले आई और अपने पिता से बोली—

—पिताजी ! यह वसुदेव कुमार है।

वसुदेव कुमार इन्द्रशर्मा और उसकी स्त्री के व्यवहार से चकित थे। एक ओर तो इन्द्रशर्मा कपटपूर्वक उनका हरण करना चाहता था और दूसरी ओर उसकी स्त्री वनमाला उन्हे आदरपूर्वक अपने घर लिवा लाई। उससे भी अधिक आश्चर्य हुआ उन्हे वनमाला के पिता द्वारा आदर-सत्कार पाकर। वे इस गोरखधन्धे को समझना चाहते थे। उन्होने वनमाला के पिता से कहा—

---

१ किसी ज्ञानी ने सार्थवाह को यह बताया था कि मित्रश्री का विवाह वसुदेव कुमार के साथ होगा। इसी कारण मित्रश्री का विवाह उनके साथ हुआ। [त्रिषष्टि ८/२ गुजराती अनुवाद पृष्ट २३४]

—मैं आप लोगो के व्यवहार के रहस्य को नही समझ पाया ।

—कुमार ! हमारे व्यवहार मे कोई रहस्य नही है ।

—यह रहस्य नही तो और क्या है ? आपका जामाता मुझे कपट पूर्वक हरण करके न जाने कहाँ ले जाना चाहता था। आपकी पुत्री आग्रहपूर्वक यहाँ ले आई और आप मेरा आदर इतना अधिक कर रहे है कि

—कि क्या ? कुमार ! आगे कहिए।

— कि मुझे इसमे भी कोई षड्यन्त्र नजर आने लगा है।

—षड्यन्त्र कुछ भी नही है।

—तो इस व्यवहार का कारण ?

—राजाज्ञा !

—राजाज्ञा ? चौक कर पूछा कुमार ने—इसका कारण बता सकेंगे, आप ?

—अवश्य। इसीलिए तो पुत्री वनमाला आपको लिवाकर लाई है। यह कह कर, वनमाला का पिता बताने लगा—

इस नगर के राजा का नाम है कपिल और उसकी एक पुत्री है कपिला। कपिला युवती हुई तो इसके वर के सबध मे राजा ने एक ज्ञानी से पूछा। उस ज्ञानी ने बताया—'जो पुरुष तुम्हारे स्फुलिगवदन (घोडे का नाम) अश्व का दमन करेगा वही कपिला का पति होगा।'

राजा ने पुन पूछा—वह पुरुष इस समय कहाँ है ?

ज्ञानी ने बताया—समीप ही गिरिकूट ग्राम मे।

यह जानकर राजा कपिल ने मेरे जामाता इन्द्रजालिक इन्द्रशर्मा को आपको यहाँ लाने के लिए भेजा किन्तु आप बीच मे ही शिविका से कूद कर न जाने कहाँ चले गये ? अब भाग्य से यहाँ आ गये है।

अब तो आप समझ गये होगे हम लोगो के व्यवहार का रहस्य।

वसुदेव कुमार ने स्वीकृति मे गरदन हिला दी। इसके पश्चात उन्होने उस अश्व का दमन किया और कपिला के साथ विवाह।

राजा कपिल और उनके साले अशुमान ने वसुदेव को वही रोक लिया। वसुदेव भी कपिला के साथ सुखपूर्वक रहने लगे। परिणाम सामने आया—एक पुत्र। उस पुत्र का भी नाम रखा गया कपिल।

एक वार वसुदेव हस्तिशाला मे जा निकले। वहाँ एक नए हाथी को देखकर उनका मन उस पर सवारी करने को मचल गया। क्षत्रियो के दो ही प्रमुख शौक होते है—एक नये-नये अश्वो पर सवारी करना और दूसरा हाथियो पर।

उछलकर वसुदेव हाथी पर जा चढे और हाथी उनके वैठते ही आकाश मे उडने लगा। स्तम्भित रह गये वसुदेव! हाथी तो भूमि पर चलने वाला पशु है, आकाश मे कैसे उडने लगा? वसुदेव जव तक सँभले तव तक हाथी उन्हे लेकर नगर से वहुत दूर निकल आया था। क्रोध मे आकर वसुदेव ने उसके गडस्थल पर मुष्टिका प्रहार किया तो कुजर विह्वल होकर एक तालाव के किनारे जा गिरा।

वसुदेव कूद कर दूर खडे हो गये। इसी समय हाथी ने रूप वदला और एक मनुष्य अपनी गरदन सहलाता हुआ सामने खडा था। कुमार ने डपटकर पूछा—

—कौन हो तुम? क्या नाम है तुम्हारा?

—विद्याधर नीलकण्ठ।[1]

जव तक कुमार दूसरा प्रश्न पूछते नीलकण्ठ आकाश मे उड गया।

वसुदेव उसे देखते ही रह गये। अव क्या हो सकता था? वहाँ से घूमते-घामते वे सालगुह नगर आ पहुचे। सालगुह नगर का राजा था भाग्यसेन। भाग्यसेन को वसुदेव ने धनुर्वेद सिखाया।

भाग्यसेन के वडे भाई मेघसेन ने आक्रमण किया तो वसुदेव ने उसे पराजित कर दिया।

---

१ यह विद्याधर नीलकठ नीलयशा के मामा नील का पुत्र था। यही नीलयशा से विवाह करने आया था जिसे नीलयशा के पिता सिहदष्ट्र ने पराजित कर दिया था।

मेघसेन ने अपनी पुत्री अश्वसेना और भाग्यसेन ने अपनी पुत्री पद्मावती देकर उनका सम्मान किया।

वहुत समय तक रहने के वाद वे वहाँ से चले तो भद्दिलपुर आ पहुंचे। भद्दिलपुर का राजा पुढ़ पुत्रहीन मर गया था। इस कारण उसकी पुत्री पुढ़ा पुरुषवेश मे वहाँ का शासन कर रही थी। कुमार को देख कर पुढ़ा आकर्षित हो गई। अपनी ओर अनुरागवती जान कर वसुदेव ने उससे विवाह कर लिया।

पुढ़ा के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इसका नाम भी रखा गया पुढ़। यही पुत्र भद्दिलपुर का राजा वना।

कुमार वसुदेव और रानी पुढ़ा का समय वडे आनन्द और सुख से व्यतीत हो रहा था। किन्तु उस मे वाधक वनकर आया विद्याधर अगारक।

अगारक विद्याधर वसुदेव से शत्रुता रखता था क्योंकि उन्ही के कारण तो उसका राज्य छिन जाने वाला था।[1] उसने एक रात सोते हुए वसुदेव का हरण किया और गगा नदी मे फेक दिया।

—त्रिषष्टि० ८/२

—वसुदेव हिंडी मित्रश्री धनश्री लभक

कपिला लभक

पद्मा लभक

अश्वसेना लभक

पुड्रा लभक

---

१ अगारक की शत्रुता के कारण का विस्तृत वर्णन देखिए इमी पुस्तक के 'अध्याय ५ वसुदेव का वीणावादन' तथा त्रिपष्टि ८/२ गुजराती अनुवादक पृष्ठ २२३ पर।

२ पद्मा के पिता का नाम वसुदेव हिंडी मे अभग्नसेन दिया है।

९ पूर्व-जन्म का स्नेह

रात्रि के अधकार मे वसुदेव गगा नदी के वहाव के साथ वहते रहे। प्रात का सुनहरा प्रकाश फैला तो वे ईलावर्द्धन नगर के समीप थे।

नदी के जल से निकल कर उन्होने पचपरमेष्ठी का ध्यान किया और नगर मे जा पहुँचे। कोई ठिकाना नही था परदेश मे उनका। घूमते-घामते एक सार्थवाह की दुकान के सम्मुख जा खडे हुए। सार्थवाह ने उनसे पूछा—

—क्या इच्छा है, परदेशी ? क्या चाहिए ?

—चाहिये तो कुछ नही। यदि आपकी आज्ञा हो तो मै आपकी दुकान पर वैठ कर कुछ देर विश्राम कर लूँ।

सार्थवाह भला आदमी था। उसने देखा परदेशी थका हुआ है। सूरत शक्ल से कुलीन घराने का मालूम पडता है। उसने वहाँ बैठने की इजाजत दे दी।

वसुदेव सिकुड़-सिमट कर एक ओर बैठ गये।

उनका वठना था कि दूकान पर ग्राहको का ताँता लग गया। एक जाता, दो आ जाते. दो जाते, चार आ जाते। शाम को सूर्य डूवा तो सार्थवाह ने अपना हिसाव मिलाया। देखा एक लाख सोनैय्या का शुद्ध लाभ ! हैरत मे रह गया वह। इतना मुनाफा पहले कभी नही हुआ। आज क्या विशेप वात हो गई ? अचानक ही भाग्य कैसे खुल गया ? स्मृति हो आई—एक परदेशी आया था। देखा तो वसुदेव वहाँ चुप-चाप वैठे थे।

विद्यु त सी कौंधी सार्थवाह के मस्तिष्क मे—इसी महापुरुष के पुण्य का प्रभाव है। उसका विश्वास जम गया।

कुमार वसुदेव ने देखा कि सार्थवाह हिसाब मिला चुका है। अब वह दूकान बन्द करके घर जाने वाला है तो बोले—

—सेठजी ! आपकी वडी कृपा हुई। अब मैं चलता हूँ।

ध्यान भग सा हुआ सार्थवाह का तुरन्त पूछ बैठा—

—कहाँ जाओगे, इस समय ?

—कही भी पडकर सो रहूँगा।—वसुदेव ने तुरन्त उत्तर दिया।

—नही, नही, कही जाने की आवश्यकता नही। आज से तुम मेरे साथ ही रहोगे।

वसुदेव को क्या एतराज था। उन्हे तो परदेश मे किसी आश्रय की आवश्यकता थी ही। सार्थवाह ने भी अपना सबसे सुन्दर रथ मँगाया और उसमे बिठाकर अपने घर ले गया। कुछ दिन बाद उसने अपनी पुत्री रत्नवती का विवाह भी उनके साथ कर दिया। जिस पुरुष से लाभ हो, उसका सम्मान तो किया ही जाता है।

एक बार इन्द्र महोत्सव के समय वसुदेव अपने ससुर (सार्थवाह) के साथ एक रथ मे बैठकर महापुर नगर गये। नगर के बाहर ही अनेक प्रासाद बने हुए थे। वसुदेव ने पूछा—

—क्या यह कोई दूसरा नगर है ?

सार्थवाह से उत्तर दिया—

—नही, यह दूसरा नगर तो नही है। ये प्रासाद तो निमन्त्रित राजाओ के लिए बनाए गये थे।

—निमत्रण किस लिए ?

—राजकन्या के स्वयवर हेतु।—सार्थवाह ने आगे बताया—यहाँ का राजा है सोमदत्त और उसकी एक युवती पुत्री है सोमश्री। उसी के स्वयवर के लिए ये अनेक राजा निमन्त्रित किये गये थे। किन्तु उनके अचातुर्य के कारण उन्हे विदा कर दिया और अब ये महल

खाली पडे हैं। केवल राजा का अत पुर ही इन्द्रोत्सव मनाने के लिए यहाँ ठहरा हुआ है। आज वह भी चला जायगा।

यह बाते करते-करते वसुदेव कुमार इन्द्रस्तम्भ के पास जा पहुँचे। वसुदेव ने इन्द्रस्तम्भ को नमन किया। राजा का अत पुर भी उसी समय स्तभ को नमन करके राजमहल की ओर चल दिया।

राजकुमारी का रथ राजमार्ग पर महल की ओर मथर गति से चला जा रहा था। अचानक ही हाथी की मदभरी चिघाड सुनकर घोडे विदक कर उछने और सरपट दौडने लगे। रथ को झटका लगा तो राजकुमारी गेद के समान उछली और राजमार्ग पर लुढक गई। कर्णभेदी चिघाड़े और अचानक गिर जाने से सोमश्री अचेत हो गई।

राजा का हाथी मतवाला होकर अपने बाँधने की जजीर को कीला सहित उखाड कर चिघाडता हुआ भागा चला आ रहा था। भय के कारण राजमार्ग सुनसान हो गया। सभी लोग अपने-अपने घरो मे जा छिपे थे। प्राण किसे प्यारे नही होते ?

वसुदेव ने देखा राजकुमारी अरक्षित पडी है। गजराज समीप आता जा रहा है। जीवन और मृत्यु मे कुछ कदम का ही फासला है। उनका क्षात्र तेज जाग उठा। तुरन्त अपने रथ से कूदे और हाथी की ओर दौड पडे।

समीप पहुँच कर हाथी को ललकारा। मत्त गजराज ने सूँड उठा कर जोर की चिघाड मारी और चढ दौडा वसुदेव पर। अव उसका लक्ष्य राजकुमारी नही, वसुदेव था।

कुमार वसुदेव अपने कौशल से हाथी को वश मे करने लगे।

गजराज और वसुदेव मे इधर पैतरेवाजी चल रही थी और उधर राजपुत्री अचेत पडी थी। वड़े कौशल से वसुदेव ने हाथी को वश मे किया और राज-पुत्री को उठाकर समीप के एक घर मे ले गये। वहाँ अपने उत्तरीय से व्यजन करके उसे सचेत किया।

राजकुमारी के सचेत होते ही वसुदेव वहाँ से चल दिये और अपने

ससुर कुवेर सार्थवाह के साथ लौट गये। राजकुमारी उन्हे जाते देखती रह गई।

कुबेर सार्थवाह के घर वसुदेव कुमार भोजन आदि मे निवृत हुए उसी समय एक प्रतिहारी वहाँ आई और उनसे कहने लगी—

—कुमार! आपको राजमहल मे बुलाया है, चलिए।

—क्यो? मेरा क्या काम वहाँ?—वसुदेव कुमार ने पूछा।

—आपका ही तो काम है?—प्रतिहारी ने मुस्करा कर कहा।

—स्पष्ट वताओ।—वसुदेव के यह पूछने पर प्रतिहारी कहने लगी—

—राजकुमारी सोमश्री को स्वयवर मे योग्य पति की प्राप्ति हो जायगी यही विचार करके स्वयवर की योजना की गई थी किन्तु उसमे एक विकट वाधा आ पडी। इस कारण स्वयवर हुआ ही नही।

—क्यो क्या वाधा आ पडी?

—राजकुमारी ने मौन साध लिया।

—मौन का कारण?

—सर्वाणयति के केवलज्ञान का महोत्सव मनाने हेतु जाते हुए देवो को देखकर सोमश्री को जातिस्मरण ज्ञान हो गया और उसने वोलना वन्द कर दिया।

—जातिस्मरण ज्ञान और वोलने का क्या सबध?

—है। आप पूरी वात सुनिये—यह कहकर प्रतिहारी वसुदेव कुमार को वताने लगी—

राजकुमारी को मौन देखकर सभी चिंतित हो गये। मैं उसकी दासी भी हूँ और सखी भी। मैने एकान्त मे उससे मौन का कारण पूछा तो वह कहने लगी—'पिछले जन्म मे महाशुक्र देवलोक मे भोग नाम का देव था। उसने मेरे साथ चिरकाल तक प्रणय किया। हम दोनो मे प्रगाढ प्रेम हो गया। एक समय वह मेरे साथ नदीश्वर आदि द्वीपो की तीर्थ यात्रा और भगवान का जन्मोत्सव करके अपने स्वर्ग को जा रहा था। हम दोनो ब्रह्म देवलोक तक पहुंचे कि उसका आयुष्य पूर्ण हो

गया। मैं शोकार्त उसे खोजती-खोजती भरतक्षेत्र के कुरुदेश मे पहुँच गई। वहाँ एक केवलज्ञानी को देखकर मैंने पूछा—

—सर्वज्ञ प्रभु! देवलोक से च्यवकर मेरा पति कहाँ उत्पन्न हुआ है?

- हरिवंश के एक राजा के घर।—प्रभु ने बताया।

—अब मुझे वह पति रूप से प्राप्त होगा या नही?—मैंने पुन प्रश्न किया।

—तुम भी स्वर्ग से च्यव कर राजकुमारी होगी और तब वह तुम्हे हाथी से बचायेगा, वही तुम्हारा पति होगा।—भगवान ने समाधान कर दिया।

इसलिए हे सखी! अब इस स्वयवर से क्या लाभ?

यह कहकर राजकुमारी चुप हो गई।

प्रतिहारी वसुदेव को सबोधित करके कहने लगी—

कुमार! मैंने यह सब बाते राजा को बता दी। इसी कारण स्वयवर मे आये सभी राजाओ को आदर सहित विदा कर दिया गया और स्वयवर नही हुआ। आप ने हाथी से राजकुमारी को बचाया है, इस कारण आप ही उसके पति है। चलिए और उसके साथ विवाह कीजिए।

वसुदेव कुमार ने सोचा 'केवली के वचन अन्यथा नही होते' और वे प्रतिहारी के साथ राजमहल मे जा पहुँचे। सोमश्री के साथ राजा सोमदत्त ने उनका विवाह कर दिया। दोनो पति-पत्नी सुख-भोग करने लगे।

—त्रिषष्टि० ८।२

—वसुदेव हिंडी सोमश्री लभक

१० स्पर्श का प्रभाव

प्रात वसुदेव की नीद खुली तो सोमश्री शैय्या पर नही थी। 'कहाँ चली गई इतने सवेरे ?' सोचा—सम्भवत जल्दी उठ कर चली गई होगी। कुछ समय और वीता किन्तु सोमश्री नही दिखाई दी। अव उन्हे चिन्ता हुई। इधर-उधर वहुत खोजा, परन्तु सव व्यर्थ। कोई पता नही लगा। दिन व्यतीत हुआ, रात आई। वसुदेव की वेचैनी वढती गई। इस द्विविधा और चिन्ता मे तीन दिन गुजर गए। आखिर राजमहल के कक्ष मे कव तक शोकमग्न वैठे रहते ? उद्विग्न से उठ कर उपवन मे आये।

उपवन मे देखा तो सोमश्री एक स्थान पर स्थिर चित्त आसन लगाकर वैठी है। समीप जाकर पूछा—

—प्रिये ! मेरे किस अपराध का दण्ड दिया तुमने ? तीन दिन तक कहाँ खोई रही ?

—नाथ ! आपके लिए ही मैने तीन दिन तक मौन व्रत लिया था। अव इस देवता की पूजा करके मेरा पुन पाणिग्रहण करो, जिससे यह नियम पूरा हो जाय।—सोमश्री ने उत्तर दिया।

वसुदेव अपनी प्रिया सोमश्री के इस कथन से भावविभोर हो उठे। उनके हृदय मे विचार आया 'कितना कष्ट सहा है, इसने मेरे लिए।' उन्होने वही किया जो सोमश्री ने कहा।

मदिरा का पात्र देते हुए सोमश्री ने कहा—'नाथ ! यह देवता का प्रसाद है।' वसुदेव ने वह प्रसाद जी भर कर पिया और सोमश्री ने भी। इसके वाद कार्दपिक देवो के समान दोनो रति सुख मे लीन हो गए।

रतिश्रान्त सोमश्री और वसुदेव शैय्या पर सो गये।

रात्रि के अन्तिम प्रहर मे वसुदेव की नीद खुली। देखा तो सोमश्री के स्थान पर कोई अन्य स्त्री सोई हुई है। जगाकर पूछने लगे—

—सुन्दरी ! तुम कौन हो ?

—आपकी पत्नी !—स्त्री ने उत्तर दिया।

चौक पडे वसुदेव ! एकदम मुख से निकला—

—मेरी पत्नी ? कब हुआ तुम्हारा विवाह मेरे साथ ?

—आज ही तो दिन मे रात को ही भूल गये।—मुस्कराकर कहा स्त्री ने।

—वह तो ' वह तो सोमश्री थी। तुम कहाँ से आ टपकी ? क्या रहस्य है यह ?

रहस्य जानना चाहते है आप, तो सुनिये। वह स्त्री कहने लगी—

दक्षिण श्रेणी मे सुवर्णाभ नगर का राजा है चित्रांग। उसकी रानी अंगारवती के उदर से मानसवेग नाम का पुत्र और वेगवती नाम की पुत्री मैं हुई। राजा चित्रांग ने अपने पुत्र मानसेवग को राज्य भार देकर दीक्षा ग्रहण कर ली।

मानसवेग ने निर्लज्ज होकर तीन दिन पहले रात्रि के समय आपकी पत्नी सोमश्री का हरण कर लिया। उसने अनेक प्रकार से उसकी खुशामद की। मुझसे भी कहलवाया किन्तु सोमश्री ने पतिव्रत धर्म का पालन किया और उसकी याचना ठुकरा दी।

तीन दिन तक उसकी दृढता देखकर मैंने उसे अपनी सखी मान लिया। उसी की प्रेरणा से मै आपके पास आई। किन्तु आपको देखते ही काम-पीडित हो गई।

'कुलीन कन्याएँ विवाह से पहले किसी पुरुष के साथ काम सेवन नही करती।' यह सोचकर मैंने सोमश्री का रूप रख कर आप से विवाह कर लिया। अब आप मेरे धर्मानुमोदित पति है।

यही है मेरा रहस्य।

वसुदेव वेगवती की चतुराई पर चकित रह गये।

अन्य व्यक्ति भी प्रात सोमश्री के वजाय वेगवती को देखकर विस्मय करने लगे। पति आज्ञा से वेगवती ने सोमश्री के हरण की घटना सबको बता दी।

× × ×

मानसवेग सोमश्री का हरण तो कर ले गया किन्तु उसकी कामेच्छा भी पूरी न हुई और बहन वेगवती भी चली गई। वह क्रोध से धधकने लगा। काम विगड जाने पर प्राणी को क्रोध आता ही है। उसने वसुदेव को मारने का निश्चय कर लिया।

एक रात को ले उडा सोते हुए वसुदेव को। वसुदेव को जैसे ही ज्ञात हुआ कि कोई विद्याधर उन्हे लिए जा रहा है, उन्होने एक जोरदार मुष्टि-प्रहार किया। मानसवेग विकल हो गया। घबडा कर उसने वसुदेव को छोड दिया।

मेघबिन्दु के समान वसुदेव जा गिरे विद्याधर चडवेग के कधे पर। चडवेग गगा नदी मे खडा होकर विद्या सिद्ध कर रहा था। वसुदेव का स्पर्श होते ही उसे तुरन्त विद्या सिद्ध हो गई। अजलि बाँधकर बोला—

—महात्मन्! आपने मेरा बडा उपकार किया है। मै आपका कृतज्ञ हूँ।

वसुदेव तो समझ रहे थे कि यह पुरुष क्रोधित होकर दो-चार खरी-खोटी सुनाएगा किन्तु यहाँ तो उल्टा ही हुआ। यह पुरुष विनम्र वचन बोल रहा है। वसुदेव ने मधुर और विनयपूर्ण स्वर मे कहा—

—भाई! मुझे लज्जित मत करो। मै जान-बूझ कर तुम्हारे ऊपर नही गिरा। फिर भी मेरे कारण तुम्हे जो कष्ट हुआ उसके लिए हृदय से क्षमा-प्रार्थी हूँ।

—नही, जो विद्या मुझे दीर्घकाल से सिद्ध नही हो रही थी वह आपके स्पर्श मात्र से सिद्ध हो गई। मैं आपका कृतज्ञ हूँ। मैं आपको क्या दूँ?

वसुदेव विद्याधर की विनम्रता का रहस्य समझ गए। उन्होने उससे कहा—'यदि आप देना ही चाहते है तो आकाशगामिनी विद्या

दे दीजिए।' विद्याधर ने विद्या दी। वसुदेव वहाँ से चलकर कनखल गाँव के बाहर विद्या सिद्ध करने लगे और चडवेग अपने स्थान की ओर चला गया।

वसुदेव विद्या-साधन मे मग्न थे। उसी समय विद्युद्वेग राजा की पुत्री मदनवेगा इधर से निकली। वसुदेव के सुन्दर रूप को देखकर मोहित हो गई। उसने तुरन्त कुमार को उठाया और वैताढ्य गिरि के पुष्प शयन उद्यान मे ले पहुँची। वसुदेव अपने जप मे लीन रहे, डिगे नही।

मदनवेगा समीप ही अपने नगर अमृतधार नगर मे चली गई।

प्रात काल मदनवेगा के तीनो भाइयो—दधिमुख, दडवेग और चडवेग[1] ने आकर वसुदेव को नमस्कार किया। तीनो भाई आग्रह-पूर्वक उन्हे अपने नगर मे ले गये और मदनवेगा के साथ उनका विवाह विधिपूर्वक कर दिया।

एक दिन दधिमुख ने कहा—

—कुमार! मेरे पिता को बधन से छुडाओ।

—किसके बन्धन मे है तुम्हारे पिता?

—दिवस्तिलक नगर के राजा त्रिशिखर के बन्धन मे।

—कारण?

—हमारी बहन मदनवेगा ही इसका कारण है। आप पूरी बात सुनिए।

दधिमुख कहने लगा—

राजा त्रिशिखर का एक पुत्र है सूर्पककुमार। उसके लिए हमारे पिता से त्रिशिखर ने मदनवेगा की याचना की। हमारे पिता ने उनकी याचना ठुकरा दी। कारण था चारण ऋद्धि धारी मुनि के वचन—'मदनवेगा का पति हरिवश मे उत्पन्न वसुदेव कुमार होगा। वह

---

१ यह चडवेग विद्याधर वही था जिसने वसुदेव को आकाश-गामिनी विद्या दी थी।

चडवेग के ऊपर आकाश मे गिरेगा। उसके स्पर्श मात्र से इसे विद्या सिद्धि हो जायेगी।'

याचना ठुकराए जाने के कारण बलवान राजा त्रिशिखर हमारे पिता विद्युद्वेग को बाँध ले गया।

अपने वश का परिचय देते हुए दधिमुख ने आगे बताया—

हमारे वश का प्रारभ नमि राजा से हुआ है। उसका पुत्र पुलस्त्य हुआ। इसी वश मे मेघनाद नाम का राजा हुआ जिसे उसके जामाता सुभूम चक्रवर्ती ने वैताढ्य गिरि की उत्तर और दक्षिण दोनो श्रेणियो का राजा बना दिया था। साथ ही उसे ब्रह्मास्त्र, आग्नेयास्त्र आदि अनेक दिव्य अस्त्र भी दिये। इसी वश मे रावण, विभीषण आदि हुए। विभीषण के वश मे हमारे पिता विद्युद्वेग ने जन्म लिया।

अनुक्रम से वे सभी दिव्यास्त्र हमारे पास हैं। उन्हे आप ग्रहण करिए। क्योकि दिव्यास्त्र महाभाग्यवान् के हाथ मे सफल होते है और मदभागी के पास निष्फल।

वसुदेव ने वे सभी दिव्यास्त्र विधिपूर्वक ग्रहण कर लिए।

×

'मदनवेगा जैसी सुन्दरी एक साधारण भूमिगोचरी मनुष्य के साथ व्याह दी गई' सुनकर राजा त्रिशिखर के तन-बदन मे आग लग गई। क्या उसका विद्याधर पुत्र सूर्पक मदनवेगा के योग्य नही था ?

त्रिशिखर युद्ध हेतु चढ आया। दधिमुख आदि विद्याधरो ने इन्द्रास्त्र वसुदेवको दिया। वसुदेवने इन्द्रास्त्र से त्रिशिखर का शिरच्छेद कर दिया और दिवस्तिलक नगर मे जाकर राजा विद्युद्वेग को बन्धन-मुक्त करा लिया।

इसके बाद मदनवेगा से उनका अनाधृष्टि नाम का पुत्र प्राप्त हुआ।

—त्रिषष्टि० ८/२

—वसुदेव हिंडी, वेगवती और मदनवेगा लभक

विशेष—मदनवेगा लभक के अन्तर्गत रामायण की कथा दी है और उसमे रावण के पूर्वजो का वर्णन करते हुए उनका नाम सहस्रग्रीव, शतग्रीव, पचास-ग्रीव आदि बताया है।

११ एक कोटि द्रव्य दान का विचित्र परिणाम

मदनवेगा अपने पति वसुदेव से रूठ कर अन्तर्गृह मे दूसरी शैय्या पर जा सोई। न वह वहाँ से वसुदेव को देख सकती थी और न वसुदेव उसे। बीच मे कई दीवारे बाधक जो थी।

रूठने का कारण था वसुदेव का मदनवेगा को वेगवती कह कर सबोधित करना। स्त्री नही चाहती कि उसका पति सपत्नी का नाम भी ले।

वसुदेव को भी मदनवेगा के रूठने से दु ख तो हुआ पर अब हो भी क्या सकता था ? जबान से निकली बात और कमान से निकला बाण वापिस तो आ नही सकता। वे भी खेदखिन्न होकर अपनी शैय्या पर पड़े रहे।

इधर पत्नी रूठी हुई, उधर पति खेदखिन्न। लाभ उठाया त्रिशिखर राजा को पत्नी सूर्पणखा ने। विद्याधरी ने अपने पति की मृत्यु का बदला लेने का अच्छा अवसर देखा। मदनवेगा का रूप बनाया और वसुदेव के पास आ गई। मीठे और खुशामद भरे वचनो से वसुदेव को मोहित कर लिया।

विद्याधरी वसुदेव को लेकर आकाश मे उड गई। बड़े प्रसन्न थे कुमार कि प्रिया मान गई। किन्तु वे ठगे जा रहे थे और विद्याधरी ठग रही थी।

जिस स्थान पर वसुदेव की शैय्या थी उसे विद्याबल से जलाकर सूर्पणखा ने राख की ढेरी बना दिया।

हँसते, मुसकराते, खिलखिलाते वसुदेव आकाश मे विद्याधरी के साथ चले जा रहे थे—विद्याधरी के अक मे बैठे थे वे।

अचानक विद्याधरी की मुख मुद्रा रौद्र हुई। एक धक्का लगा और वसुदेव आकाश से भूमि की ओर गिरने लगे। सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई उनकी। हर्ष का स्थान आश्चर्य ने ले लिया। पहले क्षण की आँखो की चमक भय मे बदल गई।

विद्याधरी सूर्पणखा ने तो उनको मारने का पूरा प्रबन्ध कर दिया था। इतनी ऊँचाई से गिर कर कोई बच सकता है क्या ? किन्तु 'जाको राखै साइयाँ' उसके बचने का कोई न कोई उपाय निकल ही आता है। वसुदेव भी गिरे तिनको फूस के ढेर पर अक्षत शरीर। कही कोई खरोच भी नही, चोट की तो कौन कहे ? पल्ला झाडकर खडे हो गये। मानो आकाश से न गिरे हो वरन् सो कर उठे हो।

चलकर समीप के ग्राम मे आये और पूछा तो ज्ञात हुआ 'पास ही राजगृही नगरी है और वहाँ का राजा है प्रबल प्रतापी जरासंध।'

जरासध ! जाना-पहचाना नाम था वसुदेव का। चल दिए नगरी की ओर। राजगृही मे पहुँचे तो बैठ गये पासा[1] खेलने। पासे के खेल मे एक कोटि (करोड) सुवर्ण द्रव्य जीत गये। इतने धन का क्या करे ? अत याचको को दान दे दिया।

उनके इस विचित्र व्यवहार की सूचना राजपुरुषो (राज्य के कर्मचारी सिपाही आदि) को मिल गई। वे तुरन्त आये और वसुदेव को पकडकर ले चले। वसुदेव ने ऐतराज किया—

—भाई ! मैंने कौन सा अपराध किया है जो मुझे पकड रहे हो ?

— तुम्हारा अपराध अक्षम्य है। राजसेवको ने उत्तर दिया।

१ पासा एक प्रकार का जूआ था जो कौडियो से खेला जाता था। इसका प्रचलन मध्यकाल तक रहा और अब भी कही-कही खेला जाता है। विशेषकर राजाओ का यह प्रमुख व्यसन था।

[सपादक]

—यही तो पूछ रहा हूँ कि मेरा अपराध क्या है ? मुझे क्यो वन्दी वनाया जा रहा है ?

—राजाज्ञा है आपको पकडने की ।

—क्या जूआ खेलना अपराध है या याचको को दान देना ?

—इन दोनो मे से अलग-अलग तो कोई अपराध नही है किन्तु एक कोटि स्वर्ण द्रव्य पासे के खेल मे जीतना और याचको को देना अवश्य घोर अपराध है ।

विस्मित होकर वसुदेव ने पूछा—

—तुम्हारी वातो मे कोई रहस्य छिपा हुआ है ?

प्रमुख राजसेवक ने उत्तर दिया—

—हाँ भद्र ! इसमे महाराज जरासध के जीवन का रहस्य छिपा है । किसी ज्ञानी ने उसे वताया है कि 'जो पुरुष यहाँ आकर एक कोटि स्वर्ण द्रव्य पासे के खेल मे जीते और उसे ज्यो की त्यो याचको को दान दे दे, उसका पुत्र तुम्हारा काल होगा ? अब समझ गये अपना अपराध ? व्यर्थ की वाते नही, चुपचाप हमारे साथ चलते रहो ।

वसुदेव की समझ मे अपना अपराध आ गया । राजकर्मचारी उन्हे समीप के एक पहाड पर ले गये । चमडे की पट्टियो से कस कर वाँधा और उछाल कर फेक दिया । परिणाम जानने की आवश्यकता तो थी ही नही । 'निश्चय ही मर जायगा' यह सोच कर राजकर्मचारी सतुष्ट होकर तत्काल लौट गये ।

पहाड से गिरे वसुदेव कुमार तो भूमि तक न पहुँच सके । वीच मे ही कुछ ऐसा चमत्कार हुआ कि उनकी दिशा वदल गई । अधो दिशा की वजाय तिरछी दिशा मे वहने लगे । कुछ समय तक वहते रहने के वाद एक पर्वत शिखर पर जाकर टिक गये ।

आधार मिलते ही वसुदेव ने इधर-उधर दृष्टि दौडाई । उन्हे वेग-वती के पाँव दिखाई दिये । चर्म-वधनो को पराक्रमी वसुदेव ने कच्चे सूत की तरह तोड डाला और आगे वढकर वेगवती को अक मे भर लिया । पूछने लगे—

—प्रिये ! तुमने मुझे किस प्रकार प्राप्त किया ?

वेगवती की अश्रुधारा वह रही थी। बडी कठिनाई से आँसू रोक कर रुँधे गले से आप-बीती कहने लगी—

—स्वामी ! जिस समय मैं शैय्या से उठी तो आप मुझे दिखाई न दिये। मैं रुदन करने लगी। उस समय प्रज्ञप्ति विद्या ने आकर मुझे आपके हरण और आकाश से गिरने का समाचार सुनाया। मैंने अपने हृदय मे विचार किया कि 'आपके पास किसी मुनि की वताई हुई प्रभाविक विद्या है। कुछ समय पश्चात् स्वय ही आ मिलेगे।' किन्तु जब आप काफी दिनो तक नही आये तो मैं आपकी खोज मे निकली। ढूँढते-ढूँढते सिद्धायतन मे पहुँची तो आप मदनवेगा के साथ थे। मुझे अप्रत्यक्ष रूप मे आपके साथ लगी रही। आप दोनो के पीछे-पीछे मै अमृत-धार नगर मे आई। आपके मुख मे मदनवेगा के बजाय अपना नाम सुनकर मुझे प्रसन्नता हुई कि आप मुझे भूले नही है। मदनवेगा के रूठ कर अतर्गृह मे चले जाने के बाद जब त्रिशिखर की पत्नी सूर्पणखा ने मदनवेगा के रूप मे आपका अपहरण किया तो मैं भी उसके पीछे-पीछे गई। जब उसने आपको राजगृही नगरी के बाहर गिराया तो मैं मानसवेग का रूप रखकर आपको बचाने दौडी लेकिन उस दुष्टा ने मुझे देख लिया और विद्या बल से मुझे मार भगाया। उससे भयभीत होकर मैं समीप के एक चैत्य मे दौडी-दौडी जा रही थी। उस समय भूल से किसी मुनि का उल्लघन हो गया और मेरी सारी विद्याएँ नष्ट हो गई।

तभी मेरी धायमाता मुझे मिली। मैंने अपना पूरा वृतान्त उसे सुना दिया। जब आपको जरासध के सैनिको ने पर्वत से नीचे गिराया तो मेरी धायमाँ ने ही आपको बचाकर मेरे पास तक पहुँचाया।

वेगवती की निष्ठा से वसुदेव बहुत प्रभावित हुए। पूछा—

—यह कौन सा स्थान है ?

—नाथ ! यह ह्रीमान पर्वत का पचनद तीर्थ है।

वसुदेव और वेगवती दोनो कुछ देर तक तो सुख-दुःख की बाते

करते रहे और फिर वहाँ से चल कर एक तापस के आश्रम मे जा पहुँचे ।

तापस के आश्रम मे दोनो सुखपूर्वक रहने लगे ।

× × ×

एक दिन वेगवती को नदी मे वहती हुई एक युवती दिखाई पडी । उसका अग-अग पाश से वँधा हुआ था । उसकी प्रेरणा से वसुदेव ने उस कन्या को नदी मे निकाला और बधनमुक्त किया । कुछ समय वाद सचेत होकर कन्या वसुदेव से वोली—

—हे महात्मन् ! आपके प्रभाव से मेरी विद्या आज सिद्ध हो गई । मैं आपकी वहुत कृतज्ञ हूँ ।

वसुदेव ने पूछा—

—सुन्दरी ! तुम हो कौन और विद्यासिद्धि कारण क्या है ?

कन्या ने अपना परिचय वताया—

वैताढ्य गिरि पर गगनवल्लभ नगर है । इसमे पहले विद्याधर राजा नमि का वशधर कोई विद्युद्दंष्ट राजा राज्य करता था । उसने किसी मुनि को कायोत्सर्ग मे लीन देखा । घोर पाप का उदय आगया था उसका इसीलिए परम शात और निस्पृही मुनि को देखते ही अपने अनुचरो से वोला—'यह कोई उत्पाती है । इसे वरुणालय मे ले जाकर मार डालो ।'

अनुचरो को स्वामी की आज्ञा मिली और वे मुनिराज को मारने लगे । परम धीर मुनिश्री इस उपसर्ग से तनिक भी खिन्न न हुए वरन् शुक्लध्यान मे लीन हो गये । उपसर्ग होते रहे और मुनि गुणस्थान चढते रहे । नवाँ, दशवाँ और वारहवाँ पार कर तेरहवाँ गुणस्थान प्राप्त कर लिया । वे केवली हो गये ।

उनका कैवल्योत्सव मनाने धरणेन्द्र आया तो उसने सभी अनुचर विद्याधरो और विद्युद्दंष्ट्र को विद्याभ्रष्ट कर दिया ।

विद्याहीन विद्याधर का जीवन तृणवत् होता है । अनुचरो ने धरणेन्द्र से विनती की—

—हे देवेन्द्र ! यह मुनि कौन है, हमको तो मालूम नही। विद्याधर राजा विद्युद्दष्ट्र ने 'यह उत्पाती है' कह कर हमसे यह अकार्य कराया है। हम निर्दोष है, क्षमा करो।

धरणेन्द्र ने उन्हे प्रताडना दी—

—निर्दोष तो तुम भी नही हो। जैन श्रमणो पर उपसर्ग करने वाला अपराधी ही होता है। चाहे वह किसी अन्य की प्रेरणा मे उपद्रव करे या स्वय।

—क्षमा ! देवेन्द्र क्षमा !! विद्याधरो का कातर स्वर गूँजा।

दया आ गई धरणेन्द्र को। उसके मुख से निकला—

—ठीक है। तुम दुबारा विद्या सिद्ध कर लो। परन्तु याद रखना अर्हन्त और उनके अनुयायियो से तनिक भी द्वेष किया तो सदा-सदा के लिए विद्याविहीन हो जाओगे।

—सभी विद्याएँ पुन प्राप्त हो जायेगी हमको ? विद्याधरो ने पूछा।

—नही ! दुर्मति विद्युद्दष्ट्र को प्रज्ञप्ति आदि महा विद्याएँ कभी सिद्ध नही होगी। उसके वशधरो को भी नही।

—देवेन्द्र ! कोई अन्य उपाय वताइये। विद्याहीन विद्याधर का जीवन मृत्यु से भी बुरा होता। अनुचरो ने अनुनय की।

—मैं कैवल्योत्सव मनाने जा रहा हूँ इसलिए किसी का अहित नही करना चाहता। विद्युद्दष्ट्र के किसी वशधर को यदि किसी केवली श्रमण अथवा महापुण्यवान जीव के दर्शन हो जायँ तो उसे विद्या सिद्ध हो सकती है।

यह कह कर धरणेन्द्र मुनि का कैवल्योत्सव मनाने चला गया। उसके वाद उसके वश मे केतुमती नाम की कन्या हुई।

केतुमती विद्या सिद्ध कर रही थी। उसी समय वासुदेव पुण्डरीक ने उससे विवाह कर लिया। परिणामस्वरूप उसे विद्या सिद्ध हो गई।

वह सुन्दर कन्या वसुदेव को सवोधित करके वोली—

—हे महाभाग ! मै भी विद्याधर विद्युद्दष्ट्र के वश में उत्पन्न हुई हूँ।

मेरा नाम वालचन्द्रा है। आपके प्रभाव से ही मुझे विद्या सिद्ध हुई है। अव मैं आपके वश मे हूँ। आप चाहे तो मेरा परिणय करे। अथवा मैं क्या करूँ मुझे वताइये।

वसुदेव ने उसका सारा वृतान्त सुनकर उत्तर दिया—

—सुन्दरी ! मुझे कुछ नही चाहिए। तुम्हे विद्या सिद्ध हो गई। तुम्हारा परिश्रम सफल हुआ। मुझे इसी मे प्रसन्नता है।

वालचन्द्रा ने जव वहुत आग्रह किया तो वसुदेव ने कहा—इस वेग वती को विद्या दो।

—वेगवती ! तुम मेरे साथ गगनवल्लभ नगर चलो और विद्या ग्रहण करो। वालचन्द्रा ने वेगवती से कहा।

किन्तु वेगवती पति से विलग होना नहीं चाहती थी। वडी कठिनाई से तो उसका मिलन हो पाया था। उसके हृदय के एक कोने मे विद्या-प्राप्ति की लालसा भी थी क्योकि मुनिराज का उल्लघन हो जाने से वह विद्याहीन हो चुकी थी। उसने वहुत आग्रह किया कि वालचन्द्रा उसे यही विद्या प्रदान करे परन्तु जव वालचन्द्रा ने विवशता दिखाई तो वह भी मजवूर होगई।

पति की आज्ञा लेकर वेगवती तो वालचन्द्रा के साथ गगनवल्लभ नगर चली गई और वसुदेव तापस के आश्रम मे रहने लगे।

—त्रिषष्टि० ८/२

—वसुदेव हिंडी, वालचन्द्रा लम्भक

१२ देवी का वचन

—हम जैसे पुसत्वहीनो को धिक्कार है।

—एक वार नही सौ वार ! तुम धिक्कार की वात कह रहे हो, मैं तो कहता हूँ मर जाना ही अच्छा है।

—मरना भी तो वहादुर ही जानते है। हम जैसे कायर तो रण छोडकर भाग ही सकते है।

—एक ने सब को मार भगाया। जीवन तो ऐसे ही पराक्रमियो का है। हम जैसे डरपोको का क्या ?

—सच कहते हो, पृथ्वी के भार है हम तो।

दो नये तापस परस्पर वार्तालाप कर रहे थे। वसुदेव को उनकी वातो मे रुचि हो आई। उन्होने पूछा—

—आप लोग क्यो इतने खेदखिन्न हो रहे है ?

नये तापसो मे से एक ने वताया —

श्रावस्ती नगरी मे निर्मल चरित्र वाला एणीपुत्र,नाम का एक राजा है। उसने अपनी रतिरूपा युवा पुत्री प्रियगुसुन्दरी के स्वयवर मे अनेक राजाओ को निमत्रित किया। हम भी उसमे सम्मिलित हुए। राजकुमारी ने किसी का वरण नही किया तो राजा लोग क्रोध मे भर गये। उन्होने युद्ध प्रारभ कर दिया किन्तु एणीपुत्र की वीरता तो देखो। उस अकेले ने ही सव को मार भगाया। कोई पहाड मे जा छिपा तो कोई वन मे और हम दोनो यहाँ तापस वन कर आ गये। अपनी इस कायरता को ही धिक्कार रहे थे !

उसकी वात सुनकर वसुदेव ने कहा—

—तापस ! सव पुण्य का प्रभाव है और पुण्य होता है धर्मसेवन से। सच्चा धर्म है जैनधर्म, भगवान अर्हन्त सर्वज्ञ द्वारा उपदिष्ट। उसी

का सेवन करो। उसका फल अचिन्त्य है। चित्त को शाति मिलेगी और लोक-परलोक सुधरेगा। इस लोक मे मान-सम्मान और यश की प्राप्ति होगी तथा जीवनोपरात मुक्ति।

दोनो नये तापसो ने रुचिपूर्वक जैनधर्म अगीकार कर लिया।

× ×

तापसो की वात सुनकर वसुदेव के हृदय मे भी श्रावस्ती नरेश एणीपुत्र को देखने की इच्छा जाग्रत हुई। एक पराक्रमी दूसरे पराक्रमी से मिलना चाहता ही है। वसुदेव भी श्रावस्ती नगरी जा पहुँचे। वहाँ उद्यान मे एक तीन द्वारो वाला देवगृह दिखाई दिया। उसका मुख्य द्वार वत्तीस अर्गलाओ (साँकलो, जजीरो) से आवेष्टित था अत उसमे से तो प्रवेश करना असभव ही था अत वे दूसरे छोटे द्वार से अन्दर गये। अन्दर जाते ही उन्हे देवमूर्ति तो कोई दिखाई नही पडी। हाँ, तीन मूर्तियाँ अवश्य वहाँ थी—एक मुनि की, दूसरी श्रावक की और तीसरी एक तीन पैर वाले पाडे (भैंस के वच्चे) की।

वसुदेव इन मूर्तियो का रहस्य नही समझ पाये। उन्होने एक ब्राह्मण से पूछा—इसका रहस्य क्या है ?

ब्राह्मण ने वताया—

पहले यहाँ जितशत्रु नाम का राजा राज्य करता था। उसका पुत्र था मृगध्वज। नगर मे एक श्रेष्ठी था कामदेव।

श्रेष्ठि कामदेव एक वार नगर के वाहर अपनी पशुशाला मे गया। वहाँ दडक नाम के ग्वाले ने कहा—

—सेठजी ! आपकी इस भैंस (महिषी) के पाँच पाड़े मै पहले ही मार चुका हूँ किन्तु यह छठा पाडा भद्र स्वरूपी है। जव से उत्पन्न हुआ है भय से काँपता रहता है। इस कारण मैंने मारा नही है। आप भी इसे अभय दीजिए।

दया करके सेठ कामदेव उसे नगरी मे ले आया और राजा से अभय की याचना की। राजा जितशत्रु ने अभय देते हुए आज्ञा दी—

—यह पाडा सपूर्ण नगरी मे जहा चाहे स्वेच्छापूर्वक घूमता रहे।

कुछ दिन बाद कुमार मृगध्वज ने पाडे का एक पैर काट दिया। राजा को पता चला तो उसने पुत्र को नगर से बाहर निकाल दिया। कुमार मृगध्वज ने श्रामणी दीक्षा ग्रहण करली।

पाँव कटने के अठारहवे दिन पाडे की मृत्यु हो गई और बावीसवे दिन मृगध्वज को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। देव, असुर, सुर, राजा, मत्री आदि सभी उनकी वदना हेतु आये। देशना के अन्त मे राजा जितशत्रु ने पूछा—

—आपका पाडे के साथ क्या वैर था कि उसका पाँव काट लिया ?

केवली मृगध्वज ने फरमाया—

पहले अश्वग्रीव नाम का प्रतिवासुदेव (अर्द्धचक्री) था। उसका एक मत्री था हरिश्मश्रु। राजा जैन धर्मावलवी था और मत्री अर्हन्त धर्म विरोधी। उन दोनो मे परस्पर वाद-विवाद होता। धीरे-धीरे उनका वैर बढ गया। वासुदेव त्रिपृष्ट के हाथो मृत्यु पाकर दोनो सातवे नरक गये। अनेक भवो मे भ्रमण करते हुए अश्वग्रीव का जीव तो मैं मृगध्वज हुआ और हरिश्मश्रु का जीव यह पाडा। पूर्व वैर के कारण ही मैंने इसका पैर काटा था। वह पाडा मरकर रोहिताक्ष नाम का असुर हुआ है। यह देखो वह मुझे वदन करने आ रहा है। ससार का नाटक बडा विचित्र है।

इसके पश्चात् असुर लोहिताक्ष ने केवली मृगध्वज का वदन किया।

ब्राह्मण ने वसुदेव को सम्बोधित किया—

भद्र! उसी लोहिताक्ष असुर ने ये तीन मूर्तियाँ इस देवगृह मे स्थापित कराई—एक मुनि मृगध्वज की, दूसरी श्रेष्ठि श्रावक कामदेव की और तीसरी तीन पाँववाले पाडे की। इसी कारण इस के तीन द्वार रखे और मुख्य द्वार को बत्तीस साँकलो से जकड दिया।

वसुदेव ब्राह्मण की बात ध्यान से सुनकर बोले—

द्विजश्रेष्ठ! क्या तब से ये साँकल अब तक खुली नही ?

ब्राह्मण ने वताया—

इसका भी एक रहस्य ही है। कामदेव सेठ की परपरा मे इस समय कामदत्त सेठ है। उसकी पुत्री है वन्धुमती। वन्धुमती के विवाह के सम्बन्ध मे एक ज्ञानी ने वताया है 'जो इस देवालय के मुख्यद्वार को उघाड (खोल) देगा, वही इसका स्वामी होगा'। देखे कौन पुण्यशाली इसे उघाडता है।

वसुदेव ने सपूर्ण वृतान्त सुन कर देवालय का मुख्यद्वार उघाड दिया। कामदत्त सेठ ने अपनी पुत्री वन्धुमती का विवाह उनके साथ कर दिया। विवाह उत्सव देखने राजा के साथ राजपुत्री प्रियगुसुदरी भी आई। वसुदेव को देखते ही उसके अग मे कामदेव समा गया।

द्वारपाल ने आकर वसुदेव को राजा एणीपुत्र का निर्मल चरित्र और राजपुत्री की दशा वताकर आग्रह किया—'कल प्रात काल आप राजमहल मे अवश्य आइये।'

वसुदेव द्वारपाल की वात सुनकर चुप हो गये और द्वारपाल उनके मौन को स्वीकृति समझ कर चला गया।

उसी दिन वसुदेव ने एक नाटक देखा। उसमे कथानक था—'नमि के वश मे पुरुहूत राजा हुआ। एक दिन वह हाथी पर सवार होकर जा रहा था कि उसकी दृष्टि गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या पर पडी। पुरुहूत काम पीडित हो गया और उसने अहल्या को आश्रम मे ले जाकर उसके साथ रतिक्रीडा की। उसी समय गौतम ऋषि आ गये। उन्होने क्रोधित होकर उसका लिग छेद कर दिया।

इस कथानक ने वसुदेव के हृदय मे भय की एक लकीर खीच दी। वे प्रियगुसुन्दरी के पास नही गये। अपनी पत्नी वन्धुमती के साथ ही सो गये।

आधी रात के समय अचानक उनकी नीद खुल गई। शयन कक्ष मे उन्हे एक देवी दिखाई दी। वे सोचने लगे—'यह कौन है ?'

उन्हे विचारमग्न देखकर देवी ने कहा—

—वत्स ! तुम क्या सोच रहे हो ?

—मै यह सोच रहा हूँ कि आप कौन है और मेरे पास किस प्रयोजन से आई है ?—वसुदेव ने उत्तर दिया।

—वही वताने आई हूँ। मेरे साथ चलो। यह कहकर देवी ने उनका हाथ पकड़ा और अशोक वन मे ले गई। वहाँ पहुँच कर कहने लगी—मेरी वात ध्यान देकर सुनो।

इस भरतक्षेत्र के श्रीचदन नाम के नगर पर अमोघरेता नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी थी चारुमति और पुत्र चारुचन्द्र। उसी नगर मे रहती थी वेश्या अनतसेना और उसकी पुत्री कामपताका।

राज अमोघरेता ने एक वार यज्ञ किया। यज्ञ के उपाध्याय थे कौशिक और तृणविन्दु। यज्ञमडप मे आयोजन किया गया नृत्य का। नृत्य करती हुई वेश्यापुत्री कामपताका ने अपने नृत्य कौशल से राजकुमार चारुचन्द्र और उपाध्याय कौशिक दोनो का मन मोह लिया।

कुमार चारुचन्द्र ने कामपताका को अपने वश मे करके विवाह कर लिया।

दोनो उपाध्यायो ने राजा को वहुत से मधुर और स्वादिष्ट फल दिये। वे फल राजा ने जीवन मे पहली वार देखे थे। उसने पूछा—'ऐसे सुन्दर अद्‌भुत फल आप कहाँ से लाये ? तव उन्होने हरिवश की उत्पत्ति और भोगभूमि से लाये गये कल्पवृक्ष का वर्णन किया।

कौशिक ने यज्ञ समाप्त होने पर वेश्यापुत्री कामपताका को माँगा। उसे विश्वास था कि उसकी इच्छा अवश्य पूरी होगी किन्तु राजा ने कह दिया—'कामपताका ने कुमार चारुचन्द्र के साथ विवाह कर लिया है। अब दूसरा पति होना असभव है।' उपाध्याय कौशिक ने क्रोध मे आकर श्राप दिया—'उसके साथ क्रीडा करते ही कुमार की मृत्यु हो जायेगी।'

महामति राजा अमोघरेता को इसी कारण वैराग्य हो गया। अपने पुत्र चारुचन्द्र को राज्य देकर वह तापस के आश्रम मे जाकर रहने लगा। उसके साथ उसकी अज्ञात गर्भा रानी भी थी। समय पाकर

उसके गर्भ के लक्षण प्रकट हुए और उसने एक पुत्री को जन्म दिया। पुत्री का नाम रखा गया ऋपिदत्ता। ऋपिदत्ता अनुक्रम से युवती हुई और उसने किसी चारण मुनि के पास श्राविका के व्रत ग्रहण कर लिए। उसकी माता और धात्री (पालन-पोपण करने वाली) की मृत्यु हो गई।

एक वार राजा शिलायुध मृगया खेलते-खेलते उधर आ निकला और ऋषिदत्ता को देखकर कामपीडित हो गया। ऋपिदत्ता ने भी उसका अतिथि सत्कार किया। शिलायुध ने एकात मे ले जाकर ऋषिदत्ता के साथ अनेक प्रकार से कामक्रीडा की। ऋपिदत्ता ने उस समय शका प्रगट की—

—राजन्! मैं सद्य स्नाता हूँ। यदि गर्भ रह गया तो क्या होगा?

राजा ने आश्वासन दिया—

—मैं इक्ष्वाकु वशी श्रावस्ती नरेश शतायुध का पुत्र शिलायुध हूँ। यदि तुम्हारे पुत्र हो जाय तो मेरे पास आ जाना। मैं उसे राजा बना दूँगा।

इतने मे सेना आ पहुँची और शिलायुध अपनी नगरी की ओर चल दिया।

ऋषिदत्ता की आशका सत्य हुई। उसने गर्भ धारण कर ही लिया था। योग्य समय पर उसने पुत्र प्रसव किया। प्रसव मे ही ऋपिदत्ता की मृत्यु हो गई और वह ज्वलनप्रभ नागेन्द्र की अग्रमहिपी बनी। वह अग्रमहिपी मैं ही हूँ।

पुत्री की मृत्यु हो जाने पर उसका पिता तापस अमोघरेता पुत्र को लेकर बहुत देर तक रोता रहा। मैने अपने अवधिज्ञान से पूर्व वृतान्त जान लिया। पुत्र मोह के कारण मैं मृगीरूप मे वहाँ आई और स्तनपान कराके उसे बडा किया। इसी कारण उस बालक का नाम एणीपुत्र पडा।

कौशिक तापस भी मरकर दृष्टिविप सर्प बना और उसने पूर्व वैर के कारण तापस अमोघरेता को डस लिया। मैंने अपने पिता

अमोघरेता का सर्पविष दूर किया और सर्प को प्रतिबोध दिया। वह सर्प मरकर बल नाम का देव हुआ।

मैंने ऋषिदत्ता का रूप रखकर अपने पुत्र को साथ लिया और श्रावस्ती जा पहुँची। राजा शिलायुध को पुत्र देने का प्रयास किया किन्तु वह तो मुझे भूल ही गया था। तब मैंने पुत्र तो उसी के पास छोड़ा और आकाश मे उड़कर नभोवाणी की—

हे राजा शिलायुध ! वन मे रहने वाली निर्दोष कन्या ऋषिदत्ता का तुमने भोग किया था, उसी का फल है यह बालक ! ऋषिदत्ता प्रसव काल मे ही मर कर देवी बनी है। मैं ही वह देवी हूँ। पुत्र मोह के कारण ही मैंने मृगी का रूप रखकर इसका पालन किया है। अत यह एणीपुत्र के नाम से विख्यात है।

राजा को बीती घटना याद आ गई। उसने अपने पुत्र एणीपुत्र को राज्य पर बिठाया और स्वयं दीक्षा लेकर स्वर्ग गया।

एणीपुत्र ने संतान के लिए अट्ठमभक्त तप करके मुझे प्रसन्न किया। तब यह प्रियंगुसुन्दरी नाम की कन्या मेरे प्रसाद से उत्पन्न हुई।

प्रियंगुसुन्दरी के स्वयंवर मे सम्मिलित राजाओं को भी एणीपुत्र मेरी सहायता से ही पराजित कर सका था।

वसुदेव को संबोधित करके देवी ने कहा

—हे वीर ! प्रियंगुसुन्दरी तुम्हे पाने के लिए अट्ठमभक्त तप कर रही है। मेरी प्रेरणा से ही द्वारपाल तुम्हे बुलाने आया था किन्तु तुम अज्ञानवश गये नही। अब जाकर उसके साथ विवाह करो।

कुमार वसुदेव शांतिपूर्वक देवी की बाते सुनते रहे। अभी वे कुछ निर्णय नही कर पाये थे कि देवी का स्वर पुन सुनाई पड़ा—

—वत्स ! विचार करने की आवश्यकता नही। प्रियंगुसुन्दरी का लग्न तुम्हारे साथ हो यह विधि का विधान है। हाँ, यदि तुम चाहो तो मुझसे कोई वरदान माँग लो।

—अभी तो कुछ नही चाहिए जब स्मरण करूँ तब आने की कृपा करना। —वसुदेव ने उत्तर दिया।

—तो तुम्हे प्रियगुसुन्दरी से लग्न स्वीकार है ?—देवी ने पुष्टि चाही।

—आपकी इच्छा और विधि के विधान उल्लघन कैसे हो सकता है ? मुझे स्वीकार है।—वसुदेव ने स्वीकृति दी।

देवी ने भी वसुदेव की इच्छा मान ली। उसने वचन दिया—'जब भी तुम मुझे बुलाओगे, मै आऊँगी।'

इसके बाद देवी ने वसुदेव का हाथ पकड़ा और अशोक वन से उठाकर बन्धुमती के शयन कक्ष मे ले आई।

देवी अतर्धान हो गई और वसुदेव बन्धुमती की बगल मे लेट गये।

प्रात काल द्वारपाल के साथ वसुदेवकुमार प्रियगुसुन्दरी के पास गये। राजकुमारी उन्हे देखकर कमलिनी की भाँति खिल गई। वसुदेव ने बडे हर्ष के साथ गाधर्व विवाह किया।

द्वारपाल ने अठारह दिन बाद उन दोनो के विवाह की बात राजा एणीपुत्र को बताई।

राजा इस विवाह से प्रसन्न हुआ और वसुदेव तथा प्रियगुसुन्दरी दोनो को अपने महल मे ले गया।

वसुदेव और प्रियगुसुन्दरी—दोनो पति-पत्नी सुख से रहने लगे।

—त्रिषष्टि० ८।२

—वसुदेव हिंडी, बधुमती लम्भक

प्रियगुसुन्दरी लम्भक

१३ माता का न्याय

—हे सखि ! तुम किस कारण दुखी हो ?

—क्या करोगी, मेरे दु ख को जान कर ?

—तुम्हारा कष्ट मिटाने का उपाय। वताओ तो सही क्या दु ख है तुम्हे ?

—पति-वियोग से वढकर दु ख और क्या हो सकता है ?

यह वाते हो रही थी पति-वियुक्ता सोमश्री और प्रभावती मे।

प्रभावती वैताढ्यगिरि पर अवस्थित गध समृद्धनगर के राजा गधारपिगल की पुत्री थी। वह घूमते-घामते सुवर्णाभ नगर आ पहुँची। वहाँ दु ख सतप्त सोमश्री दिखाई पडी तो उसे सहानुभूति हो आई। उसने उसके साथ सखीपना जोड लिया।

प्रभावती ने पूछा—

—सखि ! कौन है तुम्हारा पति ? मुझे वताओ तो मैं उसे ले आऊँ।

—एक वार इस मानसवेग की वहन वेगवती भी गई थी इसी अभिप्राय से, सो अव तक नही लौटी। अव तुम जरूर ले आओगी।

सोमश्री के शब्दो मे छिपे व्यग को प्रभावती समझ गई। पर स्वय पर कावू रख कर वोली—

—सभी एक सी नही होती, सोमश्री !

—हाँ, होती तो नही, पर कामदेव को भी लज्जित करने वाले सुन्दर युवक को देखकर कामपीडित तो सभी हो जाती है।

—वहुत निराश हो गई हो तुम। मुझ पर विश्वास करो। उनका नाम वता दो।

प्रभावती के आग्रह पर सोमश्री ने वसुदेव का नाम वता दिया।

गधारगपिगल की पुत्री प्रभावती वहाँ से उडी और वसुदेव को खोजते-खोजते श्रावस्ती नगरी आ पहुँची। उसने वसुदेव का हरण किया और सोमश्री के पास पहुँचा दिया।

सोमश्री प्रसन्न हो गई पति को देखकर। किन्तु सुवर्णाभ नगर मे वसुदेव का रहना भी निरापद न था और सोमश्री को लेकर वहाँ से निकल जाना भी असभव।

वसुदेव ने अपना रूप दूसरा बनाया और सोमश्री के साथ रहने लगे।

रूप तो बदल लिया था वसुदेव ने किन्तु अपनी उपस्थिति कैसे छिपा सकते थे। मानसवेग को ज्ञात हो ही गया कि एक नया पुरुष सोमश्री के पास रहने लगा है। उसे यह कब सहन होता। बडे कौशल से उसने वसुदेव को बाँध लिया।

चुपचाप ही नही बँध गये वसुदेव। उन्होने सघर्ष भी किया और शोर भी मचाया। कोलाहल को सुनकर अन्य विद्याधर आ गये। उन्होने बीच मे पडकर वसुदेव को बधन मुक्त करा दिया।

बधनमुक्त हुए वसुदेव तो विवाद करने लगे मानसवेग से। वह भी क्यो पीछे रहता, उसने भी जमकर प्रत्युत्तर दिये। वाद-विवाद का मूल था सोमश्री। तर्क-वितर्क मे कोई कम नही था किन्तु निर्णय कौन करे? मानसवेग के राज्य मे तो निष्पक्ष न्याय हो नही सकता था। सभी का निर्णय उसके पक्ष मे ही होता। अत तय हुआ कि वैजयन्ती नगरी के राजा बलसिंह को इस विवाद का पच बनाया जाय।

मानसवेग और वसुदेव दोनो पहुँच गये राजा बलसिंह के पास पच निर्णय कराने। सूर्पक आदि अन्य विद्याधर राजा भी एकत्रित हुए। पचायत बैठी और दोनो को अपना-अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर मिला।

पहले बोला मानसवेग—

—सोमश्री मेरे लिए कल्पी गई थी किन्तु वसुदेव ने छलपूर्वक उससे विवाह कर लिया।

—नही इसके पिता ने ही मुझे दिया था। मैंने कोई छल नही किया। छल तो इस मानसवेग ने किया है जो सोती हुई मेरी परिणीता पत्नी सोमश्री को निर्लज्जतापूर्वक उठा लाया।

—और अपनी बहन वेगवती भी मैंने ही तुम्हे दी थी, न ! उसके साथ क्यो सम्बन्ध कर लिया।

—वेगवती मेरी विवाहिता पत्नी है। सभी जानते है। और सोमश्री का हरण जग-जाहिर है। अन्तिम बात यह है कि सोमश्री से ही पूछ लिया जाय कि कौन उसका पति है और वह किसके साथ रहना चाहती है।

वसुदेव के इस तर्क का उत्तर किसी के पास नही था। सभी जानते थे कि मानसवेग ने सोमश्री का हरण किया है और उसे बल-पूर्वक रोके हुए है।

जब मनुष्य बातो मे पराजित हो जाता है तो खीझ कर हाथ चलाने लगता है। यही विद्याधर समूह ने किया। मानसवेग युद्ध को तत्पर हुआ तो उसके साथ नीलकठ,[1] अगारक[2], सूर्पक[3] आदि विद्याधर भी आ गये।

एक ओर अनेक विद्याधर और दूसरी ओर विद्याहीन अकेले वसुदेव। इस अन्याय को वेगवती की माता अगारवती न देख सकी। उसने वसुदेव को दिव्य धनुष और बाणो से भरे दो तरकस दिये। प्रभावती ने प्रज्ञप्ति महाविद्या दी।

दिव्य अस्त्रो से सुसज्जित पराक्रमी वसुदेव ने विद्याधरो को लीला मात्र मे ही पराजित कर दिया। मानसवेग को बदी बना कर सोमश्री के आगे ला पटका।

---

१ नीलकठ की शत्रुता वसुदेव से नीलयशा के कारण थी।

२ अगारक की शत्रुता का कारण अशनिवेग विद्याधर की पुत्री श्यामा से विवाह था।

३ सूर्पक विद्याधर की शत्रुता का कारण मदनवेगा से वसुदेव का विवाह था।

स्त्री अन्याय नही देख सकती तो माँ पुत्र का मरण भी नही। पुत्र को वधनग्रस्त देखकर अगारवती का मातृस्नेह उमड आया। सोमश्री के हरण के कारण वह पुत्र से नाराज थी। इसीलिए उसने न्याय पथ के अनुयायी वसुदेव को दिव्यास्त्र दिये। माता अगारवती का यह कार्य अपने पुत्र को दडित करने-जैसा था। उसने वसुदेव से कहा—

—वत्स! मानसवेग को दण्ड मिल चुका। अब इसे वधनमुक्त कर दो।

वसुदेव मातृ हृदय की अवहेलना न कर सके। उन्होने मानसवेग के वधन खोले और अगारवती से कहा—

—आपके आदेश का पालन हुआ। मानसवेग धर्म और न्याय-पूर्वक अपने राज्य का पालन करे। हमे जाने की आज्ञा दीजिए।

अगारवती से स्वीकृति लेकर वसुदेव सोमश्री के साथ विमान मे वैठकर महापुर आ गये और सुखपूर्वक रहने लगे।

× × ×

कदाग्रही व्यक्ति अपनी नीचता से वाज नही आता। एक वार तो सूर्पक वसुदेव से पराजित हो ही चुका था किन्तु फिर भी उसने शत्रुता का भाव नही त्यागा। एक दिन अश्व का रूप धारण करके वसुदेव का हरण कर ले जाने लगा किन्तु एक मुष्टि प्रहार भी न सह सका। एक मुक्के मे ही विह्वल होकर निकल भागा। आधार रहित होकर वसुदेव भी गगा की धारा मे गिर पडे। वहाँ से निकल कर चले तो एक तापस के आश्रम मे जा पहुँचे।

आश्रम मे एक स्त्री अपने कठ मे अस्थियो की माला पहने खडी थी। वसुदेव ने कौडियो की, शखो की, रुद्राक्ष और तुलसी आदि की माला तो तापस स्त्रियो को पहने देखा था किन्तु मानव-अस्थियो की माला? यह पहली ही घटना थी। उत्सुकतावश उन्होने तापसियो से उस स्त्री का परिचय पूछा। एक तापस ने वताया—

'यह जितशत्रु राजा की स्त्री नदिषेणा है। किसी सन्यासी ने इसे

वश मे कर लिया था। सन्यासी को तो राजा ने मार डाला किन्तु यह इसके मत्र के प्रभाव से मुक्त नही हो पाई। अब भी उसकी अस्थियो की माला कठ मे धारण किये है।'

वसुदेव ने अपने मत्र बल का चमत्कार दिखाया और नदिषेणा को स्वस्थ कर दिया। उसने अस्थियो की माला उतार फेकी और अपने पति जितशत्रु की इच्छा करने लगी।

जितशत्रु ने इस उपकार के बदले वसुदेव को अपनी बहन केतुमती दी।

एक दिन जरासध के द्वारपाल डिभ ने आकर जितशत्रु से कहा—

—राजन्! मेरे स्वामी ने कहलवाया है कि नदिषेणा को स्वस्थ करने वाला हमारा उपकारी है। उसे हमारे पास भेजो।

जितशत्रु ने यह बात स्वीकार की। उसने वसुदेव से कहा—

—भद्र! नदिषेणा राजा जरासध की बहन है। उसके स्वस्थ होने से वह बहुत प्रसन्न हुआ है। तुम्हे पुरस्कृत करने हेतु बुलाया है। तुम जाओ।

वसुदेव को जरासध और जितशत्रु की बात युक्तिसगत लगी। वे द्वारपाल के साथ रथ मे बैठकर राजगृही नगरी पहुँचे। नगर मे प्रवेश करते ही रक्षको ने उन्हे बाँध लिया। विस्मित होकर वे कहने लगे—

—यह कैसा पुरस्कार मिल रहा है, मुझे? मैंने जरासध की बहन को स्वस्थ किया और उसने मुझे बदी बना लिया।

रक्षको ने बताया—

—किसी ज्ञानी ने राजा जरासध को बताया था कि नदिषेणा को स्वस्थ करने वाले पुरुष का पुत्र तेरा काल होगा। इसीलिए तुमको बाँधा गया है।

—अब क्या करोगे तुम लोग? मुझे जरासध के सामने पेश करोगे।

—नही! उसकी आवश्यकता नही है। हम लोगो को आदेश है कि तुम्हे वधस्थल पर ले जाकर मार दिया जाय।

यह कह कर रक्षक उन्हे वधस्थल पर ले गये। वहाँ मुष्टिक आदि मल्ल उन्हे मारने के लिए तैयार खड़े थे।

× × ×

राजगृही नगरी मे वसुदेव की मृत्यु सामने खडी थी और गध-समृद्ध नगर मे उनके विवाह की वातचीत चल रही थी। राजा गधारपिगल को एक विद्या वता रही थी कि 'उसकी पुत्री प्रभावती का विवाह वसुदेव से होगा।' पुन राजा ने पूछा—'इस समय वसुदेव कहाँ है' तो विद्या ने उत्तर दिया—'राजगृही नगरी के वधस्थल पर खडा है।'

राजा गधारपिंगल ने तुरत भगीरथी नाम की धात्री भेजी। आनन-फानन मे धात्री वसुदेव के पास पहुँची। उसने अपने विद्यावल से मुष्टिक आदि को सभ्रमित किया और वसुदेव को ले उडी। जिन्दगी और मौत मे कितना कम फासला होता है।

वसुदेव प्रभावती के साथ विवाह करके सुख से रहने लगे।

उन्होंने अन्य विद्याधर कन्याओ से भी विवाह किया और सुको-शला का परिणय करके उसके महल मे निर्विघ्न रूप से सुख-भोग मे लीन हो गये।

—त्रिषष्टि० ८।२

—वसुदेव हिंडी, प्रभावती लभक

□

१४ कुवेर से भेंट

अशोक वृक्ष के पल्लव जैसे रग की नयनाभिराम रक्तवर्णी चोच, चरण और लोचन वाला एक राजहस राजकुमारी कनकवती के महल पर आ वैठा। गन्े मे सुन्दर स्वर्ण घुघुरुओ की माला तथा उसकी मद-मद चाल ने राजकुमारी का मन मोह लिया।

राजकुमारी कनकवती पेढालपुर नगर के राजा हरिश्चन्द्र और रानी लक्ष्मीवती की अनुपम सुन्दरी पुत्री थी। जिस समय वह उत्पन्न हुई, पूर्व जन्म के स्नेह के कारण धनपति कुवेर ने कनक (स्वर्ण) की वर्षा की, इसी कारण उसका नाम कनकवती रखा गया। कनकवती जितनी रूपवती थी उतनी ही गुणवती भी। स्त्रियोचित चौसठ कलाओ मे वह निष्णात थी।

उसकी दृष्टि राजहस के कठ पर जाकर अटक गई। विचार करने लगी—'यह राजहस अवश्य ही किसी पुण्यवान पुरुष का पालतू है; अन्यथा गले मे स्वर्ण माला कहाँ से आती ?'

राजहस तब तक गौख मे उतर आया और धीरे-धीरे इस प्रकार चहलकदमी करने लगा मानो नृत्य ही कर रहा हो। राजकुमारी का मन उससे विनोद करने को मचल उठा। हसगामिनी कनकवती उस हस को पकडने के लिए धीरे-धीरे अचक-पचक कदम रखती हुई वढी— कही आवाज न हो जाय और हस उड जाय। हस भी कुछ कम नही था वह भी कनकवती की गतिविधियो पर नजर रखे था। ज्यो ही राजपुत्री ने उसे पकडने के लिए हाथ वढाया त्यो ही फुदक कर आगे वढ गया।

राजकुमारी उसे पकडने का प्रयास करती और वह फुदक कर आगे वढ जाता, कभी पीछे लौट आता तो कभी वाये दाये जा वैठता। कुछ देर तक विनोद करने के वाद हस राजकुमारी के हाथो मे आ गया।

हस को पकड कर राजपुत्री प्रसन्न हुई और उसकी सुकोमल चिकनी देह पर हाथ फेरने लगी।

राजकुमारी इस सुख को स्थायी करने के लिए लालायित हुई। उसने अपनी सखी से कहा—

—एक सोने का पिंजरा लाओ। क्योकि विना पिजरे के यह उड जायेगा।

सखी पिंजरा लेने चली गई। अव दो ही रह गये—राजहस और राजकुमारी। मानवी भाषा मे राजहस वोला—

—पिजरे मे वन्द क्यो करती हो, राज कुमारी! मुझे छोड दो। मैं तुम्हे प्रिय समाचार सुनाऊँगा।

पक्षी को मनुष्य की भाषा वोलते देखकर कनकवती विस्मित रह गई। स्नेहपूर्वक मधुर वचन कहने लगी—

—अरे हस! तू तो वडा रहस्यमयी निकला। वता वह प्रिय समाचार क्या है?

—प्रिय समाचार प्रिय का समाचार होता है, युवती के लिए। वही मैं लाया हूँ।

कनकवती के मन मे गुदगुदी होने लगी। मुख लज्जा से लाल हो गया पर ऊपरी मन से वोली—धत्!

राजहस कहने लगा—

—सुन्दरी! तुम्हारा स्वयवर होने वाला है। इसीलिए मैं यहाँ आया हूँ कि जैसे तुम्हारी सुन्दरता अनुपम है और गुण अप्रतिम वैसे ही यदुवशी वसुदेव कुमार का रूप और पराक्रम अद्वितीय है। तुम दोनो की जोडी ही उचित रहेगी। तुम उसी के गले मे वरमाला डालना।

यह चन्द्रातप विधाधर है। वडे प्रेम से वसुदेव ने उसका आलिगन किया और पूछने लगे—

—मित्र ! अर्ध रात्रि को कैसे कष्ट किया यहाँ आने का ?

चन्द्रातप कहने लगा—

— समय कम था, इसीलिए आपके विश्राम ने विघ्न डाला।

—क्या ?

—हाँ, आज कृष्ण पक्ष की दशमी है और शुक्ल-पक्ष की पचमी को उसका स्वयवर होने वाला है। आप अवश्य चलिए वह आपको चाहती है।

वसुदेव प्रसन्न हो गये। पूछा—

—तुमने यह कौतुक किस प्रकार किया ?

विद्याधर चन्द्रातप ने वताया—

—हे यदुत्तम! आपको कनकवती का रूप वताने के वाद मै पेढालपुर पहुँचा। विद्या-वल से आपका एक चित्र पट वनाया और राजपुत्री के अक मे डाल दिया। आपके चन्द्रमुख को वह चकोरी की भाँति देखने और आह भरने लगी। उसने मुझसे कहा—'इस सुन्दर युवक को स्वयवर मे अवश्य लाना।' इसलिए आपका वहाँ पहुँचना जरूरी है।

हँस कर वसुदेव वोले—

—तुमने अपना कौशल दिखा ही दिया। ठीक है, कल सुवह मै स्वजनो की आज्ञा लेकर प्रमदवन आ जाऊँगा। तुम मुझे तैयार मिलना।

विद्यावर चन्द्रातप यह सुनकर अतर्धान हो गया और वसुदेव अपनी शैय्या पर आ सोए।

दूसरे दिन स्वजनो से आज्ञा लेकर वसुदेव और चन्द्रातप पेढालपुर की ओर चल दिये।

पेढालपुर मे राजा हरिश्चन्द्र ने वसुदेव को आदरपूर्वक लक्ष्मी-रमण उद्यान मे निर्मित भवन मे ठहरा दिया।

वसुदेव ने लक्ष्मीरमण उद्यान के नामकरण के सम्वन्ध मे लोक

चर्चा सुनी कि 'एक वार इसी उद्यान मे तीर्थंकर भगवान नमिनाथ का समवशरण लगा था। उस समय देवी लक्ष्मी ने उनके समक्ष वहुत ही मनोरम नृत्य रास किया। तभी से इस उद्यान का नाम लक्ष्मीरमण पड गया है।

'प्रभु की समवसरण भूमि मे ठहरा हूँ' यह जान कर उन्हे अपार हर्ष हुआ। वे मन ही मन प्रभु वन्दना करने लगे। उसी समय वहाँ एक विमान उतरा। विमान दिव्य-मणियो से विभूपित था। मणियो की चमक आँखो को चुँधिया रही थी। उसमे से एक प्रमुख देवता अपने अनुचरो सहित उतरा। वसुदेव ने उसमे से उतरे एक देव से पूछा—

—यह किसका विमान है ?

—धनद कुवेर का।

—किस अभिप्राय से पृथ्वी पर आये है ?

—अर्हन्त भगवान की वन्दना करने के वाद कनकवती के स्वयवर मे सम्मिलित होने के लिए।

कुमार वसुदेव सोचने लगे—'धन्य है जिनेन्द्र भगवान् कि देव भी इनकी वन्दना करते है। और इस कनकवती का भाग्य क्या कहिए कि देव लोग भी इसके स्वयवर मे सम्मिलित होने के लिए आए है।'

वे इन्ही विचारो मे मग्न थे कि कुबेर भगवान की वन्दना करके बाहर निकला। वहाँ उसने वसुदेव को देखा। वह सोचने लगा—'यह पुरुप देवोत्तम आकृति वाला है। मनुष्यो और विद्याधरो मे तो ऐसा रूप मिलता नही।'

विमान मे वै-ठेबैठे उसने कुछ निर्णय किया और अगुली से वसुदेव को वुलाने लगा।

'मैं मनुष्य हूँ और यह परम आर्हत तथा महर्द्धिक देव है' मन मे विचारते हुए वसुदेव उत्सुकतापूर्वक उसके पास जा पहुँचे। कुवेर ने मधुर वचनो से उनका स्वागत किया। वसुदेव ने विनीत स्वर मे पूछा—

—आज्ञा दीजिए। मै आपका क्या काम करूँ ?

—भद्र ! मेरे दूत बनना स्वीकार करो।

—कहाँ जाना होगा ?

—राजा हरिश्चन्द्र की पुत्री कनकवती के महल मे।

वसुदेव सोचने लगे। तभी कुवेर ने कहा—

—किस दुविधा मे पड़े हो ?

—मैं सोच रहा हूँ कि उसके महल तक कैसे पहुँच सकूँगा। द्वारपाल ही रोक देंगे।

—मैं तुम्हे अदृश्य होने की विद्या तथा अस्खलित वेग की शक्ति देता हूँ।

—तव ठीक है। क्या कहना होगा ?

—तुम कहना कि देवराज इन्द्र का उत्तर दिशा का लोकपाल धनद कुवेर तेरे प्रणय की इच्छा करता है। तू मानुषी तो है ही, उससे विवाह करके देवी बन।

कुवेर के इन शब्दो से वसुदेव के हृदय को धक्का सा लगा। किन्तु उन्होने अपने मन के भाव मुख पर नही आने दिए। प्रगट मे वोले—'जैसी आपकी आज्ञा।'

कुमार वसुदेव अपने भवन मे गये और राजसी वस्त्र उतार कर साधारण वस्त्र धारण करके लौटे। कुवेर ने पूछा—

—भद्र ! यह क्या ? तुम इस साधारण वेश में ?

—दूत के लिए यही वेश उचित है।

—सभी जगह आडवर का सत्कार होता है।

—किन्तु दूत के लिए उसके वचन ही आभूषण हैं।

वसुदेव के इस उत्तर से कुवेर प्रसन्न हो गया। उसने आशीर्वचन कहे—तुम्हारा कल्याण हो।

कुवेर का अभिवादन करके वसुदेव कनकवती के महल की ओर चल दिये।

—त्रिषष्टि ८/३

❀

१५ वसुदेव-कनकवती विवाह

अस्खलित गति वाले वसुदेव अदृश्य रूप से राजमहल के प्रथम कक्ष मे पहुँचे। वहाँ उन्हे वहुत सी स्त्रियो का समूह दिखाई दिया। उसे उल्लघन करते दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवे, छठे और सातवे कक्ष मे जा पहुँचे। उनकी नजरे कनकवती को ढूँढ रही थी किन्तु वह कही भी दिखाई न दी। वे एक स्थान पर खडे सोचने लगे—'क्या करूँ ? किस तरह कनकवती का पता लगाऊँ ? किसी से पूछता हूँ तो मेरा रहस्य खुल जायगा।'

वसुदेव यही सोच रहे थे कि उत्तम वेश वाली एक दासी पीछे के द्वार से आई। उसे देखते ही वहाँ उपस्थित अन्य स्त्रियो ने पूछा—

—राजकुमारी कनकवती कहाँ है और क्या कर रही है ?

—अभी तो प्रमदवन के प्रासाद (महल) मे अकेली बैठी है।—नवागन्तुक दासी ने उत्तर दिया।

राजकुमारी का पता मिल चुका था वसुदेव को। तुरन्त वहाँ से चले और प्रमदवन जा पहुँचे। प्रमदवन मे सात-मजिला प्रासाद था। एक-एक करके सातो मजिल पार हुई तो एक सिहासन पर बैठी राजकुमारी दिखाई दी। हाथ मे उन्ही का चित्रपट था। वह बार-बार चित्र देखती और लम्बी-लम्बी साँसे भरती।

कुमार वसुदेव उसके सम्मुख जाकर प्रगट हो गये। कनकवती की दृष्टि सामने खडे पुरुष की ओर उठी। वह सभ्रमित होकर कभी

चित्र को देखती और कभी सामने खड़े वसुदेव को। एकाएक वह प्रसन्न होकर उठ खडी हुई और अजलि बॉध कर बोली—

—मेरे पुण्य योग से तुम यहाँ आ गये। मै तुम्हारी दासी हूँ।

यह कहकर कनकवती उन्हे नमन करने को तत्पर हुई। बीच मे ही उसे रोक कर वसुदेव बोले—

—स्वामिनी दास को नमन करे, यह अनुचित है।

—कौन दास ? कौन स्वामिनी ? मुझे स्वामिनी कहकर लज्जित न करिये। मैं तो आपकी दासी हूँ।

—पहले मेरा परिचय तो जान लीजिए।

—जानती हूँ आप यदुवशी वसुदेव कुमार है। इससे ज्यादा और क्या जानना शेष रह जाता है ?

—परिचय तो मेरा यही है किन्तु इस समय मैं तुम्हारे पास कुवेर का दूत बनकर आया हूँ।

—कुवेर का दूत ?—आश्चर्यचकित होकर कनकवती ने पूछा—क्या सदेश है उनका ?

वसुदेव कहने लगे—

—देवराज इन्द्र का उत्तर दिशा का स्वामी (लोकपाल) धनद कुवेर तुम्हारा परिणय करना चाहता है। मैं उसका दूत हूँ। मेरी प्रार्थना है कि तुम उसकी पटरानी बनना स्वीकार करो।

राजकुमारी चिन्ता मे पड गई। एक ओर कुवेर की याचना और दूसरी ओर उसके हृदय मे बसे वसुदेव कुमार। किन्तु उसने तुरन्त निर्णय लिया और बोली—

—मैं कुवेर को प्रणाम करती हूँ किन्तु मानवी का सबध देवो से नही हो सकता। वे महर्द्धिक सामानिक देव है और मै साधारण स्त्री।

—तुमने कुवेर की इच्छा उल्लघन किया तो मुसीबत मे पड जाओगी।

—नही कुवेर परम आर्हत है। किसी पूर्वजन्म के सम्बन्ध के कारण वे मुझ पर अनुरक्त हुए है किन्तु अर्हन्त प्रभु के इस वचन के

अनुसार कि 'औदारिक शरीर की दुर्गन्ध सामानिक देव नही सह पाते' वे मुझसे विवाह नही कर सकते ।

—वे तो इसी अभिप्राय से यहाँ आये है ।

—आप उन्हे अरिहन्त प्रभु के वचनो का स्मरण कराके मेरा प्रणाम कह देना और यह भी वता देना कि कनकवती मन-वचन-काय से वसुदेव की ही पत्नी है ।

वसुदेव ने पुन समझाया—

—कनकवती ! भली भाँति सोच लो ! देवो की इच्छा अनुल्लघ-नीय होती है ।

—अनुल्लघनीय तो अर्हन्त प्रभु की वाणी ही है । मानवी (मनुष्य स्त्री) के लिए देव पूज्य और आदर योग्य तो हो सकते है किन्तु पति वनने योग्य नही, उसका पति तो मनुष्य ही हो सकता है । —कनकवती ने समझाते हुए आगे कहा—

—आपका दूत कार्य समाप्त हुआ ।

राजकुमारी के दृढ उत्तर को सुनकर वसुदेव अदृश्य होकर वहाँ से चल दिये । कुवेर के पास आकर पूरा वृतान्त सुनाने को हुए तो कुबेर ने उन्हे रोक कर कहा—

—मुझे सव मालूम है, कुछ कहने की आवश्यकता नही ।

वसुदेव कुमार चुप हो गये । कुबेर ने अपने अन्य अनुचरो के समक्ष उनकी प्रशसा की

—यह पुरुप निर्मल चरित्र वाला है ।

प्रसन्न होकर कुबेर ने वसुदेव को सुरेन्द्रप्रिय नाम का दिव्य गध वाला देवदूष्य वस्त्र, सूरप्रभ नाम का मुकुट, जलगर्भ नाम के दो कु डल, शशिमयूख नाम के दो केयूर (वाजू बन्ध), अर्घ शारदा नाम की नक्षत्रमाला,[1] सुदर्शन नाम के विचित्र (रुचिर) मणि-जटित

---

१ यह सत्ताइस मोतियो से वना हार होता है । आकाशस्थ नक्षत्रमाला मे भी सत्ताइस नक्षत्र है । इसी कारण नक्षत्रमाला मे सत्ताइस मोती होते है ।

दो कगन, स्मरदारुण नाम का कटिसूत्र,[१] दिव्य पुष्पमाला और विलेपन दिए।

इन दिव्य वस्त्रालकारो से विभूषित होकर वसुदेव दूसरे कुवेर ही लगने लगे। उपस्थित सभी देव वसुदेव की प्रशसा करने लगे।

कुबेर का आगमन ऐसी साधारण घटना नही थी कि राजा हरिश्चन्द्र को ज्ञात न होती। हरिश्चन्द्र राजा ने भी कुबेर को अजलि वद्ध होकर प्रणाम किया और वोला—

—देव! आपके आगमन से मेरा नगर पवित्र हो गया। मेरे और मेरी पुत्री के अहोभाग्य कि आप उसके स्वयवर मे पधारे। आप स्वयवर अवश्य देखिए।

—मैं इसी अभिप्राय से आया हूँ। —कुबेर ने राजा को आश्वासन दिया।

आश्वस्त होकर राजा हरिश्चन्द्र ने शीघ्र ही स्वयवर की व्यवस्था कराई।

स्वयवर मडप सज गया। अनेक देशो के राजा वहाँ उत्तम वेश-भूषा मे आ विराजे। तभी कुबेर ने अपने दिव्य विमान मे वैठ कर प्रवेश किया। सभी ने उठ कर उसका स्वागत किया। कुबेर अपने लिए निर्मित एक उच्चासन पर वैठ गया। अपने पास ही उसने वसुदेव कुमार को एक दूसरे सिहासन पर विठा लिया। अपनी नामाकित अर्जुन जाति के स्वर्ण की एक मुद्रा वसुदेव को देकर वोला—

—भद्र! इसे पहन लो।

वसुदेव ने कनिष्ठिका[२] मे वह मुद्रा धारण कर ली। मुद्रिका के प्रभाव से उनका रूप कुवेर का सा हो गया। अव स्वयवर मडप मे दो कुवेर दिखाई देने लगे। उपस्थित लोग कहने लगे—

—अहो! धनद कुवेर अपने दो रूपो मे उपस्थित है।

---

१ कटिसूत्र—कमर मे पहने जाने वाला पुरुषो का आभूषण।

२ कनिष्ठिका हाथ की चौथी यानी सव से छोटी अगुली को कहा जाता है।

उसी समय रूप और गुण की खानि राजकुमारी कनकवती ने हाथ मे वरमाला लेकर मद-मद कदमो से मडप मे प्रवेश किया। सभी राजा सावधान हो गये। कनकवती एक-एक करके राजाओ को देखती जा रही थी। जिसके सामने वह आती वह फूल जाता और जब वह आगे बढ जाती तो पिचक जाता मानो गुब्बारे की हवा निकाल दी गई हो। कनकवती सपूर्ण स्वयवर मडप मे घूम गई किन्तु उसे मन का मीत न दिखाई दिया। सायकाल की कमलिनी के समान उसका मुख म्लान हो गया। वह खडी रह गई।

जब किसी राजा के गले मे वरमाला नही पडी तो वे सोचने लगे—'क्या हमारे रूप, वेश, चेष्टा आदि मे कोई कमी है ?'

राजकुमारी को किकर्तव्यविमूढ देखकर पास खडी सखी ने कान मे कहा—

—देर क्यो कर रही हो ? किसी भी पुरुष के गले मे माला डाल दो।

— कैसे डाल दूँ किसी के भी कठ मे माला ? जिसको हृदय मे बसाया वह तो दिखाई देता ही नही।

—एक बार पुन ध्यान से देखो। —सखी ने उत्साहित किया।

कनकवती की दृष्टि एक-एक राजा पर घूमने लगी। जब कुबेर पर दृष्टि पडी तो देखा कि वे मुस्करा रहे है। इससे भी अधिक आश्चर्य उसे तब हुआ जब उसे दो कुबेर दिखाई पडे। उसकी अन्तरात्मा से आवाज उठी—'यह कुबेर की ही लीला है। इन्ही ने वसुदेव का रूप परिवर्तित कर दिया है।' तुरन्त कुबेर को जाकर प्रणाम किया और कातर स्वर मे बोली—

—हे देव ! मुझसे ऐसा मजाक मत करो। मेरे पति को प्रकट कर दो।

अपनी इसी भव की पत्नी[1] की कातरता देख कर कुबेर वसुदेव

---

१ कनकवती अपने इस जन्म मे पहले इसी कुबेर की पत्नी थी। वह स्वर्ग से च्युत होकर कनकवती के रूप मे उत्पन्न हुई थी। इसी कारण वह कुबेर के लिए उसके इसी जन्म की पत्नी थी।

से बोले—

—भद्र ! वह अर्जुन जाति के स्वर्ण[1] से निर्मित मेरी मुद्रिका उतार दो।

वसुदेव ने मुद्रिका उतारी तो चमत्कार सा हुआ। उनका अपना स्वरूप प्रगट हो गया। प्रसन्न होकर कनकवती ने वरमाला उनके कंठ मे डाल दी।

उसी समय कुवेर की आज्ञा से आकाश मे देव-दुंदुभी बजने लगी। अप्सराएँ नृत्य और गायन करने लगी। आकाश वाणी हुई—

—अहो ! इस राजा हरिश्चन्द्र की पुत्री कनकवती धन्य है कि इसने लोक-प्रधान पुरुष का वरण किया।

कुवेर की आज्ञा से देवियो ने वसुधारा बरसाई।

वसुदेव और कनकवती के विवाह की तैयारियाँ होने लगी। स्वयंवर मे उपस्थित सभी राजा रोक लिए गये। सभी विवाह कार्य मे उत्साहपूर्वक भाग लेने लगे।

जहाँ धनद कुवेर स्वयं उपस्थित हो वहाँ किस वस्तु की कमी हो सकती है ?

धूमधाम से विवाह सम्पन्न हुआ।

स्वयंवर मे उपस्थित सभी राजा विदा हो गये किन्तु राजा हरिश्चन्द्र ने आग्रहपूर्वक कुवेर रोक लिया। वे भी कनकवती के प्रति मोह होने के कारण रुक गये।

मोह का बंधन[2] अदृश्य होते हुए भी सर्वाधिक शक्तिशाली होता है।

—त्रिषष्टि ८/३

---

१ अर्जुन जाति का स्वर्ण संभवत किसी अन्य स्थान पर प्राप्त होने वाला विशेष प्रकार का स्वर्ण है।

२ कनकवती और कुवेर के पिछले जन्मो के संबंध तथा मोह के बन्धन का पूरा वृतान्त नल-दमयन्ती उपाख्यान मे है।

१६ लौट के वसुदेव घर को आए

इच्छा पूरी होने मे व्यवधान शत्रुता का जनक होता है। सूर्पक[1] भी वसुदेव से शत्रुता का भाव रखता था। एक रात्रि को वह कनकवती के महल से सोते हुए वसुदेव को विद्या बल से ले जाने लगा। मार्ग मे वसुदेव की नीद टूटी तो उन्होने उस पर मुष्टिका प्रहार किया। विह्वल होकर सूर्पक ने उन्हे छोड दिया और वे गोदावरी नदी मे जा गिरे। नदी पार करके कोल्लालपुर पहुँचे और वहाँ के राजा पद्मरथ की पुत्री पद्मश्री के साथ विवाह कर लिया।

वहाँ से उनका हरण नीलकठ[2] विद्याधर ने किया किन्तु वह भी मार्ग मे छोडकर भाग गया। वसुदेव चपापुरी के समीप सरोवर मे गिरे। नगर मे आये तो मत्री ने अपनी कन्या उन्हे दे दी।

सूर्पक ने वसुदेव का पीछा अब भी न छोडा। उसने उनका पुन. अपहरण कर लिया। फिर मुक्के की चोट से विह्वल हुआ और छोड कर भागा। वसुदेव गगा नदी मे गिर पडे। नदी को पार करके साधारण पथिको के समान एक पल्ली मे पहुँचे। पल्लीपति ने अपनी

---

१. सूर्पक दिवस्तिलक नगर के विद्याधर राजा त्रिशिखर का पुत्र था। वह विद्युद्वेग की पुत्री मदनवेगा से विवाह करना चाहता था किन्तु मदनवेगा का विवाह वसुदेव से हो गया। इसी कारण वह वसुदेव से शत्रुता रखता था।

२ नीलकठ विद्याधर की शत्रुता का कारण सिंहदष्ट्र की पुत्री नीलयशा थी। उसका भी विवाह नीलकठ से न होकर वसुदेव से हो गया था।

जरा नाम की पुत्री के साथ उनका विवाह कर दिया। जरा से वसुदेव के जराकुमार नाम का पुत्र हुआ।

पल्ली से वसुदेव चले तो अवति सुन्दरी, सूरसेना, नरद्वेषी तथा अन्य अनेक राजकन्याओ के साथ विवाह सम्बन्ध स्थापित किये।

× × ×

एक बार वसुदेव कही चले जा रहे थे। मार्ग मे किसी देवी ने आकर कहा—

—हे वसुदेव ! मै तुम्हे रुधिर राजा की पुत्री रोहिणी के स्वयवर मे पहुँचाए देता हूँ क्योकि तुम्हे वहाँ जाकर अन्य वादको के साथ ढोल (पटह) बजाना है।

वसुदेव कुछ कह पाते इससे पहले ही देव उन्हे स्वयवर मडप मे ले पहुँचा और उनके गले मे ढोल डाल दिया। अब वसुदेव को गले मे पडा ढोल बजाना ही पडा। अन्य वादको मे वे भी सम्मिलित हो गए।

स्वयवर मडप अरिष्टपुर मे लगा हुआ था। वहाँ जरासध आदि अनेक राजा विराजमान थे। समुद्रविजय भी अपने भाइयो सहित इस स्वयवर मे सम्मिलित हुए थे।

साक्षात् चन्द्रप्रिया रोहिणी के समान सुन्दर रूप वाली रुधिर पुत्री रोहिणीकुमारी ने सखियो के साथ स्वयवर मडप मे प्रवेश किया। उसके हाथो मे वरमाला आकाशस्थ नक्षत्रमाला के समान सुशोभित हो रही थी।

राजकुमारी की रूप-राशि से प्रभावित होकर सभी राजा सँभल कर बैठ गए। अनेक प्रकार की चेष्टाओ द्वारा वे रोहिणी को आकर्षित करने लगे। रोहिणी उन पर दृष्टिपात करती और आगे चल देती। उसे कोई राजा जँचा ही नही।

वसुदेव का वेश बदला हुआ था। उनके ढोल बजाने का ढग कुछ अलग ही था। विशिष्ट ताल-लय मे कुछ शब्द निकल रहे थे। रोहिणी के कानो वे शब्द पडे—'हे मृगनयनी ! यहाँ आओ। हरिणी की भाँति इधर-उधर मत भ्रमो। मै तुम्हारे योग्य पति हूँ।'

ये शब्द सुनकर रोहिणी के कान खड़े हुए। उसने पुन. ध्यान देकर सुना। यही शब्द थे। कोई भ्रान्ति नहीं। इसके कदम ढोल बजाने वाले वादक की ओर उठ गए। क्षण भर का आँखे मिलीं और वरमाला ढोल-वादक के कठ मे सुशोभित होने लगी।

'अनेक क्षत्रिय राजाओ के समक्ष एक वादक के गले मे वरमाला'! स्तभित रह गए सभी उपस्थित जन। कुछ को क्रोध आया तो किसी-किसी को परिहास भी सूझा। कोशला के राजा दन्तवक्र से नही रहा गया वे कह उठे – खूब शिक्षा दी राजा रुधिर आपने कन्या को! क्या उत्तम वर चुना है!

किसी दूसरे की आवाज आई—पति ढोल बजाया करेगा और राजकुमारी सुन-सुन कर प्रसन्न होती रहेगी।

—ऐसा मनोरजन करने वाला दूसरा कहाँ मिलेगा? —तीसरी दिशा से आवाज उठी।

—अरे, पुत्री ही क्यो पिता भी वाद्य-सगीत का आनन्द लिया करेंगे? —कुछ राजा बोल पडे।

—हाँ भाई! हम लोगो मे ऐसी योग्यता कहाँ? —किसी ने फब्ती कस दी।

—ऐसी योग्यता न सही किन्तु इस वादक मे रोहिणी को छीन लेने की योग्यता तो है ही। —दन्तवक्र ने टेढे दाँत करके कहा।

दन्तवक्र के इन शब्दो से परिहास का वातावरण गभीरता मे बदल गया। हँसी के फव्वारे बन्द हो गए। नीरवता छा गई। राजा रुधिर का गभीर स्वर गूँजा—

– सम्माननीय राजाओ! स्वयवर का नियम है कि जिसके गले मे वरमाला पड गई वही कन्या का पति हो गया, चाहे वह कोई भी क्यो न हो? वर के चयन मे कन्या पूर्ण स्वतत्र होती है। आप लोग रोष न करे।

—तो क्या अपने अपमान पर खुशियाँ मनाएँ। इस ढोलची के गले का ढोल अपने गले मे डाल कर गलियो मे इस गाथा को गाते फिरे कि

हम क्षत्रियो के बीच से एक ढोल वादक राजकन्या रोहिणी को ले गया और हम लोग देखते ही रह गए । —राजाओ ने भ्रकुटी टेढी करके उत्तर दिया ।

न्यायवेत्ता विदुर ने कुपित राजाओ को शान्त करने की इच्छा से कहा—

—राजाओ ! आप लोगो का कथन उचित है । किन्तु इस पुरुष का कुल-शील तो जान ही लेना चाहिए ।

—अपना कुल-शील बताने के लिए मेरी भी भुजाएँ फडक रही हैं । कोई आगे तो बढे मेरी पत्नी रोहिणी की तरफ—चीर कर दो कर दूँगा । —वादक के वेश मे छिपे हुए वसुदेव बोल उठे ।

वसुदेव के इन शब्दो से आग मे घी पड गया । विदुर की शान्ति स्थापित करने की चेष्टा धरी की धरी रह गई । क्षत्रियो को ऐसे शब्द कहाँ सहन हो सकते थे और वह भी एक ढोलची के मुख से । भरतार्द्ध के स्वामी प्रतिवासुदेव का चेहरा क्रोध से तमतमा गया । उसके कुपित मुख से विषबाण निकले—

—राजाओ ! पहले तो रुधिर राजा ने हमारा अपमान कराया और दूसरे वरमाला कठ मे पडने से यह ढोलची भी ढोल के समान ही वजने लगा है। इसे राजकन्या प्राप्त होने से सतोष नही हुआ वरन् घमड वढ गया । इसका दिमाग सातवे आसमान पर चढ गया है । राजा रुधिर का रुधिर वहा दो और इस वादक के गले मे पडी वरमाला को फॉसी का फदा बना दो ।

जरासध के शब्दो ने चाबुक का सा काम किया । सभी राजा शस्त्र निकाल कर वादक पर झपटने को तत्पर हुए ।

वादक ने मुस्करा कर कहा—

—ऐसे नही ।

—तो कैसे ? राजा उसकी व्यगपूर्ण मुस्कान से चकित थे ।

—तुम सबसे अकेले युद्ध करने मे मजा नही आएगा । सभी अपनी सेना और ले आओ तो कुछ देर तो युद्ध चले । —वसुदेव के शब्दो मे तीखा व्यग था ।

व्यग का उत्तर दिया जरासध ने—

—इसके गर्व को चूर्ण करना ही होगा। सभी राजा अपनी-अपनी सेना सजा कर मैदान मे आ डटे।

× × ×

जरासध की प्रेरणा से समुद्रविजय आदि सभी राजाओ की सेना मैदान मे आ जमी। राजा रुधिर भी अपनी सेना लेकर मुकाबले मे आ खडा हुआ।

दधिमुख विद्याधर[1] सारथी सहित रथ ले आया और उस पर वसुदेव सवार हो गए। वसुदेव ने भी वेगवती की माता अगारवती द्वारा दिए गए धनुप आदि अस्त्रो को धारण कर लिया।[2]

जरासध का कटक और राजाओ के समूह को सबोधित करके वसुदेव ने कहा—

—हाँ अव कुछ समय तक तो तुम लोग टिक ही सकोगे।

वसुदेव की इस वात का उत्तर दिया जरासध की सेना ने हल्ला वोल कर। पहले आक्रमण मे ही राजा रुधिर की सेना भग हो गई। विजय से फूल कर राजा शत्रुजय वसुदेव की ओर मुडा। विद्याधर दधिमुख ने स्वय सारथी का भार सँभाला और वसुदेव का रथ शत्रु जय के सामने ला खडा किया। शत्रु जय ने गर्वित होकर शस्त्र प्रहार किया

---

१ दधिमुख विद्याधर राजा विद्युद्वेग का पुत्र और मदनवेगा (वसुदेव की पत्नी) का भाई था। वसुदेव ने विद्याधर विद्युद्वेग को दिवस्तिलक नगर के राजा त्रिशिखर को मार कर उसके वन्दीगृह से मुक्त कराया था। साले-बहनोई के सम्वन्ध और कृतज्ञता के कारण दधिमुख वसुदेव के लिए रथ लेकर आया।

२ वेगवती (वसुदेव की पत्नी) की माता ने नीलकठ, अगारक, सूर्पक आदि विद्याधरो मे युद्ध करने के लिए एक दिव्य धनुप और दो दिव्य तरकस दिये थे।

किन्तु उसका वार खाली गया और वसुदेव का जो पहला वार पडा तो पराजित हो गया बेचारा। दन्तवक्र सामने आया तो वसुदेव ने उसका मुँह फेर दिया और वह पीठ दिखा कर भागा। शल्य-राजा के फेफडे फूल गए। वह विकल होकर लम्बी-लम्बी साँसे लेने लगा। हाथ-पैर ऐसे काँपने लगे कि शस्त्र ही हाथ से गिर पडे और फिर उठाने की उसकी हिम्मत ही न हुई।

इसी प्रकार सभी राजा दुर्द्धर्ष वसुदेव की विकट मार से घवडा कर वगले झाँकने लगे।

अपने कटक का पराभव और प्रतिद्वन्द्वी की विलक्षण शक्ति देख कर जरासध समुद्रविजय से वोला—

—यह कोई साधारण वादक नही है। इसने तो अकेले ही सभी राजाओ का पराभव कर दिया। अव आप ही युद्ध मे उतरो और इसका काम तमाम कर दो। इसको मारते ही राजकन्या रोहिणी तुम्हारी हो जायगी।

समुद्रविजय ने उत्तर दिया—

—राजन्! पर-स्त्री मुझे नही कलपती। किन्तु आपकी इच्छा मानकर मैं इस वलवान पुरुप से युद्ध करूँगा।

यह कहकर समुद्रविजय युद्ध मे उतर पडे।

दोनो भाइयो मे अनेक प्रकार के अस्त्रो से युद्ध होने लगा। वहुत देर तक युद्ध होने पर भी जय-पराजय का निर्णय न हो पाया। समुद्र विजय सोचने लगे—'यह कैसा वीर है जो अभी तक वश मे नही आया? क्या मैं इसे न जीत सकूँगा।'

भाई के मुख पर आई चिन्ता की लकीरो को वसुदेव ने पढ लिया। वे भ्रातृप्रेम से व्याकुल हो गए। अग्रज का पराभव वह कर नही सकते थे। अत उन्होने एक वाण छोडा जिस पर लिखा हुआ था—'छद्म (कपट वेश वदल कर) रूप मे निकला हुआ आपका सवसे छोटा भाई वसुदेव आपको प्रणाम करता है।'

वाण समुद्रविजय के चरणो मे आ गिरा। उन्होने वाण पर लिखे अक्षरो को पढा तो हर्ष विह्वल हो गए। अस्त्र-शस्त्र वही छोडे और

'वत्स' 'वत्स' कहते हुए वसुदेव की ओर दौड पडे मानो गाय चिरकाल से बिछडे अपने वत्स (बछडे) से ही मिलने जा रही हो। वसुदेव ने भी अस्त्र-शस्त्रो के बधन तोडे और बछडे के समान ही अग्रज के चरणो मे जा गिरे।

प्रेम विह्वल अग्रज ने अनुज को उठाया और अक से लगा लिया। समुद्रविजय की भुजाओ का दृढ बधन अनुज की पीठ पर कस गया।

बहुत देर तक दोनो भाई लिपटे रहे। दोनो की आँखो से प्रेमाश्रु बह रहे थे।

इस दृश्य को देखकर जरासध वहाँ आया और वसुदेव को देखकर हर्षित हुआ। उसका कोप शात हो गया।

युद्ध बन्द हो गया। प्रेम का वातावरण छा गया। राजा रुधिर को दशवे दशार्ह वसुदेव दामाद के रूप मे मिले। उसकी बाछे खिल गई।

विवाहोत्सव सपन्न होने पर जरासध तथा अन्य राजा अपने-अपने स्थानो को चले गए किन्तु यादवो को कस सहित राजा रुधिर ने आग्रहपूर्वक वही रोक लिया। वे भी वहाँ एक वर्ष के लिए रुक गए।

एकान्त मे वसुदेव ने रोहिणी से पूछा—

—प्रिये! इतने बडे-बडे राजाओ को छोड कर मुझ ढोल बजाने वाले को ही क्यो चुना?

रोहिणी ने पहले तो मुस्कान बिखेरी और फिर उत्तर दिया—

—आप कितने ही छिपो, मै पहचान गई थी।

—क्या?—चकित हुए वसुदेव।

—हाँ, मैं पहिचान गई थी कि आप दशवे दशार्ह और मेरे पति है।

—कैसे?—वसुदेव की उत्सुकता बढी।

—विद्या से।—रोहिणी ने उनकी उत्सुकता और बढाई।

—बताओ, हमे भी तो मालूम हो कौन सी विद्या है तुम्हारे पास।—वसुदेव की उत्सुकता आग्रह मे बदल गई।

रोहिणी ने पति को मुस्करा कर देखा और वोली—

—मैं हमेशा प्रज्ञप्ति विद्या को पूजती हूँ। एक वार उसने मुझे वताया—'दशवाँ दशार्ह तुम्हारा पति है। वह तुम्हारे स्वयवर मे ढोल वादक के वेश मे आएगा।' वस मैने आपको पहचान गई और आपका वरण कर लिया।

वसुदेव की जिज्ञासा शात हो गई।

× × ×

एक वार समुद्रविजय आदि सभी राजसभा मे वैठे थे। उसी समय एक अधेड स्त्री आशीप देती हुई आकाश से उतरी। उपस्थित जन उसकी ओर देखने लगे। स्त्री वसुदेव से वोली—

—मैं वालचन्द्रा की माता धनवती हूँ। मेरी पुत्री सव कामो मे निपुण है किन्तु तुम्हारे वियोग मे सव कुछ भूल गई है। इसलिए मै तुम्हे लेने आई हूँ।

धनवती की वात सुनकर वसुदेव की दृष्टि अग्रज समुद्रविजय की ओर उठ गई। अग्रज ने अनुज की मनोभावना पहचानी। वे मद स्मित पूर्वक वोले—

—जाओ! परन्तु पहले की तरह गायव मत हो जाना, शीघ्र वापिस लौटना।

वसुदेव कुछ कह पाते उससे पहले ही धनवती ने कह दिया—

—आप चिन्ता न करे, मैं इन्हे शीघ्र ही विदा कर दूँगी। आप जाने की आज्ञा दीजिए।

—आप तो विदा कर ही देगी। परन्तु यह भी तो वचन दे। यदि वीच मे ही कही दूसरी जगह रुक गया तो ।

—शीघ्र ही जाऊँगा!—वचन देना ही पडा वसुदेव को।

—तो जाओ।—समुद्र विजय ने आज्ञा दे दी।

अग्रज की आज्ञा पाकर वसुदेव अचेड स्त्री धनवती के साथ जाने को तत्पर हुए तभी समुद्रविजय ने कहा—

—हम लोग शौर्यपुर मे तुम्हारी प्रतीक्षा करेगे।

वसुदेव ने सिर झुकाकर उसकी इच्छा स्वीकार की और धनवती के साथ गगनवल्लभ नगर जा पहुँचे। विद्याधर पति काचनदण्ट्र ने अपनी पुत्री वालचन्द्रा का विवाह बडे सम्मानपूर्वक वसुदेव के साथ कर दिया।

राजा समुद्रविजय आदि सभी यादव कस के साथ शौर्यपुर लौट आए और उत्सुकतापूर्वक वसुदेव की प्रतीक्षा करने लगे।

× × ×

कुछ दिन गगनवल्लभ नगर मे रहकर वसुदेव अपनी स्त्री वालचन्द्रा को लेकर वहाँ से चल दिये।

उन्होने अन्य स्थानो से भी अपनी सभी स्त्रियो को साथ लिया और विद्याधरो के पक्तिवद्ध विमानो के साथ शौर्यपुर जा पहुँचे।

आगे बढ कर अग्रज समुद्रविजय ने अनुज का स्वागत किया और दृढ आलिगन मे बाँध लिया।

कुछ दिन तक सभी विद्याधरो का स्वागत सम्मान करके विदा कर दिया गया।

एकान्त मे समुद्रविजय ने वसुदेव से पूछा—

—यहाँ से निकले तुम्हे सौ वर्ष हो गए। किस प्रकार व्यतीत हुआ यह समय।

वसुदेव ने इन सौ वर्षो का पूरा हाल कह सुनाया।

भाभियो ने परिहास किया—

—देवरजी ! क्या किया परदेश मे रहकर, हमारे लिए क्या लाये ?

—आपके लिए ! इतनी सारी देवरानियाँ !—कहकर हँस पड़े वसुदेव।

भाभियो ने भी साथ दिया और वातावरण हँसी की खिलखिलाहटो से गूँज गया।

—त्रिषष्टि० ८।४
—उत्तर पुराण ७०।३०७-३१७
—वसुदेव हिंडी पद्मावती लम्भक
रोहिणी लम्भक

१ उत्तर पुराण में रोहिणी के पिता का नाम हिरण्य वर्मा और माता का नाम पद्मावती लिखा है और उन्हें अरिष्टपुर का राजा बताया है। (श्लोक ३०७)

सरलचित्त अग्लानमन
सेवा की समभाव ।
वसुदेव के चरित्र पर
दीपित दिव्य प्रभाव ॥

जैन कथामाला

भाग ३२

श्रीकृष्ण कथा—

द्वारिका का वैभव

१ बलभद्र का जन्म

हस्तिनापुर के श्रेष्ठी के पुत्र का नाम था ललित । ललित स्वभाव से भी ललित था और रूप मे भी । माता का अति लाडला और पिता की ऑखो का तारा ।

ललित की माता ने पुन गर्भ धारण किया । अबकी बार उसे सताप रहने लगा । ज्यो-ज्यो गर्भ की अभिवृद्धि हुई त्यो-त्यो माँ की कषाय-वृद्धि । सेठानी को इतनी घृणा थी अपने गर्भस्थ शिशु से कि वह किसी न किसी प्रकार उसका प्राणान्त कर ही देना चाहती थी । गर्भपात के लिए उसने अनेक औषधियो का सेवन किया, मत्र-तत्रो का प्रयोग किया किन्तु सब निष्फल । 'मर्ज बढता गया ज्यो-ज्यो दवा की' वाली उक्ति चरितार्थ हो रही थी कि 'गर्भ बढता गया ज्यो-ज्यो उसे गिराने की चेष्टा की ।' गर्भस्थ शिशु भी पूरी आयु लेकर आया था—अकाल ही कैसे मरण कर जाता ?

सेठजी भी सेठानी की इन हरकतो से अनजान नही थे, पर वे करते भी क्या ? सेठानी दासियो के जरिये यह सब काम करा लेती । ललित भी अपनी माता के इन कृत्यो को भली-भाँति जानता था । दोनो पिता-पुत्र मौन होकर उस घडी की बाट जोह रहे थे जब कि शिशु का जन्म होना था ।

वह घडी भी आई । सेठानी ने पुत्र प्रसव किया । वह सतापित तो पहले से ही थी । घृणा के मारे उसने पुत्र का मुख देखकर अपना मुँह विचका लिया । तुरन्त दासी को बुलाया और कहा -

—इसे ले जाकर किसी निर्जन स्थान पर छोड आओ ।

दासी ने स्वामिनी की आज्ञा का पालन किया और शिशु को वस्त्र मे लपेट कर चल दी। दासी लपकी-लपकी चली जा रही थी शिशु को अक मे छिपाए, किसी निर्जन स्थान की खोज मे। निर्जन स्थान तो मिला नही; मिल गये सेठजी वीच मे ही।

स्वामी को सामने देखते ही दासी सहम गई। उसने शिशु को और भी जोर से चिपकाया, मानो भागा जा रहा हो उसके अक से निकल कर—हाथो से छूट कर! दवाव पडा तो शिशु रो उठा। पोल खुल गई दासी की। सेठजी ने कडे स्वर मे पूछा—

—यह क्या कर रही है? किस का बच्चा है यह? कहाँ ले जा रही है?

—जी, आप ही का वच्चा है। सेठानी जी ने निर्जन स्थान पर छोड आने को कहा है।—दासी ने स्वामिनी की रहस्यमयी आज्ञा वता दी।

सेठजी जानते तो सव थे ही किन्तु उन्हे यह वात पसन्द नही आई कि नवजात शिशु को इस तरह अरक्षित छोड दिया जाय। उन्होने शिशु अपने हाथो मे ले लिया और दासी से कहा—

—जाओ, कह देना कि तुमने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया।

दासी का कर्तव्य समाप्त हुआ तो सेठजी का शुरू। सेठानी से तो पुत्र का पालन करने की आशा ही करना व्यर्थ था। वे गुप्त रीति से उसको पालने लगे। नाम रखा गगदत्त।

माँ के प्यार के अभाव मे ही गगदत्त वडा होने लगा। ललित को भी यह वात ज्ञात हो गई। वह भी अपने छोटे भाई को प्रेम से खिलाता। गगदत्त धीरे-धीरे किशोर हो गया।

एक वार वसन्तोत्सव आया तो वडे भाई का प्रेम जोर मारने लगा। पिता से वोला—पिताजी! गगदत्त को कभी अपने साथ विठा कर खिलाया नही।

पुत्र के भ्रातृप्रेम को देखकर पिता का दिल भर आया। वोले—

—वत्स! दिल तो मेरा भी तरसता है। पर क्या करूँ तुम्हारी माता ' ।

—आप उसकी चिन्ता मत कीजिए। मैं ऐसा प्रबन्ध करूँगा कि माता को कुछ पता ही नही लगेगा।

पिता ने आज्ञा दी—

—ऐसा यत्न हो सके तो इससे ज्यादा प्रसन्नता की बात और क्या होगी ?

ललित को आज्ञा मिल गई। उसने एक परदे के पीछे छोटे भाई गगदत्त को विठाया। दोनो पिता-पुत्र परदे के इस तरफ और गगदत्त उस ओर। माता प्रेम से भोजन परोस रही थी। पिता-पुत्र उसकी नजर वचाकर अपने भोजन का कुछ अश पीछे को खिसका देते। गगदत्त उसे लेता और मुख मे रख कर प्रसन्न होता। आज जीवन मे पहली वार उसे माँ के हाथ मे वना अमृतोपम भोजन मिल रहा था। कल्पना के स्वर्ग में विचर रहा था गगदत्त।

क्रूर प्रकृति से गगदत्त का यह क्षणिक सुख भी न देखा गया। वायु का एक प्रवल झोका आया और गगदत्त के सुख को ले उडा। परदा उडा और रहस्य खुल गया। प्रसन्नता से झूमती हुई माँ की मुख-मुद्रा रौद्र हो गई। झपाटे से उठी और वाल पकड कर खीच लिया गगदत्त को।

उसने न कुछ पूछा और न सुना; लगी मारने। गगदत्त के मुख का ग्रास मुख मे रह गया और हाथ का छूट कर जमीन पर गिर गया। माँ के प्यार का प्यासा गगदत्त गोवत्स की तरह डकराने लगा। पिता और भाई ने वचाने का प्रयास किया तो सेठानी ने उनको भी तिरस्कृत कर दिया। उसकी आँखो से ज्वाला निकल रही थी और मुख से विप। उसके चलते हुए हाथ और पैर नागिन की पूँछ के समान लग रहे थे।

अच्छी तरह मार-कूट कर माँ ने पुत्र को एक कोठरी मे वन्द कर दिया।

दया आई पिता को। उसने अपने वडे पुत्र ललित की सहायता से उसे वाहर निकाला और सेठानी से छिपा कर किसी दूसरे स्थान पर

ले गये। गगदत्त को उन्होने नहलाया, धुलाया और प्यार के मरहम से उसके मार के घावो को भरने का प्रयास किया। किशोर गगदत्त भी पिता और भाई के प्यार मे पडकर अपनी मार की पीडा भूल गया।

×　　　　×　　　　×

एक साधु गोचरी के लिए घूमते-फिरते सेठजी के घर आये। पुत्र ने उनसे पूछा—

—गुरुदेव ! गगदत्त पर माता के क्रोध का कारण क्या है ?

सेठजी ने भी प्रश्न किया—

—मैंने अपने जीवन मे कभी भी सेठानी का ऐसा भयकर और रौद्र रूप नही देखा। बडे पुत्र ललित को तो लाड करती है और छोटे पुत्र गगदत्त को देखते ही क्रोध मे जल उठती है, नागिन की तरह बल खाती है।

—नागिन ही तो थी पिछले जन्म मे वह !—गुरुदेव ने बताया।

—ऐसे भयकर वैर का कारण ? सेठजी ने प्रश्न किया तो मुनिराज बताने लगे—

एक गाँव मे दो भाई रहते थे—एक बडा और दूसरा छोटा। दोनो भाई गाडी लेकर गाँव से बाहर निकले, लकडी लाने। जगल से उन्होने काट-काट कर लकडी भरी और वापिस गाँव की ओर चल दिये।

बडा भाई आगे-आगे पैदल चल रहा था और छोटा भाई पीछे-पीछे गाडी हाँकता ला रहा था। बडे भाई को एक सर्पिणी दिखाई दी। उसने छोटे भाई को चेतावनी दी—

—यहाँ मार्ग मे सर्पिणी पडी है। गाडी बचाकर हाँकना।

सर्पिणी ने यह सुन कर माना कि बडा भाई मेरा उपकारी और मित्र है।

छोटा भाई गाड़ी लिए आ पहुँचा। उसने सर्पिणी को देखकर कहा—

—वडे भाई ने तुझे वचा लिया लेकिन मै तेरे ऊपर ही गाडी चलाऊँगा। जव तेरी हड्डी टूटने की कड-कड की आवाज मेरे कानो मे पडेगी तो वडा मजा आयेगा।

नागिन ने छोटे भाई को अपना शत्रु माना।

जव तक नागिन वचने का प्रयास करती छोटे भाई ने गाडी की गति वढा दी। नागिन पर मे पहिया फिर गया। कड-कड हड्डी टूटने की ध्वनि आई और नागिन के प्राण पखेरू उड गये।

साधुजी ने सेठ को सवोधित किया—

—सेठजी वह नागिन ही तुम्हारी स्त्री हुई और वडा भाई तुम्हारा वडा पुत्र ललित तथा छोटा भाई गगदत्त। पूर्वभव के वैर के कारण ही सेठानी गगदत्त को देख कर आग ववूला हो जाती है क्योकि पूर्व-जन्म के सम्वन्ध अन्यथा नही होते।

मुनिराज के मुख से अपने पूर्वजन्म को जान कर ललित ससार से विरक्त हो गया। सेठजी के हृदय मे भी सवेग उत्पन्न हुआ। दोनो पिता-पुत्रो ने सयम ग्रहण किया और कालधर्म पाकर महाशुक्र देव-लोक मे उत्पन्न हुए।

कुछ समय पश्चात् गगदत्त ने भी मुनि पर्याय ग्रहण की। अन्त समय माता के अनिष्टपने की स्मृति करके विश्ववल्लभ (भरत-क्षेत्र का स्वामी) होने का निदान करके मरण किया।

तपस्या के प्रभाव से गगदत्त भी महाशुक्र देवलोक मे देव वना।

× × ×

आयुष्य पूर्ण करके ललित का जीव वसुदेव की रानी रोहिणी के गर्भ मे अवतरित हुआ। उस समय रोहिणी रानी ने वलभद्र की माता को दिखने वाले चार उत्तम स्वप्न देखे। अनुक्रम से गर्भ काल पूरा हुआ और रोहिणी ने चन्द्रमा के समान शीतलतादायक और गौराग पुत्र प्रसव किया।

राजा समुद्रविजय आदि सभी ने पुत्र-जन्मोत्सव वडे समारोह-

पूर्वक मनाया। पुत्र का नाम रखा गया राम किन्तु वह वलभद्र के नाम से प्रख्यात हुआ।

सबको प्रसन्न करते हुए कुमार वलभद्र बडे हुए। गुरु कृपा एव निर्मल बुद्धि से उन्होंने समस्त विद्या और कलाएँ अल्पकाल मे ही सीख ली।

—त्रिषष्टि० ८।५
—उत्तर पुराण ७२।२७८-२९७

विशेष—उत्तरपुराण मे वलदेव, वासुदेव श्रीकृष्ण तथा देवकी के अन्य छह पुत्रो के पूर्वभव देवकी के पूर्वभवो के साथ ही दिये गये हैं। वहाँ वलदव और वासुदेव के पूर्वभवो के नाम, उनके माता-पिता के नाम और जन्म स्थान मे अन्तर है। सक्षेप मे घटना इस प्रकार है—

इसी भरतक्षेत्र के मलयदेश मे पलाशकूट गाँव मे यक्षदत्त नाम का एक गृहस्थ रहता था। उसकी स्त्री का नाम यक्षदत्ता था। उनके दो पुत्र हुए यक्ष और यक्षिल। यक्ष क्रूर स्वभाव का था और यक्षिल दयावान। यक्ष वर्तनो भरी गाडी एक अन्धे सर्प पर चला देता है। सर्प मरकर नदयशा नाम की स्त्री हुआ। उसका विवाह कुरुजागल देश के हस्तिनागपुर नगर के राजा गगदेव के साथ हुआ। जब यक्ष का जीव उसके गर्भ मे आया तो राजा उसके प्रति उदासीन हो गया। अत उसने रेवती धाय के द्वारा पुत्र को उत्पन्न होते ही अपनी बहन वन्धुमती के यहाँ पहुँचवा दिया। उसका नाम निर्नामिक पडा। माता के दुर्व्यहार से निर्नामिक प्रव्रजित हो गया और उसने स्वयभू वासुदेव की समृद्धि देखकर निदान कर लिया। मरण करके वह महाशुक्र विमान मे देव हो गया। नदयशा भी प्रव्रजित हुई। वह भी स्वर्ग गई और वहाँ से च्यव कर देवकी हुई और उसी के गर्भ से निर्नामिक ने कृष्ण के रूप मे जन्म लिया।

छोटा भाई यक्षिल भी प्रव्रजित हुआ और मर कर महाशुक्र देव लोक मे उत्पन्न हुआ वहाँ से च्यवकर रोहिणी के गर्भ मे वलभद्र के रूप मे उत्पन्न हुआ।

(७२/२७८-२९७)

२ कंस का छल

स्वच्छन्द विहारी मुनि नारद समुद्रविजय की राजसभा मे पधारे। उनके सम्मान मे सभी उपस्थित जन खडे हो गए। कस भी उस समय उपस्थित था। सव का अनुकरण करते हुए उसने भी सम्मान प्रकट किया। कुछ समय तक इधर-उधर की वाते करके नारदजी चले गए। तव कस ने महाराज समुद्रविजय से पूछा—

—यह कौन था ? जिसके सत्कार मे आप भी खडे हो गए।

समुद्रविजय ने नारद का परिचय वताया—

पहले इस नगर के वाहर यज्ञयशा नाम का एक तापस रहता था। उसकी स्त्री का नाम था यज्ञदत्ता और पुत्र का नाम सुमित्र। सुमित्र की पत्नी थी सोमयशा। कोई जम्भृक देव आयु पूर्ण करके सोमयशा की कुक्षि से पुत्र रूप मे उत्पन्न हुआ। वालक नाम नारद रखा गया।

तापस एक दिन उपवास करता था और दूसरे दिन भोजन। एक दिन वह नारद को अशोक वृक्ष के नीचे छोडकर वन मे फल-फूल इकट्ठे करने चला गया। उस समय वह वालक (नारद) जम्भृक देवताओ की दृष्टि मे पडा। उनका पूर्वजन्म का मोह जाग्रत हो गया। वे नारद को उठाकर वैताढ्य गिरि पर ले गए। वहाँ की एक कन्दरा मे वालक का लालन-पालन हुआ।

नारद आठ वर्ष की आयु मे प्रज्ञप्ति आदि महाविद्याओ को सिद्ध करके आकाशचारी हो गया। यह नारद वर्तमान अवसर्पिणी काल का नौवाँ नारद है और इस भव से इसे मुक्ति प्राप्त हो जायेगी।

कस चुप-चाप वैठा सुन रहा था। नारद का पूरा वृतान्त सुनकर उसे पुन उत्सुकता हुई—

—यह सपूर्ण वृतान्त—नारद का भूत-भविष्य आपको कैसे ज्ञात हुआ, किसने बताया ?

—त्रिकालज्ञानी मुनि सुप्रतिष्ठ ने मुझे यह सब बताया था।—समुद्रविजय ने आगे कहा—किन्तु नारद स्वभाव से ही कलहप्रिय, अवज्ञा से कुपित होने वाला, स्वच्छन्द विहारी, सर्वत्र पूजित और एक स्थान पर न टिकने वाला होता है।

नारद का यह परिचय जान कस सतुष्ट हुआ।

× × ×

एक बार कस ने वसुदेव को बडे आग्रह और प्रेम से मथुरा बुलाया। उसके आग्रह को वसुदेव ने स्वीकार किया और मथुरा आ गए। कस ने उनका बहुत आदर-सत्कार किया।

जीवयशा के साथ कस बैठा हुआ वसुदेव से बाते कर रहा था। एकाएक वह बोल उठा—

—आपने मुझ पर सदा ही स्नेह रखा है। अब मेरी एक बात और मानिए।

—कहो।

—मृतिकावती नगरी का राजा देवक मेरा काका लगता है। उसकी पुत्री देवकी से आपको विवाह करना पडेगा ?—कस ने साग्रह कहा।

वसुदेव ने अपनी स्वीकृति दे दी। कस हर्षित हो गया। दोनो मृतिकावती नगरी की ओर चल दिये। मार्ग मे उन्हे नारदजी मिले। दोनो ने भली-भाँति उनका सत्कार किया। नारदजी ने पूछा—

—तुम लोग कहाँ जा रहे हो ?

वसुदेव ने बताया—

—अपने सुहृद इस कस के साथ मृतिकावती के राजा की पुत्री देवकी से विवाह करने।

नारद जी प्रसन्न होकर बोले—

—यह तुम बिल्कुल ठीक कर रहे हो। क्योकि विधाता निर्माण

तौ करता है किन्तु योग्य को जोडता नही। विधाता निर्माता तो है, परन्तु साथ ही अपडित भी।

—कैसे ?

—वह केवल सम्बन्ध निश्चित करता है, जोडता तो मनुष्य है।

वसुदेव नारद की बात सुनकर चुप हो गए और गम्भीरता से विचार करने लगे। तब नारद ने ही पुन कहा—

—वसुदेव तुमने अनेक मानव और विद्याधर कन्याओ से विवाह किया है किन्तु देवकी उन सवसे उत्तम है। विधाता ने ही देवकी का सम्बन्ध तुम्हारे साथ निश्चित किया है। अव तुम जाकर उसे जोडो।

यह कह कर नारदजी वहाँ से चले गए। वसुदेव और कस ने भी अपनी राह ली।

नारदजी सीधे देवकी के कक्ष मे पहुँचे और उसके समक्ष वसुदेव के रूप-गुण की चर्चा इस ढग से की कि वह मुग्ध होकर वसुदेव के ही नाम की माला फेरने लगी।

× × ×

कस और वसुदेव राजा देवक के सम्मुख पहुँचे तो उसने बडे प्रेम और उत्साह से उनका आदर किया। कस ने वसुदेव का परिचय देते हुए अपने आने का प्रयोजन वताया। राजा देवक कुछ देर तक गभीरता पूर्वक सोचता रहा और फिर वोला—

—कस ! यद्यपि तुम्हारी माँगनी उचित है। वसुदेव का कुल-शील भी ऊँचा है, किन्तु इस प्रकार अचानक ही विवाह का प्रस्ताव मुझे कुछ जँचा नही।

—तो… क्या इच्छा है आपकी ?—कस ने पूछा।

—मैं इस विपय पर कुछ समय तक सोचना चाहता हूँ।—देवक ने उत्तर दिया।

राजा देवक का उत्तर कुछ इस प्रकार का था कि कस और वसुदेव वहाँ से उठकर अपने शिविर की ओर चल दिए। देवक भी गभीर मुख-मुद्रा मे अन्त पुर जा पहुँचा। रानी देवी ने पूछा—

—स्वामी ! आज आप किस विचार मे डूबे है ?

—एक विचित्र वात हुई ।—देवक ने उत्तर दिया ।

—वह क्या ? —देवी ने उत्सुकता प्रकट की तो राजा ने वताया—

—आज कस अपने साथ शौर्यपुर के राजकुमार दशवे दशार्ह वसुदेव को लेकर आया और उसने देवकी की याचना की ।

वसुदेव का नाम सुनते ही देवकी के कान खडे हो गए । उसके गालो पर लाली दौड गई । रानी देवी ने पूछा—

फिर आपने क्या उत्तर दिया ?

—उत्तर क्या देता ? कह दिया विचार करके वताऊँगा ।

—और विचार क्या किया ?

—मुझे तो इस प्रकार से याचना करना कुछ रुचा नही, इन्कार कर दूँगा ।—राजा देवक के मुख से निकला ।

'इन्कार' शब्द सुनते ही देवकी की आँखे डवडवा आई । उसके मुख पर उदासी छा गई । रानी देवी की प्रसन्न मुख-मुद्रा मलिन हो गई । 'घर वैठे दामाद मिलने' की प्रसन्नता तिरोहित हो गई । राजा देवक ने माँ-वेटी की यह दशा देखी तो वोला—

—मैने तो अपना विचार मात्र प्रगट किया था, निर्णय तो तुम्हारी सम्मति से ही होगा ।

—मेरी सम्मति ! मेरी राय मे तो हमे वसुदेव से अच्छा वर दूसरा नही मिलेगा; तुरन्त हाँ कर देनी चाहिए ।

'जैसी तुम्हारी इच्छा' कहकर राजा देवक ने मत्री को भेजकर कस और वसुदेव को बुलवाया । इनका प्रेमपूर्वक स्वागत करके पुत्री देने का निर्णय वता दिया ।

देवकी को जैसे मुँह माँगा वरदान मिला । वह आनन्द विभोर हो गई ।

शुभ मुहूर्त मे वसुदेव के साथ देवकी का विवाह सम्पन्न हो गया । पाणिग्रहण सस्कार के समय देवक ने विशाल सपत्ति के साथ दस गोकुलो के अधिपति नन्द को भी गायो के साथ समर्पित कर दिया ।

राजा देवक से विदा होकर कस, वसुदेव नन्द आदि के साथ मथुरा लौट आया। उसने अपना हर्ष प्रगट करने के लिए बहुत बडा उत्सव मनाने का निश्चय किया।

× × ×

कस की आज्ञा से मथुरा नगरी दुलहिन की तरह सज गई। सभी ओर उल्लास और राग-रग छाया हुआ था। नगरवासियो के मुख चमक रहे थे और हृदय झूम रहे थे।

अन्त पुर मे कस की रानी जीवयशा भी वेभान थी मदिरा के नशे मे। उसके कदम लडखडा रहे थे। आँखे मुँदी जा रही थी। वह मदिरा के नशे मे चूर थी। उसी समय मुनि अतिमुक्तक[1] पारणे हेतु पधारे। जीवयशा की यह दशा देखकर वे लौटने लगे तो मदान्ध रानी वोल पडी—

—अरे देवर ! कैसे लौट चले ? आज तो आनन्द मनाने का दिन है। आओ मेरे साथ नाचो, गाओ।

और मदिरा के नशे मे चूर जीवयशा उनके सामने आ खडी हुई। निस्पृह सत रुक गए। जीवयशा ही पुन वोली—

—नही वोलते ! अरे कुछ तो कहो। इसे पीओ, मजा आ जायेगा।

जीवयशा ने मदिरा का पात्र आगे बढा दिया। मौन होकर मुनि रानी की इन अभद्र चेष्टाओ पर विचार कर रहे थे। रानी की विह्वलता वढती जा रही थी। उस पर मदिरा का रग चढा हुआ था। वह कुत्सित चेष्टाएँ करने लगी। निस्पृह मुनि ने बहुत प्रयास किया कि किसी प्रकार उसके चगुल से निकल जायँ किन्तु कहाँ मुनिश्री का

---

१ यह कस के पिता महाराज उग्रसेन के पुत्र थे। जव कस ने वलात् मथुरा पर अपना शासन स्थापित करके पिता को वन्दी वना लिया था तव इन्होने विरक्त होकर श्रामणी दीक्षा स्वीकार कर ली थी।

—संपादक

तपस्या से कृश शरीर और कहाँ पौष्टिक भोजन से पुष्ट कंस-रानी और फिर मदिरा से मतवाली। मुनि निकल न सके।

मुनिश्री के मुख से गभीर वाणी निकली—

—जिसके निमित्त यह उत्सव हो रहा है और तुम मतवाली बन गई हो उसी का सातवाँ पुत्र तुम्हारे पति का काल होगा।[1]

श्रमण अतिमुक्तक के ये सीधे-सादे शब्द जीवयशा को कठोर वज्र से लगे। उसका नशा हिरन हो गया। भयभीत होकर उसने महामुनि का मार्ग छोड दिया। निस्पृह संत अपने धीर-गम्भीर कदमो से चले गए और जीवयशा उन्हे टुकुर-टुकुर ताकती रह गई।

मुनि के चले जाने के बाद जीवयशा जैसे सचेत हुई। अब उसे पति-रक्षा की चिन्ता सताने लगी। तुरन्त पति को एकात मे बुलाकर अतिमुक्तक मुनि की भविष्यवाणी सुना दी।

कंस के मुख पर चिन्ता की रेखाएँ उभर आई। कुछ देर तक सोचता रहा और उठ कर वसुदेव के पास चला गया।

---

१ उत्तर पुराण के अनुसार मुनि अतिमुक्तक ने तीन भविष्यवाणियाँ की—

१ देवकी का पुत्र अवश्य ही तेरे पति को मारेगा। (श्लोक ३७३)

२ तेरे पति को ही नही पिता को भी मारेगा। (श्लोक ३७४)

३ देवकी का पुत्र समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का पालन करेगा। (श्लोक ३७५)

वही इसके आगे इतना उल्लेख और है—

किसी दूसरे दिन अतिमुक्तक मुनि आहार के लिए देवकी के घर गए। तब देवकी ने पूछा—'हम दोनों दीक्षा ग्रहण करेंगे या नही।' इस पर मुनि ने उत्तर दिया 'तुम लोग इस प्रकार बहाने से क्यो पूछते हो? तुम्हारे सात पुत्र होंगे, उनमे से छह तो दूसरी जगह पलेंगे और संयम ग्रहण करके मुक्त हो जायेंगे। सातवाँ पुत्र अर्द्धचक्री होकर पृथ्वी का चिरकाल तक पालन करेगा।' (श्लोक ३८०-३८३)

वसुदेव से कस की चिन्ता छिपी न रही। उन्होने स्नेह से पूछा—

—कस ! ऐसे सुअवसर पर तुम्हे क्या चिन्ता लग गई ? मुझे वताओ। मैं अवश्य दूर करूँगा।

अजलि वाँध कर कस वोला—

—आपने मुझ पर अनेक उपकार किए है। मुझे अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा देकर योग्य वनाया। राजा जरासध से जीवयशा दिलवाई। मैं आपके उपकारो से दवा हुआ हूँ, किन्तु अव भी मेरा मन नही भरा। एक उपकार और कर दीजिए।

—क्या चाहते हो ? स्पष्ट कहो। मैं तुम्हारी इच्छा अवश्य पूरी करूँगा।

—मेरी इच्छा है कि आप देवकी के सात गर्भ जन्मते ही मुझे दे दे।

देवकी भी दोनो की वाते सुन रही थी। वह भ्रातृप्रेम से विभोर होकर वोली—

—भैया ! कैसी वात करते हो, जैसे तुम्हारा मुझ पर कोई अधिकार ही न हो ? मेरे और तुम्हारे पुत्र मे क्या कोई अन्तर है ? तुम्हारे ही प्रयास से मुझे वसुदेव जैसे पति मिले है। हमारे दोनो के संयोग से जो पुत्र हो, उन्हे तुम ले लेना।

वसुदेव ने भी कहा—

—प्रिये ! अधिक कहने से क्या लाभ ? तुम्हारे सात गर्भ जन्म लेते ही कस को दे दिए जाएँगे। कहो कस ! अव तो प्रसन्न हो।

अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कस वोला—

—आपकी वडी कृपा है। आप जैसा कोई दानी नही और मुझ जैसा कोई लेने वाला नही।

इसके पश्चात् सभी आनन्दोत्सव मनाने लगे। कस की इच्छा पूरी हो चुकी थी।

× × ×

कुछ दिन पश्चात् वसुदेव को मुनि की भविष्यवाणी ज्ञात हुई तो उनके मुख से पश्चात्ताप पूर्ण शब्द निकले—

—कस ने मुझे छल लिया।

देवकी को भी वहुत दुःख हुआ। परन्तु अव हो क्या सकता था ? दोनो ही वचनवद्ध थे।

कस ने भी इस कारण कि वे कही निकल न जाएं उन दोनो पर पहेरदार विठा दिए।

अव देवकी और वसुदेव की दशा कस के वन्दी[1] की सी थी।

—त्रिषष्टि० ८/५
— उत्तर पुराण ७०/३६९-३८३
—वसुदेव हिंडी, देवकी लभक

●

---

१ श्रीमद्भागवत के अनुसार कस द्वारा देवकी और वसुदेव को वन्दी वनाए जाने की घटना इस प्रकार है —

एक वार वसुदेवजी अपनी नव-विवाहिता पत्नी देवकी के साथ मथुरा नगरी से जाने को रथ मे सवार हुए। उस समय वहिन के प्रति प्रेम और वसुदेव के प्रति आदर प्रदर्शित करने के लिए कस स्वय उनके रथ का सारथी वना। जिस समय वह रथ को चला रहा था तभी उसे आकाशवाणी सुनाई दी—'अरे मूर्ख ! जिसको तू रथ मे वडे प्रेम से विठा कर ले जा रहा है उसी देवकी का आठवाँ गर्भ तुझे मारेगा।' यह सुनते ही कस ने देवकी के केश पकड लिए। तव वसुदेव ने कहा—'हे सौम्य ! इस देवकी से तो तुम्हे कोई भय नही है। इस समय इसे मारना भी उचित नही है। मैं तुम्हे इसके सभी गर्भों को सौपने का वचन देता हूँ।' इस वात को स्वीकार करके कस ने देवकी के केश छोड दिये और उन दोनो को वन्दी वना लिया।　　　　(श्रीमद्भागवत् १०/१/३०-५६)

३ वासुदेव श्रीकृष्ण का जन्म

उदारता और सहृदयता का ऐसा कटु परिणाम आयेगा—वसुदेव को स्वप्न मे भी इसकी कल्पना नही थी। किन्तु जो कुछ भाग्य मे लिखा था वह अनचाहे भी होगया। नियति पर मन को टिकाकर देवकी और वसुदेव अब कस की निगरानी मे बदी का सा जीवन बिताने लगे। कस के पहरेदार बराबर दोनो पर नजर रखते थे। देवकी जब गर्भ धारण करती और पुत्र प्रसव करती उसी समय भद्दिलपुर निवासी नाग गाथापति की स्त्री सुलसा भी पुत्र प्रसव करती। दोनो का समय एक ही होता। देवकी के पुत्र जीवित होते और सुलसा के पुत्र मृत; किन्तु हरिणगमेषी देव अपनी वचनबद्धता के कारण उनको बदल दिया करता। देवकी के जीवित पुत्र सुलसा के अक मे खेलने लगे और सुलसा के मृत-पुत्रो को देवकी से छीनकर कस ने उनकी अन्तिम क्रिया करा दी।

इस प्रकार मृतवत्सा सुलसा[1] देवकी के उदर से उत्पन्न छह पुत्रो

---

१. (क) सुलसा जब बालिका ही थी तब किसी निमित्तज्ञ ने बताया कि यह कन्या मृतवत्सा (मरे हुए पुत्रो को जन्म देने वाली) होगी। सुलसा बाल्यावस्था से ही हरिणगमेषी देव की उपासिका थी। वह प्रतिदिन प्रात काल स्नान, कौतुक मगल आदि कर भीगी साडी से ही देव की उपासना करती।

उसकी भक्ति से हरिणगमेषी देव प्रसन्न हुआ। कस ने देवकी के पुत्रो को मारने का निश्चय किया है—यह जानकर उसने सुलसा की इच्छा पूर्ति का वचन दिया।

(अनीकयशा, अनन्तसेन, अजितसेन, निहितारि, देवयशा और शत्रुसेन) की किलकारियो और वाल-लीलाओ से स्वय को धन्य समझने लगी और देवकी जीवित पुत्रो को जन्म देकर भी हतभागिनी वनी रही। अपने को मृतवत्सा मानती रही—यही तो था भाग्य का चमत्कार।

एक रात देवकी ने स्वप्न मे सिंह, अग्नि, गज, ध्वजा, विमान और पद्म सरोवर देखे। उसी समय मुनि गगदत्त का जीव महाशुक्र देवलोक मे अपना आयुष्य पूर्ण करके उसकी कुक्षि मे अवतरित हुआ। गर्भ अनुक्रम से वढने लगा।

भाद्रपद मास की कृष्ण पक्षी अष्टमी की अर्द्ध रात्रि को देवकी ने एक श्यामवर्णी पुत्र को जन्म दिया। पुत्र-जन्म के साथ ही उसके समीप रहने वाले देवताओ ने कस के चौकीदारो को निद्रामग्न कर दिया।

देवकी ने पति को वुलाकर कहा—

—नाथ ! मेरे छह पुत्र तो इस कस ने मरवा ही डाले है। अव इस सातवे पुत्र की तो रक्षा करो।

जव सुलसा का विवाह नाग गाथापति से हो गया तो वह उसे और देवकी को एक साथ ही ऋतुमती करता और जव दोनो के पुत्र उत्पन्न हो जाते तो उनको अदला-वदली कर देता।

(ख) वसुदेव हिण्डी मे देवकी के ही जीवित पुत्रो को मारने का स्पष्ट उल्लेख है। (वसुदेव हिण्डी, देवकी लम्भक)

(ग) भागवत के अनुसार देवकी के छह पुत्रो को कंस पटक कर मार देता है। देखिए—

हतेषु षट्सु वालेषु देवक्या औग्रसेनना।

(श्रीमद्भागवत १०।२।४)

—मै वचनवद्ध हूँ देवि ! दुख तो मुझे भी वहुत है, पर क्या करू ? —वसुदेव ने निराश स्वर मे उत्तर दिया।

नारी की सहज वुद्धि जाग उठी। वोली—

—स्वामी ! साधु के साथ साधु और मायावी के साथ मायावी वनना—यही धर्म नीति है। जव आपके पुत्रो को मारने के लिए कस छल कर सकता है तो आप पुत्र वचाने के लिए क्यो नही कर सकते ?

वसुदेव देवकी की वात पर गम्भीरतापूर्वक सोचने लगे। उन्हे विचार-मग्न देखकर देवकी की वेकली वढी। वह कहने लगी—

—प्राणधन ! यह समय सोच-विचार का नहीं है। आप एक प्राणी की रक्षा के लिए कपट कर रहे है जो न अधर्म है और न अनीति। जल्दी कीजिए स्वामी ! इस समय पहरेदार सोए हुए है। आप पुत्र को लेकर निकल जाइये।

वसुदेव देवकी की वात से सहमत हो गए, वोले—

—तुम्हारा कथन यथार्थ है, किन्तु इस अर्द्धरात्रि मे वालक को लेकर कहाँ जाऊँ ?

—समीप ही आपको मेरे पिता की ओर से मिले दस गोकुल है। उनका स्वामी नद आपका सेवक है। उसी के पास मेरे पुत्र को छोड़ आइये।

यह भी देवकी को ही वताना पडा।

नवजात शिशु को अक मे लेकर वसुदेव निकले। वाहर मूसलाधार पानी पड रहा था। समीपस्थ देवो ने उनके ऊपर छत्र सा तान दिया, पुष्पवृष्टि की और आठ दीपको से मार्ग आलोकित कर दिया।

वसुदेव विना किसी कठिनाई के नगर द्वार के समीप पहुँच गए।

घोर अधियारी रात्रि मे दीपको के प्रकाश से आलोकित पथ पर एक पुरुष को चलते देखकर पिजरे मे वन्दी उग्रसेन[1] आश्चर्य चकित रह गए। उनके मुख से सहसा निकल पडा—

---

१ उग्रसेन कस के पिता थे जिनको उसने पिंजरे मे वन्दी वनाकर नगर द्वार के पास रख छोड़ा था।

—यह क्या ?

उग्रसेन के आश्चर्य को शात करते हुए वसुदेव ने अपने अक मे छिपे बालक को दिखा कर कहा—

—यह कस का शत्रु है ? किन्तु आप किसी से कहिए मत ।

वन्दी राजा उग्रसेन को सतोप हुआ। उन्होने सिर हिलाकर वसुदेव की बात स्वीकार की ।

तब तक साथ रहने वाले देवो ने नगर-द्वार खोल दिया। उसमे इतना स्थान हो गया कि वसुदेव सरलता से निकल सके। वसुदेव नगर से बाहर निकल गए ।

वसुदेव नन्द के घर पहुँचे और उसे सब कुछ समझा कर अपना पुत्र सौंप दिया। इस पुत्र को लेकर नन्द ने अपनी नवजात पुत्री अपनी पत्नी यशोदा के अक मे से उठाई और उसके स्थान पर उस पुत्र को सुला दिया। पुत्री लाकर वसुदेव को दे दी ।

वसुदेव के मुख से निकल पडा—

—नन्द ! तुम्हारा यह उपकार क्या भूलने योग्य है ?

—स्वामी-पुत्र के प्राण बचाना मेरा कर्तव्य है। इसमे उपकार कैसा ? नन्द ने उत्तर दिया।

पुत्री को अक मे छिपाए वसुदेव अपने स्थान पर लौट आए। उन्होने वह कन्या देवकी को दी और स्वय उसके कक्ष मे बाहर निकल आए।

ज्यो ही वसुदेव बाहर निकले पहरेदारो की नीद टूट गई। 'क्या उत्पन्न हुआ' यह पूछते हुए अन्दर आए। देखा तो एक नवजात कन्या देवकी के पार्श्व मे लेटी हुई थी। पहरेदारो ने उसे उठाया और कस को ले जाकर दे दिया।

कस ने देखा कि सातवाँ गर्भ कन्या के रूप मे उत्पन्न हुआ है तो उसने मन मे समझा कि मुनि की वाणी मिथ्या हो गई। 'यह वेचारी कन्या मेरा क्या विगाड लेगी। इसे क्या मारना ?' ऐसा विचार कर

उसने कन्या की नाक काटकर[1] देवकी को पुन वापिस कर दिया।

× × ×

श्यामवर्णी होने के कारण गोकुल मे शिशु का नाम पड गया कृष्ण। कृष्ण देवताओ की रक्षा मे वढने लगे।

देवकी को अपने मृत-पुत्रो का तो सतोप हो गया किन्तु जीवित पुत्र से मिलने के लिए छटपटाने लगी। उसका मातृ-हृदय अधीर हो गया। एक मास ही व्यतीत हो पाया कि उसने पति से कहा—

—नाथ! मै गोकुल जाऊँगी।

वसुदेव भी देवकी की मनोदशा जानते थे। जिस माँ ने सात-पुत्र प्रसव किये फिर भी किसी को घडी भर गोद मे लेकर प्यार न कर सकी उसके हृदय की व्यथा का क्या ठिकाना? वसुदेव ने कहा—

—प्रिये! तुम्हारा अचानक ही गोकुल जाना, कस के दिल मे शक पैदा कर देगा।

—किन्तु मेरा हृदय पुत्र को देखने के लिए व्याकुल है।

—कोई वहाना करके जाओ तो ठीक रहेगा, अन्यथा पुत्र पर विपत्ति आने का भय है।

'पुत्र की विपत्ति' सुनकर देवकी विचारमग्न हो गई। वह पुत्र को देखना भी चाहती थी और विपत्ति भी नही आने देना चाहती थी।

---

१ (क) हरिवश पुराण के अनुसार उसकी नाक चपटी कर दी गई।

(जिनसेन कृत हरिवश पुराण ३५/३२)

(ख) श्रीमद्भागवत मे इस कन्या को विष्णु की योगमाया माना गया है। कस इस कन्या को मारने के लिए पछाडता, पटकता है तो वह कन्या छिटक कर आकाश मे उड जाती है किन्तु जाते-जाते घोषणा कर जाती है कि 'हे कस! तुम्हारा शत्रु तो उत्पन्न हो ही चुका है।' (श्रीमद्भागवत १०/४/८-१२)

इसके पश्चात् ही वसुदेव और देवकी को कस ने कारागार से मुक्त कर दिया क्योकि अब उन्हे बन्दी रखने से कोई लाभ न था।

सोचते-सोचते वसुदेव ने एक उपाय खोज ही निकाला। वे बोले—

—ऐसा करो देवकी कि तुम गोपूजा के बहाने जाओ। इससे कस को सदेह भी नही होगा और तुम्हारी इच्छा भी पूरी हो जायेगी।

देवकी को यह उपाय उचित लगा। वह अन्य अनेको स्त्रियो के साथ गोपूजा के बहाने गोकुल मे गई। वहाँ उसने यशोदा के अक मे अपना पुत्र देखा।

श्यामवर्णी शिशु यशोदा की गोदी मे किलक रहा था। उसका रग निर्मल नील मणि के समान था, हृदय पर श्रीवत्स लक्षण, नेत्र जैसे प्रफुल्लित कमल, हाथ और पैरो मे चक्र का शुभ लक्षण—पुत्र को देख कर देवकी का हृदय आनन्द से भर गया। वह पुत्र को अपलक नेत्रो से देखती रही।

उपाय तो मिल ही गया था देवकी को। वह हर मास गोपूजा का बहाना करती और गोकुल पहुंच जाती। दिन भर पुत्र का मुख देखती, आनदित होती और सायकाल वापिस लौट आती।

भाग्य की विडम्बना—ससार मे पशु-पक्षी तक की माताएँ भी अपने शिशुओ को गोद मे लेकर सोती है और देवकी . !

लोक गतानुगतिक होता है। वसुदेव पत्नी गोपूजा करती तो उसकी देखा-देखी अन्य अनेक स्त्रियाँ भी गो-पूजन करने लगी। ससार मे गो-पूजा[1] प्रचलित हो गई।

—त्रिषष्टि० ८।५

—उत्तरपुराण ७०/३८४–४११

---

१ गो-पूजा के सम्बन्ध मे श्रीमद्भागवत मे यह उल्लेख है कि गोकुल वासी पहले इन्द्र-पूजा किया करते थे। वे उसे वर्षा का स्वामी मानते थे। श्रीकृष्ण ने इन्द्र का गर्व हरण करने के लिए उसकी पूजा बन्द करा दी और गो-पूजा का प्रचलन किया। इस पर रुष्ट होकर इन्द्र ने सात दिन तक

घोर वर्षा की। श्रीकृष्ण ने गोवर्द्धन पर्वत को अपनी अगुली पर उठा कर सम्पूर्ण व्रज-वासियो व उनके गोधन आदि की रक्षा की। श्रीकृष्ण के इस अतुल प्रभाव से इन्द्र भयभीत हो गया और उसने स्वय ही वर्षा बन्द कर दी।

इस घटना के फलस्वरूप गो-पूजा का प्रचलन हो गया। सम्पूर्ण व्रज वासियों ने उत्साहपूर्वक गो-पूजा की।

(श्रीमद्भागवत, दशम स्कध, अध्याय २५-२६)

उत्तरपुराण के वर्णन मे कुछ भिन्नता है—

सुलसा के स्थान पर वैश्यपुत्री-अलका यह नाम दिया है और नैगमैषी देव इन्द्र की प्रेरणा से देवकी के पुत्रो को हरण करता है।

(श्लोक ३८४-३८६)

इस बालक (श्रीकृष्ण) को नद गोप के पास ले जाने की घटना का वर्णन करते हुए कहा है कि—बलभद्र (कृष्ण के बडे भाई इसे लेकर चले और वसुदेव ने उन पर छत्र लगाया (बरसात से बचने के लिए), नगर के देवता ने बैल का रूप धारण किया और अपने सीगो पर दो दैदीप्यमान मणियाँ लगाई। इस प्रकार अँधेरा दूर करता हुआ आगे-आगे चलने लगा। (श्लोक ३९०-३९२)

नन्द गोप इन्हे रास्ते मे आते हुए मिले। उनके अक मे एक कन्या थी। नद गोप ने बताया—'मेरी स्त्री ने भूत देवता की आराधना की थी। उसने यह कन्या देकर कहा कि मैं इसे आप तक पहुँचा दूँ।' पिता-पुत्र ने बालक नद गोप को दिया और कन्या लेकर लौट आए।

(श्लोक ३९९-४००)

कस द्वारा कन्या की नाक छेदने के बाद इतना उल्लेख और है कि—

कस ने उसे तलघर मे धाय द्वारा पोषित करवाया। बडी होकर उस कन्या ने सुव्रता आर्या के पास दीक्षा ले ली। वह विध्याचल पर्वत पर एक जगह तपस्या करने लगी। वनवासी उसे वनदेवी समझ कर पूजने लगे। एक समय उसे बाघ खा गया। वह तो मरकर स्वर्ग चली गई किन्तु वे लोग उसे विन्ध्यवासिनी देवी के नाम से पूजने लगे।

(श्लोक ४०८-४११)

शत्रुता की गाँठ इतनी दृढ होती है कि जीव के भव-भव तक तो चलती ही है, वंश परंपरागत भी चलती है । पिता का बदला पुत्र चुकाना चाहता है और पितामह का पौत्र । साथ ही व्यक्ति का बदला उसके पुत्र-पौत्रो से भी लिया जाता है। सूर्पक विद्याधर[1] ने भी वसुदेव से ऐसा ही वैर बाँध लिया था । पिता का बदला चुकाने आई सूर्पक की दो पुत्रियाँ—वसुदेव से नही, वरन् उनके पुत्र कृष्ण से ।

सूर्पक-पुत्री शकुनि और पूतना वसुदेव का तो कुछ बिगाड ही नही सकती थी । उन्होने वासुदेव कृष्ण के प्राण लेने की योजना बनाई । वे दोनो विद्याधरियाँ गोकुल मे आकर अवसर ढूँढने लगी । एक दिन उन्हे अवसर मिल भी गया ।

नद और यशोदा दोनो ही घर मे नही थे । श्रीकृष्ण अकेले ही घर के एक कक्ष मे अपनी छोटी सी शय्या पर पडे-पडे किलकारियाँ भर-भर कर क्रीडा कर रहे थे । शकुनि और पूतना ने अच्छा अवसर देखा ।

बालक कृष्ण को कक्ष से बाहर आँगन मे निकाल लाई । शकुनि एक गाडी कही से घसीट लाई और उसका पहिया कृष्ण पर रख कर दबाने लगी । वह दबाने के लिए बल भी लगाती जाती और भयकर आवाज से चिल्लाती भी जाती । उसने शारीरिक बल-प्रयोग और भयभीत करके कृष्ण के प्राण-हरण का पूरा प्रयास किया किन्तु सफल न हो सकी ।

---

१ सूर्पक विद्याधर दिवस्तिलक नगर के राजा त्रिशिखर का पुत्र था। त्रिशिखर को वसुदेव ने युद्ध मे कठच्छेद करके मार डाला था। मदनवेगा के कारण भी सूर्पक ने वसुदेव से शत्रुता बाँध ली थी ।

पूतना भी पीछे न रही। उसने अपने स्तन विषयुक्त करके कृष्ण के मुख मे दे दिए।

जब ये दोनो विद्याधरियाँ[1] श्रीकृष्ण के प्राण-हरण के प्रयास मे लगी हुई थी तभी वासुदेव के रक्षक देवो ने उन दोनो विद्याधरियो को

---

१ (क) हरिवश पुराण के अनुसार ये दोनो कस द्वारा भेजी हुई देवियाँ है। सक्षेप मे घटना इस प्रकार है—

एक दिन कस के हितैषी निमित्तज्ञ वरुण ने कहा—'राजन्! तुम्हारा शत्रु कही आस-पास ही वढ रहा है।' तव कस ने शत्रुनाश की इच्छा से तीन दिन का उपवास किया। इससे आकृष्ट होकर दो देवियाँ प्रगट हुई और कहने लगी—'हे राजन्! हम तुम्हारे पिछले जन्म की सिद्ध की हुई देवियाँ है। जो कार्य हो वह कहो।' कस ने वताया—'मेरा शत्रु प्रच्छन्न रूप से कही वढ रहा है। तुम खोजकर उसका प्राणान्त कर दो।'

कस के शत्रु शिशु कृष्ण को मारने के लिए देवियाँ गोकुल पहुँची। उनमे से एक ने तो पक्षी (शकुनि) का रूप वनाया और चोच-प्रहार से शिशु कृष्ण को मारने का प्रयास करने लगी। कृष्ण ने उसकी चोच पकडकर इतनी जोर से दवाई कि वह चिल्लाती हुई भाग गई। दूसरी देवी ने विष-युक्त स्तनो से कृष्ण को मारना चाहा किन्तु कृष्ण के रक्षक देवताओ ने उनका मुख इतना कठोर वना दिया कि उसके स्तन का अग्रभाग वडी जोर से दव गया और पीडा के कारण वह चिल्लाने लगी।

(जिनसेन हरिवश पुराण, ३५/३७-४२
तथा उत्तर पुराण ७०/४१२-४१९)

(ख) श्रीमद्भागवत मे शकुनि का इस स्थल पर उल्लेख नही है। पूतना के सम्बन्ध मे लिखा है कि वह एक राक्षसी थी। कस उसको कृष्ण की हत्या के लिए भेजता है। पूतना विषयुक्त स्तनपान कराके उन्हे मार डालना चाहती है किन्तु कृष्ण उसके स्तनो का पान इतनी उग्रता से करते है कि उसके प्राण ही निकल जाते है।

(श्रीमद्भागवत, १०/६/४-१३)

मार डाला, गाडी तोड दी और वासुदेव को कक्ष के अन्दर सुखपूर्वक सुला आए।

× × × ×

नद ने आकर जब आँगन मे यह ताडव देखा तो स्तभित रह गये—एक गाडी टूटी पडी है और दो भीमकाय युवतियाँ मृत। उनकी अनुपस्थिति मे कौन कर गया यह सब ? यशोदा को आवाज लगाई तो उत्तर न मिला। धडकते हृदय से अन्दर प्रवेश किया ओर नन्हे से कृष्ण को खोजने लगे।

कृष्ण चुपचाप अपनी शय्या पर सो रहे थे। नद ने लपक कर उन्हे उठा लिया। ऊपर से नीचे तक सारे शरीर को टटोल कर देखने लगे—कही कोई चोट तो नही आई ? किन्तु कृष्ण के अक्षत शरीर को देखकर आश्वस्त हुए। पुत्र को गोद मे लिए बाहर निकल कर सेवको को आवाज दी।

—कहाँ चले गए थे, तुम सब ? यह ताडव किसने किया है ?

सेवको ने जो वहाँ की स्थिति देखी तो वे भी हतप्रभ रह गए। उनसे कुछ कहते नही बना। नद ने ही कहा—

—आज मेरा पुत्र भाग्यबल से ही जीवित बचा है।

एक गोप ने आगे बढकर कहा—

—स्वामी ! आपका पुत्र बडा बलवान है। इस अकेले ने ही इन दोनो स्त्रियो के प्राण ले लिए और गाडी चकनाचूर कर दी।

नद चकित से पुत्र का मुख देखने लगे।

उसी समय नदरानी यशोदा ने प्रवेश किया और हतप्रभ सी देखने लगी। 'हाय मै मर गई' कहकर उसने कृष्ण को नद की गोद से झपट-सा लिया और उनके शरीर पर हाथ फेर-फेर कर देखने लगी। नन्द ने उलाहना दिया—

—अब तो बडा प्यार आ रहा है। जब अकेली छोड गई तब ? देखो ! कैसी भयकर विपत्ति आई थी इस पर ?

यशोदा ने तो मानो उस दृश्य से आँख ही मीच ली। वह तो केवल अपने पुत्र को ही देख रही थी। उसी की कुशलता मे उसका स्वर्ग था।

नन्द ने आदेश दिया, पत्नी को—

—आज से कभी कृष्ण को अकेला नही छोडना। कोई दूसरा काम हो या न हो, शिशु की रक्षा करना आवश्यक है, समझी।

—समझ गई।—नन्दरानी ने कहा और पुत्र को छाती से चिपका लिया।

यशोदा उस दिन से कृष्ण को अपने पास ही रखती। कभी दृष्टि से ओझल नही होने देती। किन्तु बालक चपल स्वभाव के होते ही है, कृष्ण भी चुप-चाप घुटनो चलते हुए इधर-उधर निकल जाते। नन्द-रानी उन्हे दौड-दौड कर पकडकर लाती। कृष्ण की नटखट लीलाओ से यशोदा परेशान हो उठी।

उसने एक उपाय सोच ही लिया—

रस्सी का एक सिरा कृष्ण की कमर मे बाँधा और दूसरा छोर ऊखल से। इस प्रकार कृष्ण को बाँधकर यशोदा अडोस-पडोस मे चली जाती।

× × × ×

सूर्पक विद्याधर का पुत्र अपने पितामह की मृत्यु का बदला चुकाने के लिए वसुदेव के पुत्र कृष्ण को मारने गोकुल आया। अपनी दोनो बहिनो शकुनि और पूतना की मृत्यु के लिए भी वह कृष्ण को दोषी मानता था। वह यमल और अर्जुन जाति के दो वृक्षो[1] का रूप बना कर कृष्ण के घर के सामने आ खडा हुआ।

---

१. (क) हरिवश पुराण मे जमल और अर्जुन नाम की दो देवियाँ मानी गई है। (जिनसेन हरिवश पुराण, ३५/४५)

(ख) श्रीमदभागवत मे यमलार्जुन उद्धार की घटना सविस्तार वर्णन की गई है—

वृक्षो की शाखाएँ हिलने से पत्तो की मधुर खडखड की ध्वनि होने लगी। विद्याधर सूर्पक का पुत्र वृक्षो के रूप मे भाँति-भाति की चेष्टाओ से वालक कृष्ण को आकर्षित करने लगा।

वालक सहज जिज्ञासु तो होते ही है। कृष्ण भी आकर्पित होकर उन वृक्षो की ओर चलने लगे। आगे-आगे कृष्ण घुटुवन चले जा रहे थे और पीछे-पीछे रस्सी से वँधा ऊखल।

ज्यो ही श्रीकृष्ण दोनो वृक्षो के ठीक मध्य भाग मे पहुँचे दोनो वृक्षो ने चलना प्रारम्भ कर दिया। वृक्ष एक दूसरे के समीप आने

नलकूवर और मणिग्रीव दोनो ही देवो के धनाध्यक्ष कुवेर के पुत्र थे। एक वार वे दोनो अनेक यक्ष कन्याओ के साथ गगाजी मे जलक्रीडा कर रहे थे। तभी देवर्पि नारद उधर से आ निकले। नारदजी को देखकर निर्वस्त्र अप्सराएँ तो लजा गई और उन्होने झटपट वस्त्र पहन लिए परन्तु ये दोनो यक्ष यो ही मदान्ध खडे रहे। नारदजी को उनकी वस्त्र-हीन निर्लज्ज दशा देखकर दु ख हुआ। उन्होंने समझ लिया कि ये देव पुत्र होकर भी मदान्ध हो रहे हैं। उनकी कल्याण कामना से देवर्पि नारद ने शाप दिया—'जिस प्रकार तुम वस्त्रहीन निर्लज्ज होकर ठूंठ की तरह खडे हो उसी प्रकार तुम वृक्ष योनि मे जा पडो।'

इस शाप को सुनते ही नलकूवर और मणिग्रीव ने नारदजी से क्षमा याचना की। तव नारदजी ने आश्वासन दिया कि 'कृष्णावतार मे भगवान के द्वारा तुम्हारा उद्धार होगा।'

दोनो यक्ष मणिग्रीव और नलकूवर यमलार्जुन जाति के दो वृक्ष हो गए। दामोदर (श्रीकृष्ण) जव उनके वीच से निकले तो ऊखल टेढा होकर अटक गया और कृष्ण के जोर लगाते ही दोनो वृक्ष जड सहित टूट कर गिर पडे। उनमे से दोनो यक्ष मणिग्रीव और नलकूवर निकले। उनका शाप नष्ट हो गया था अत दोनो अपने सहज स्वरूप में आ गए। उन्होने कृष्ण की अनेक प्रकार से स्तुति और वन्दना की तथा उत्तर दिशा की ओर चले गए।

(श्रीमद्भागवत, दशम स्कंध, अध्याय दशवाँ, श्लोक १-४३)

लगे। विद्याधर सूर्पक के पुत्र का विचार था कि दोनो ओर से वृक्षो के दवाव द्वारा श्रीकृष्ण का प्राणात कर दिया जाय।

श्रीकृष्ण दोनो वृक्षो के वीच मे ऐसे फँस गए मानो चक्की के दो पाटो के मध्य अनाज का दाना।

तत्काल श्रीकृष्ण के रक्षक देव सचेत हुए। उन्होने उन अर्जुन जाति के वृक्षो को भग करने के लिए तीव्र प्रहार किया। दोनो वृक्ष जड सहित तडतड़ाहट की आवाज के साथ उखड कर गिर गए।[1]

---

१ उत्तर पुराण के अनुसार—

मथुरा नगर मे अकस्मात् वहुत से उपद्रव होने लगे तव कस के पूछने पर वरुण नाम के निमित्तज्ञानी ने वताया कि 'तुम्हारा शत्रु उत्पन्न हो चुका है।' यह सुनकर उसको (कस को) वहुत चिंता हुई। तव पहिले जन्म की देवियाँ आई। कस ने उनसे कहा—'मेरे शत्रु को मार डालो।' देवियाँ वासुदेव को मारने के लिए गोकुल जा पहुची।

(श्लोक ४१६-४१८)

(१) पूतना नाम की देवी ने स्तनो पर विष लगाकर वासुदेव को मारने का प्रयास किया किन्तु किसी दूसरी देवी ने उसे ऐसी पीडा पहुचाई कि वह भाग गई। (श्लोक ४१८)

(२) दूसरी देवी गाडी का रूप रखकर आई किन्तु कृष्ण ने लात मार कर उसे तोड दिया। (श्लोक ४१६)

(३) दो देवियो ने वृक्षो का रूप वनाया किन्तु कृष्ण ने उन्हे जड से उखाड दिया। (श्लोक ४२२)

(४) एक देवी ने गधी का रूप वनाकर उन्हे मारना चाहा तो कृष्ण ने उनके पैरो पर उन दोनो वृक्षो को ही पटक दिया।

(श्लोक ४२३)

(५) एक देवी ने घोडी का रूप वनाकर उन्हे मारने की चेष्टा की तो कृष्ण ने उसे वहुत प्रताडित किया। (श्लोक ४२४)

इस प्रकार परास्त होकर सातो देवियाँ कस के पास जाकर वोली कि हम उसे नही मार सकती और वे अतर्धान हो गई। (श्लोक ४२५)

इस प्रकार कृष्ण को मारने के लिए कस सात देवियो को भेजता है।

आस-पास के लोगो ने वृक्ष गिरने की आवाज सुनी तो दौडे आए। यशोदा का भी ध्यान भग हुआ। उसने देखा कि गिरे वृक्षों के मध्य मे श्रीकृष्ण बैठे है। उसने बढकर शिशु को उठाया। मस्तक पर चुबन किया और प्यार से गोदी मे चिपका लिया। यशोदा के हृदय मे हूक सी उठी—मेरी असावधानी से आज कृष्ण को कुछ हो गया होता तो · · !

लोगो ने भी कृष्ण की कमर मे बँधी रस्सी को देखकर उन्हे दामोदर नाम से पुकारा। सभी लोग उनको अतिबली समझने लगे। पूरे गोकुल मे उनके चमत्कारो की चर्चा होने लगी।

यशोदा ने उस दिन से कृष्ण को एक क्षण के लिए भी आँखो से ओझल न होने देने का निश्चय कर लिया। अब कृष्ण सदा ही उसके समीप रहते। वह दही मथकर मक्खन निकालती तो वे मथानी से मक्खन ले-लेकर खाते किन्तु स्नेहशीला यशोदा उनसे कुछ न कहती वरन् उनकी बाल-क्रीडाओ को देख-देखकर आनन्दित होती। कृष्ण आँगन मे दौडते-फिरते और यशोदा उन्हे पकडती। कभी यशोदा कही अडोस-पडोस मे किसी कार्यवश जाती तो कृष्ण उसके पीछे-पीछे, कभी उँगली पकड कर और कभी आगे-ही-आगे दौड-दौड कर चलते।

इस प्रकार की विभिन्न क्रीडाओ मे मगन यशोदा और कृष्ण का समय व्यतीत होने लगा।

× × ×

कृष्ण द्वारा शकुनि और पूतना का वध वसुदेव से छिपा न रहा। वे अपने लघुवय पुत्र की रक्षा हेतु चिन्तित हो गए। उनके मस्तिष्क मे विचार आया—'मैने अपना पुत्र छिपाया तो था। किन्तु उसके ये चमत्कारी कार्य अवश्य ही इस रहस्य को प्रगट देगे। तब मुझे किसी न किसी प्रकार इसकी रक्षा करनी ही चाहिए।'

अनेक प्रकार से विचार करके वसुदेव ने रोहिणी सहित राम (बलभद्र) को लिवा लाने के लिए एक पुरुष भेजा। उनके आने पर वसुदेव ने अपने पुत्र राम को अपने पास बुलाया और एकान्त मे गुप्त रूप से सब कुछ समझाकर गोकुल जाने की आज्ञा दी।

—पुत्र ! कृष्ण देवकी का सातवॉ पुत्र और तुम्हारा छोटा भाई है। इसके छह पुत्रो का विछोह तो पहले ही हो गया है । अव इस सातवे पुत्र की रक्षा का भार तुम पर है।

वलदेव राम ने पिता की आज्ञा को शिरोधार्य करके विनीत शब्दो मे उत्तर दिया—

—पिताजी ! आप कृष्ण की ओर से निश्चित हो जाइये। मैं उसकी रक्षा अपने प्राणो से भी अधिक करूँगा। मेरे रहते माँ देवकी की गोद खाली नही होगी।

पिता वसुदेव ने पुत्र के सिर पर हाथ रखकर उसे आशीर्वाद दिया और आलिगन करके उसे विदा करने लगे। वलदेव को देखकर वसुदेव के हृदय से आवाज आई—

—अव ये एक और एक दो नही, एक और एक ग्यारह हो गए।

उनके हृदय मे विश्वास हो गया कि वलदेव की उपस्थिति में कृष्ण पूर्ण रूप से सुरक्षित है।

तव तक नन्द और यशोदा भी वहाँ आ गए। वसुदेव ने वलदेव को भी उन्हे अर्पित करते हुए कहा—

—नन्द ! इस पुत्र को साथ ले जाओ और अपने पुत्र की भाँति ही समझो।

—'जो आज्ञा स्वामी !' कहकर नन्द ने सिर झुकाया और वलदेव तथा यशोदा के साथ गोकुल जा पहुँचे।

वलदेव अपने छोटे भाई कृष्ण के साथ विभिन्न प्रकार की क्रीडाएँ करने लगे। ज्यो-ज्यो कृष्ण वडे होते गए वलदेव उन्हे भाँति-भाँति की युद्ध विद्याएँ सिखाने लगे। धीरे-धीरे कृष्ण धनुर्वेद आदि सभी प्रकार की युद्ध विद्याओ मे पारगत हो गए।[1] उनका वल भी प्रगट

---

१ (क) हरिवंश पुराण ३४/६४
(ख) भवभावना २२१७-२२१९

होने लगा। कभी वे वैल की पूँछ पकड लेते तो एक डग भी आगे न वढने देते। अनुज के ऐसे वल को देखकर अग्रज का हृदय प्रसन्नता से उछल-उछल पडता।

वल वढने के साथ-साथ इनकी देह काति और सुन्दरता मे भी अपार वृद्धि हुई। गोपिकाएँ उनकी ओर आकर्षित होने लगी। वे कृष्ण से मिलने और वाते करने के वहाने ढूँढती। कृष्ण को वीच मे रखकर अनेक गोपियाँ नृत्य-गीत आदि का रास रचाती। कृष्ण भी पीछे न रहते। वे भी उनके साथ मधुर आलाप करते, नृत्य-गीत आदि मे भाग लेते। वशी की मधुर तान सुनाकर उन्हे रिझाते।

जिस समय कृष्ण इस प्रकार की रास-लीलाएँ करते वलदेव हाथो की ताली वजा-वजाकर नाट्याचार्य का कर्तव्य निभाते।

इस प्रकार कृष्ण-वलदेव दोनो का समय गोकुल मे सुख और आनन्द से व्यतीत हो रहा था।

कृष्ण गोपियो के कठहार, साथी ग्वाल-वालो के नायक और नन्द-यशोदा की आँखो के तारे थे।

सम्पूर्ण गोकुल ही कृष्ण का दीवाना था। मनुष्य तो मनुष्य गौएँ भी उनसे प्रेम करती। उनकी वाँसुरी की तान पर दौडी आती और अपना प्रेम-प्रदर्शित करती।

श्रीकृष्ण ग्यारह वर्ष की आयु मे ही गोकुल के नायक वन चुके थे।

—त्रिषष्टि० ८/५

—उत्तरपुराण ७०।४१२-४२६

❀

५ बाल क्रीड़ा में परोपकार

—निमित्तज्ञ ! देवकी का सातवाँ गर्भ मेरा काल है, यह कथन सत्य है या मिथ्या ?—कस ने निमित्तज्ञानी से पूछा ।

—राजन् ! निस्पृह श्रमणो के वचन कभी मिथ्या नही होते । —निमित्तज्ञ ने दृढतापूर्वक उत्तर दिया ।

—वह नकटी बालिका मुझे क्या मारेगी ?

—आप भूल रहे है नरेश ! नकटी बालिका देवकी का सातवाँ गर्भ नही है ।[1]

—तुम कैसे कह सकते हो ?

—अपने निमित्तज्ञान के आधार पर ।

—क्यो ?

—महाराज ! उस बालिका का कोई भी लक्षण वसुदेव-देवकी से नही मिलता । इसके अतिरिक्त और भी कारण है ।

—तो क्या कहता है तुम्हारा निमित्तज्ञान, देवकी के सातवे गर्भ के सबध मे ?

—वह जीवित है और आसपास ही कही वृद्धि पा रहा है ।

—अपनी विद्या से उसका पता लगाओ ।—कस ने निमित्तज्ञ को आदेश दिया ।

---

१ यह बालिका नन्द और यशोदा की थी जिसे वसुदेवजी गोकुल से ले आए थे और कस ने इसकी नाक वसुदेव की पुत्री समझ कर काट दी थी ।

आदेश पाकर निमित्तज्ञ तो अपनी गणना मे लगा और कस विचार-मग्न हो गया। आज ही तो वह देवकी के पास अचानक ही घूमता-घामता जा पहुँचा था और उस नकटी वालिका को देखकर उसे 'देवकी का सातवाँ गर्भ मुझे मारेगा' इस वात की स्मृति हो आई थी। इसी कारण उसने निमित्तज्ञ को वुलवाकर अपने हृदय की शका दूर करने का प्रयास किया था।[1] अव निमित्तज्ञ के यह कहने पर कि 'सातवाँ गर्भ किसी अन्य स्थान पर अभिवृद्धि पा रहा है' उसकी चिन्ता और भी वढ गई थी। कस अपने हृदय मे अपने शत्रु से निपटने की योजनाएँ वनाने लगा; तभी निमित्तज्ञ ने सिर ऊँचा करके कहा—

—राजन्! मुनि का कथन अटल सत्य है। आपका शत्रु गोकुल मे अभिवृद्धि पा रहा है।

कंस ने सावधान होकर निमित्तज्ञ के कथन को सुना और पूछने लगा—

—उसकी पहिचान क्या है?

निमित्तज्ञ ने वताया—

---

१. (क) भवभावना २३४७ से २३५०

(ख) श्रीमद्‌भागवत मे यह सूचना कस को योगमाया द्वारा दिलवाई है। योगमाया श्रीकृष्ण की माया है और नद के घर कन्या रूप मे उत्पन्न हुई थी। उसे वसुदेवजी ले आते है और कस उस कन्या को मारने के लिए उद्यत होता है तो वह कस के हाथ से छूट कर आकाश मे उड जाती है और भविष्यवाणी करती है—

अरे मूर्ख! मुझे मारने मे तुझे क्या मिलेगा? तेरे पूर्वजन्म का शत्रु तुझे मारने के लिए किसी स्थान पर उत्पन्न हो चुका है।

(श्रीमद्‌भागवत, दशवा स्कन्ध, अध्याय ४, श्लोक १२)

इसी कारण कस ने शकुनि, पूतना आदि को गोकुल के सभी नवजात शिशुओ की हत्या करने भेजा था।

—यदि आप उसकी परीक्षा लेना ही चाहते है तो अरिष्ट नामक अपने शक्ति सम्पन्न वृषभ, केशी नामक अश्व और दुर्दान्त खर तथा मेष को वृन्दावन मे खुला छोड दीजिए। जो इनको यमपुर पहुंचा दे वही आपका काल है।[1]

निमित्तज्ञ ही आगे वोला—

—इसके अतिरिक्त भी वह महाक्रूर कालिय नाग का दमन करेगा और आपके पद्मोत्तर व चपक नाम के हाथियो को भी मारेगा। वही पुरुष एक दिन आपके भी प्राणो का ग्राहक वन जायेगा।[2]

निमित्तज्ञ के वचन सुनकर कस ने अरिष्ट वृषभ, केशी अश्व, खर और मेष को वृन्दावन मे खुला छुडवा दिया तथा अपने दोनो मल्लो—मुष्टिक और चाणूर को आज्ञा दी कि 'मल्लविद्या का अभ्यास करके तैयार रहो।'

मथुरा मे मुष्टिक और चाणूर मल्लयुद्ध का अभ्यास करने लगे और वृन्दावन मे आकर उन चारो दुष्ट पशुओ ने उत्पात खडा कर दिया। उनके उत्पात से गो-पालक वडे दु खी हुए। अरिष्ट वृषभ तो साक्षात् अरिष्ट ही था। वह अपने सीगो से गायो को उछालता और मार डालता। ग्वालो ने दोनो भाइयो से आकर पुकार की—हे कृष्ण ! हे वलदेव ! हमारी रक्षा करो। एक बैल हमारी गायो के प्राणो का ग्राहक वन गया है। वह सभी गौओ को नष्ट किये डालता है।

श्रीकृष्ण तुरन्त ग्वाल-वालो के साथ चल पडे। उस समय अनेक वृद्ध जनो ने कहा—'कृष्ण ! तुम मत जाओ। हमे गाय नही चाहिए।' किन्तु कृष्ण रुके नही और वही जा पहुँचे जहाँ यमराज के समान अरिष्ट वृषभ खडा था।

वृषभ को देखते ही कृष्ण ने हुकार करके उसे अपने पास वुलाया। वैल आया तो सही किन्तु सहज रूप मे नही, क्रोधित मुद्रा मे। उसने

---

१ भवभावना २३५२–२३५६

२ भवभावना २३५७–२३५९

सीग नीचे किये और गरदन झुकाकर कृष्ण की ओर दौड लगा दी। कृष्ण भी गाफिल नही थे। उन्होने क्रोधावेग मे दौडते हुए बैल के सीग कस कर पकड लिए। वृषभ की गति उसी प्रकार रुक गई जैसे कि नदी की धारा पहाड से रुक जाती है। बैल ने पीछे हटकर टक्कर देने का प्रयास किया किन्तु महाबलशाली कृष्ण की मजबूत पकड ने उसे एक इच भी आगे-पीछे न हटने दिया। जब इधर-उधर न हट सका वृषभ तो पूँछ फटकारने लगा। उसके नथुनो से क्रोध की फुकारे निकलने लगी और आँखो से चिनगारियाँ।

अब कृष्ण ने उसकी गरदन को नीचे की ओर झटका तो बैल के पिछले दोनो पैर भूमि से ऊपर उठ गए और अगले पाँव घुटनो से मुड गए। तनिक सी मरोड से फुकारें नि श्वासो मे बदल गई। वृषभ अरिप्ट ने दम तोड दिया। उसे मरा जान श्रीकृष्ण ने उसके सीग छोड दिए। बैल का शव भूमि पर गिर गया।

सभी ग्वाल-बाल अरिष्ट वृषभ[1] की मृत्यु से प्रसन्न हो गए और कृष्ण की प्रशंसा करने लगे।

१ (क) भवभावना २३६८-२३७५

(ख) श्रीमद्भागवत मे अरिप्ट वृषभ को वत्सासुर के नाम से सम्बोधित किया गया है। सक्षिप्त कथानक इस प्रकार है—

एक दिन गाय चराते हुए श्रीकृष्ण ने देखा कि एक दैत्य आया और बछडे का रूप बना कर गायो के झु ड मे मिल गया है। कृष्ण आँखो के इशारे से बलरामजी को दिखाते हुए इस बछडे के पास पहुँचे और उसकी पूँछ तथा पिछले पैरो को पकड कर उसे आकाश मे घुमाने लगे। जब वह मर गया तो उसे कैथ के वृक्ष पर फेंक दिया। दैत्य का लम्बा तगडा शरीर बहुत से कैथ वृक्षो को गिरा कर स्वय भी पृथ्वी पर गिर पडा।

(श्रीमद्भागवत स्कन्ध १०, अध्याय ११, श्लोक ४१-४४)

(ग) उत्तर पुराण मे अरिप्ट नाम का देव कृष्ण के बल की परीक्षा लेने के लिए बैल का रूप रखकर आया है। कृष्ण उसकी गरदन मरोडने लगते हैं किन्तु देवकी उसे छुडवा देती है। (श्लोक ४२७-२८)

कस का केशी नाम का बलवान अश्व भी अपने करतब दिखाने लगा। वह भी गायो को भयभीत करता। श्रीकृष्ण ने अपना वज्र समान हाथ उसके मुख में बलपूर्वक डाल दिया और साँस रुक जाने से उसका प्राणान्त हो गया।

इसी प्रकार खर[1] और मेष भी उपद्रव करते हुए श्री कृष्ण के बलिष्ठ हाथो से मारे गए।

---

१ (क) भवभावना २३८१।

(ख) खर की तुलना श्रीमद्भागवत के धेनुकासुर मे की जा सकती है। इतना भेद अवश्य है कि धेनुकासुर का वध बलरामजी के हाथो से होता है किन्तु उसके अन्य साथियो का वध दोनो भाई मिल कर करते हैं। सक्षिप्त कथानक निम्न प्रकार है—

एक दिन श्रीदामा (कृष्ण के साथी ग्वाल-बाल) ने कहा कि समीप ही एक ताल वन है। उसमे बडे अच्छे-अच्छे रसीले फलवाले वृक्ष हैं। किन्तु उसकी रक्षा धेनुकासुर करता है। वह गधे का रूप बना कर रहता है। यदि तुम उसे मार दो तो हम लोग फल खा सकते हैं।

यह सुनकर कृष्ण-बलराम दोनो भाई सभी ग्वाल-बालो के साथ ताल वन पहुँचे। बलराम ने एक वृक्ष को हिला कर पके फल गिराए। तभी गधे का रूप धारण किए हुए धेनुकासुर वहाँ आया और उसने बलराम जी की छाती मे बडी जोर की दुलत्ती मारी। जब उसने दुबारा दुलत्ती चलाने का प्रयास किया तो बलरामजी ने उसकी पिछली टाँगे पकड ली और घुमा कर ताल वृक्षो पर दे मारा। असुर के प्राण पखेरू उड गए। उसका शरीर कई वृक्षो को गिराता हुआ भूमि पर आ गिरा। उसके सभी भाई-बन्धु (सब के सब गधे) बलराम पर टूट पडे। तब दोनो भाइयो ने उन सब को मार कर ताल वन को निष्कटक कर दिया।

(श्रीमद्भागवत स्कन्ध १०, अध्याय १५, श्लोक २०-४०)

'जो कोई पुरुप शार्ङ्ग धनुप को चढा देगा उसके साथ ही देवागना जैसी सुन्दरी सत्यभामा का विवाह कर दिया जायगा।' यह उद्घोषणा कस की आज्ञा से मथुरा नगरी मे प्रसारित कराई जा रही थी।

सत्यभामा जैसी सुन्दरी के लोभ मे अनेक राजा और राजपुत्र आए किन्तु धनुप कोई न चढा सका।

वसुदेव की अन्य पत्नी मदनवेगा से उत्पन्न पुत्र अनाधृष्टि ने भी शौर्यपुर मे यह घोषणा सुनी। वह भी सत्यभामा को प्राप्त करने की इच्छा से प्रेरित होकर चल दिया और सीधा गोकुल जा पहुँचा।

गोकुल मे रात्रि विश्राम के लिए वह नन्द के घर रुका। वहाँ उसने कृष्ण के अद्भुत चमत्कारी कार्य सुने तो उन्हे मथुरा का मार्ग वताने के लिए अपने साथ ही रथ पर विठा लिया।[1]

गोकुल से मथुरा का मार्ग सकीर्ण था। रथ दोनो ओर के वृक्षो से अटक-अटक कर निकल रहा था। एक वार वड़ का विशाल वृक्ष ही अड़ गया। रथ का पहिया अटक गया। विना वृक्ष को उखाडे रथ का निकलना सभव ही नही था। अनाधृष्टि ने कई प्रकार से प्रयास किया किन्तु सफलता नही मिली। अन्त मे उतरा और वह वृक्ष को उखाडने लगा।

वट वृक्ष साधारण नही था जो उखड जाता। अनाधृष्टि पसीना-पसीना हो गया, उसने अपनी पूरी शक्ति लगा दी किन्तु वृक्ष टस से मस न हुआ। निराश होकर वगले झाँकने लगा।

---

१ भागवत १०/३६/१-३६। यहाँ कृष्ण और वलराम दोनो ही अक्रूर के साथ मथुरा को जाते हैं।

अनाधृष्टि को निराश देखकर कृष्ण रथ से उतरे और लीलामात्र मे वृक्ष को उखाड कर एक ओर फेंक दिया। अनाधृष्टि ने पराक्रमी कृष्ण को प्रसन्न होकर कठ से लगा लिया। स्वजन की वीरता किसे आनदित नही करती ?

रथ पुन चलने लगा। यमुना नदी को पार करके मथुरा मे प्रवेश किया और सीधे धनुपवाली सभा मे जा पहुँचे।

सभा के मध्य मे शार्ङ्ग धनुष रखा हुआ था और समीप ही मच पर सर्वांग सुन्दरी सत्यभामा आसीन थी। वह कृष्ण की ओर सतृष्ण दृष्टि से देखने लगी। उसके हृदय मे कामदेव जाग्रत हो गया। मन ही मन उसने कृष्ण को अपना पति मान लिया।

मण्डप मे बैठे उपस्थित राजाओ के समक्ष अनाधृष्टि रथ से उतरा और धनुष की ओर चला। अभी वह धनुष के पास पहुँचा भी न था कि उसका पैर फिसल गया और गिर पडा। उसका हार टूट गया, मुकट भग हो गया और कुण्डल गिर पडे।

गिरते हुए को देखकर जमाना सदा से हँसता आया है। सत्यभामा तो मन्द-मन्द मुस्करा कर ही रह गई किन्तु सभी उपस्थित राजा खिल-खिला कर हँस पडे। अनाधृष्टि के मुख पर खीझ के भाव उभर आए।

कृष्ण इस उपहासास्पद स्थिति को न सह सके। वे तुरन्त रथ से उतरे और पुष्पमाला के समान ही शार्ङ्ग धनुप को उठाकर उस पर प्रत्यचा चढा दी।[1]

राजाओ की खिलखिलाहट आश्चर्य मे वदल गई। वे आश्चर्य चकित होकर कृष्ण की ओर देखने लगे। सत्यभामा की मनोभावना सत्य हो गई।

सभी को आश्चर्यचकित छोडकर कृष्ण रथ मे जा बैठे और

---

१ भागवत १०/४२/१५-२१ यहाँ इतना और है कि—

जव धनुप के रक्षक असुरो और कस की सेना ने उनका विरोध किया तो उन्होने धनुष को तोड डाला। उसके टुकडो से सब को मार गिराया।

अपनी झेंप छिपाने के लिए अनाधृष्टि भी। रथ धनुष की सभा से निकला और वसुदेव के निवास स्थान पर जा पहुँचा। अनावृष्टि ने कृष्ण को वाहर ही रथ मे बैठा छोडा और अन्दर जाकर पिता वसुदेव से बोला—

—पिताजी! जिस शार्ङ्ग धनुष को अन्य राजा छू भी न सके थे, मैंने उसे चढा दिया।

यह सुनते ही वसुदेव ने तुरन्त कहा—

—तुम शीघ्र ही मथुरा नगरी से वाहर निकल जाओ। यदि कस को मालूम हो गया तो तुम्हे जीवित नही छोडेगा।

पिता की वात सुनकर अनाधृष्टि भयभीत हो गया। उल्टे पैरो ही लौटा और रथ पर चढकर गोकुल की ओर चल दिया।

गोकुल मे कृष्ण और वलदेव से विदा लेकर अनाधृष्टि शौर्यपुर चला गया।

सर्वत्र यह वार्ता प्रसारित हो गई कि नन्द के पुत्र ने शार्ङ्ग धनुष चढा दिया।[1]

---

१ जिनसेन के हरिवश पुराण मे यह प्रसग अन्य रूप मे वर्णित किया गया है। सक्षिप्त घटनाक्रम निम्न प्रकार है—

कस गोकुल गया परन्तु कृष्ण उसे वहाँ नही मिले। तव वह लौट कर मथुरा आ गया। उसी समय मथुरा मे सिंहवाहिनी, नागशय्या, अजितजय नामक धनुष और पाचजन्य नामक शख—ये तीन दिव्य पदार्थ प्रगट हुए। कस ने इनका फल ज्योतिषी से पूछा तो उसने वताया—'जो पुरुष नागशय्या पर चढ कर धनुष की डोरी चढा दे और पाचजन्य शख को फूँक दे, वही तुम्हारा शत्रु है।'

कस ने उद्घोषणा करा दी कि 'जो पुरुष नागशय्या पर चढ कर धनुष की प्रत्यचा चढा देगा और पाचजन्य शख को वजा देगा उसे राजा कस अपना मित्र समझकर अलभ्य-इष्ट वस्तु देगा तथा उसे सबके पराक्रम को पराजित करने वाला समझा जायगा।'

इस घोषणा से आकृष्ट होकर अनेक राजा आए पर सफलता किसी को भी न मिली। सभी लज्जित होकर चले गए।

'शार्ङ्ग धनुप नन्द के पुत्र ने चढा दिया है।' यह सुनते ही कस के प्राण आधे रह गये। उसे वहुत शोक हुआ। प्रत्यक्ष रूप से तो वह कुछ कर नही सकता था अत उसने प्रच्छन्न रूप से कृष्ण को नष्ट करने की योजना वनाई। उसने घोपणा कराई—शार्ङ्ग धनुप के महोत्सव की और उसमे वाहुयुद्ध का आयोजन रखा गया।

कस की इस कुटिल योजना को वसुदेव समझ गए। उन्होने अपने सभी ज्येष्ठ वन्धु तथा अक्रूर आदि पुत्र वुला लिए। कस ने सभी यादवो का उचित सत्कार किया और एक ऊँचे मच पर सम्मानपूर्वक आसन दिया।

× × × ×

मल्लयुद्ध उत्सव का समाचार वृन्दावन भी पहुँचा। कृष्ण ने अग्रज वलराम से कहा—

—भैया! हम भी मथुरा चलकर उत्सव देखे।

वलराम अनुज की भावना को समझ गए। उन्होने कृष्ण की इच्छा स्वीकार करके यशोदा से स्नान के लिए पानी तैयार करने को कहा।

एक दिन जीवयशा का भाई भानु किसी कार्यवश गोकुल गया। वहाँ वह कृष्ण का पराक्रम देखकर वहुत प्रसन्न हुआ और उन्हे अपने साथ मथुरा ले गया।

कृष्ण ने कस की उद्घोपणा की तीनो शर्ते पूरी कर दी। उनके अपार पराक्रम को देखकर वलराम के हृदय मे शका हुई और उन्होने उसी समय अपने विश्वस्त साथियो के साथ कृष्ण को व्रज भेज दिया।

(हरिवश पुराण ३५/७१-७६)

विशेष—यही वर्णन उत्तर पुराण मे भी है (७०/४४५-४५५) वस इतनी विशेपता है कि कृष्ण सुभानु (कस का साला) के सकेत से व्रज चले गए।

यशोदा ने बलराम की बात अनसुनी कर दी। वह आलस्यवश बैठी रह गई। कुछ क्षण तो बलराम प्रतीक्षा करते रहे और फिर उनका स्वामी-भाव जाग उठा। त्यौरी चढाकर रूखे स्वर मे बोले—

—यशोदा! क्या तू अपना पूर्व दासी-भाव भूल गई। जो हमारी आज्ञा-पालन मे विलम्ब कर रही है।

'दासी' शब्द श्रीकृष्ण के कलेजे मे तीर की तरह चुभ गया। उनका मुख मुरझा गया। यशोदा को स्वप्न मे भी आशा न थी ऐसी बात सुनने की। वह अवाक् रह गई! पुत्र के समान आयु वाले बलराम के एक ही शब्द ने आज स्वामी-सेवक सबध उसके सामने लाकर खडा कर दिया। वह तो भूल ही चुकी थी कि कृष्ण उसके स्वामी का पुत्र है। कृष्ण के एक 'मैया' शब्द ने उसे मातृत्व के गौरव से विभूषित कर दिया था। किन्तु स्वामी, स्वामी ही रहता है, उसके पुत्र भी स्वामी होते है और सेवक सदा सेवक ही; चाहे वह अपने उदर के शिशु का भी स्वामी के लिए बलिदान कर दे।

यशोदा इन विचारो मे खोई रही। बलराम ने कृष्ण से कहा—

—चलो यमुना मे स्नान कर आये।

कृष्ण अग्रज के पीछे-पीछे चल तो दिए किन्तु उनके कदम पीछे को लौट रहे थे, हृदय शोकाकुल था। यमुना तट पर पहुँच कर बलराम ने देखा कि अनुज का मुख उतरा हुआ है। प्यार से बोले—

—कृष्ण! तुम्हारा मुख निस्तेज क्यो है?

—मेरी माता को आप दासी कहे और मैं सुनकर प्रसन्न हो जाऊँ, यही चाहते है, आप?

बलराम अनुज के आक्रोश का कारण समझ गए। समझाने लगे—

—भद्र! अभी तुम्हे इस रहस्य का ज्ञान नही है।

—क्या रहस्य है, बताइये।

कृष्ण को अग्रज बलराम ने प्रारम्भ से अन्त तक पूरी घटना बता दी और कहा—

—भैया ! यशोदा तुम्हारी माता नहीं है वह तो केवल तुम्हे पालने वाली है ।

इसके पश्चात् बलराम ने देवकी के छह पुत्रो की कस के द्वारा मृत्यु का समाचार सुना दिया । भ्रातृ-वध सुनते ही कृष्ण कोपित हो गए और उसी समय कस को मारने की प्रतिज्ञा कर ली । किन्तु बलराम से फिर भी यह वचन ले लिया कि वे भविष्य मे यशोदा को न दासी कहेगे और न उनके प्रति ऐसे विचार रखेंगे ।

दोनो भाई स्नान करने के लिए यमुना मे उतरे । वहाँ कालिया नाम का नाग रहता था । वह कृष्ण को दश मारने के लिए दौडा । उस महाभयकर सर्प के फण की मणि से प्रकाश निकल रहा था । जल के अन्दर प्रकाश देखकर बलराम सभ्रमित रह गए । तब तक नाग कृष्ण के पास आ चुका था । कृष्ण ने उसे कमलनाल के समान पकड़ लिया और उसकी नासिका नाथ कर कुछ देर तक उसके साथ क्रीडा करते रहे । जब नाग निर्जीव हो गया तो श्रीकृष्ण बाहर निकल आए ।[1]

१ (क) हरिवश पुराण के अनुसार यह प्रसग इस प्रकार है :—

कृष्ण का अन्त करने की भावना से कस ने गोकुल वासियो को एक विशेष कमल लाने का आदेश दिया । यह कमल उस ह्रद मे था जहाँ अनेक विषधर सर्प लहराते रहते थे । इस कारण वह स्थान सामान्य पुरुषो के लिए दुर्गम था ।

उस ह्रद मे श्रीकृष्ण अनायास ही प्रवेश कर गए । उनके प्रवेश से कालिय नाग कुपित हो गया । वह महा भयकर था । उसके फण पर मणियो के समूह से अग्नि-स्फुलिंग जैसे निकल रहे थे । उस भयकर विषधर का कृष्ण ने शीघ्र ही मर्दन कर डाला और कमल को तोड कर शीघ्र ही तट पर आ गए ।

गोपो ने कृष्ण की जय-जयकार की और वे कमल कस के सामने उपस्थित किए गए । उन्हे देखकर कस घबडा गया ।

किनारे पर कौतुक देखते हुए लोगो को वही छोडकर कृष्ण-बलराम दोनो भाई मथुरा की ओर चल दिये ।

—त्रिपष्टि० ८/५

—उत्तर पुराण ७०/४३६-४७४

उसने आज्ञा दी कि नन्द के पुत्र सहित सभी गोप अविलब युद्ध के लिए तैयार हो जायें ।

(हरिवंश पुराण ३६/६-१० एव उत्तर पुराण ७०/४६२-४७१)

(ख) श्रीमद्भागवत मे कालियानाग की कथा विस्तार से दी गई है। कालिय का सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है —

नागो का निवास स्थान रमणक द्वीप था ।

गरुडजी की माता विनता और सर्पो की माता कद्रू मे परस्पर शत्रुता थी । माता के वैर के कारण गरुडजी जिस नाग को देखते उसे खा जाते । तब व्याकुल होकर सर्पो ने ब्रह्माजी की शरण ली । ब्रह्माजी ने निर्णय कर दिया कि सर्प परिवार प्रत्येक अमावस्या के दिन एक सर्प गरुडजी की भेट करे और गरुड सर्पो का हनन करना छोड दे ।

इस निर्णय के अनुसार गरुड को प्रति अमावस्या एक सर्प मिल जाता किन्तु यह कालिय नाग वडा घमण्डी था । इसके १०१ फण थे और विष भी अत्यधिक । यह गरुड को दिए जाने वाले नाग को भी खा जाता ।

यह जान कर गरुडजी को वडा क्रोध आया । इसलिये गरुड ने इस नाग को मार डालने के विचार से उस पर आक्रमण किया । कालिय भी प्रस्तुत था । उसने अपने १०१ मुखो से गरुडजी के शरीर मे विष व्याप्त कर दिया । गरुड ने अपने पख से इसे घायल कर दिया ।

विह्वल होकर गरुड जी तो विष्णु के पास जा पहुचे और घायल कालिय यमुना के इस द्रह मे आ छिपा । यह द्रह (यमुना का

कुण्ड) इतना गहरा था कि न गरुड ही आ सकते थे और न अन्य साधारण व्यक्ति ही ।

× × ×

अन्यदा एक वार इस कुण्ड के जल मे मे क्षुधातुर गरुड ने एक मत्स्य को वलपूर्वक पकड कर खा लिया । अपने मुखिया मत्स्यराज की मृत्यु से मछलियो को वडा दुख हुआ । उन्होंने महर्षि सौभरि से पुकार की । महर्षि ने मछलियो की भलाई के लिए गरुड को शाप दिया—'यदि गरुड फिर कभी इस कुण्ड मे प्रवेश करके मछलियो को खाएँगे तो उसी समय प्राणो से हाथ धो वैठेगे ।'

इस शाप की वात कालिय नाग जानता था अत उसने इस कुण्ड को अपना स्थायी निवास वना लिया ।

[श्रीमद्भागवत स्कन्ध १०, अध्याय १७, श्लोक १-१२]

जिस कुण्ड मे कालिय नाग का निवास था । उस स्थान का जल नाग के विष की गर्मी से उवलता रहता था । इसके ऊपर से आकाश मे जाने वाले पक्षी भी झुलस कर मर जाते थे । इस विषैले जल से वायु भी दूषित हो गई थी और आस-पास के घास-पात वृक्ष आदि भी जल कर नष्ट हो गए थे । तव श्रीकृष्ण ने यमुना के जल को शुद्ध करने का निश्चय किया ।

वे एक ऊँचे कदम्ब के वृक्ष पर चढे और कुण्ड मे कूद पडे । उन्होंने जल को मथ डाला । तव कुपित होकर कालिय नाग उनके सम्मुख आया । नाग ने वालक कृष्ण को अपने पाश मे वॉध लिया ।

तव तक गोकुल से गोप, ग्वाल-वाल सभी निवासी वहाँ जा पहुँचे । कृष्ण को नाग पाश मे निश्चेष्ट पडा देख कर गोकुल वासी वडे दुखी हुए और विलाप करने लगे ।

उनके दुख को दूर करने के लिए कृष्ण ने अपना वल दिखाया और शरीर को वहुत फुला लिया । इससे नाग को कष्ट

होने लगा और उसने अपने बन्धन ढीले कर दिये। इसके पश्चात् कृष्ण अपने चरण से सर्प के फणो पर आघात करने लगे। सर्प पीडित होकर अचेत हो गया।

अपने पति की प्राण रक्षा के लिए नाग-पत्नियो ने श्रीकृष्ण से प्रार्थना की। नाग ने भी सचेत होकर दया की भीख माँगी। तब कृष्ण ने उससे कहा—'तुम रमणक द्वीप वापिस जाओ। अब तुम्हारा शरीर मेरे चरण-चिन्हो से अकित हो गया है इसलिए गरुड तुमको नही खाएँगे।'

कालिय नाग अपने परिवार सहित रमणक द्वीप चला गया और यमुना का जल शुद्ध हो गया।

(श्रीमद्भागवत, स्कन्ध १०, अ० १६, श्लोक, १-६७)

कंस-वध

७

मथुरा नगरी के द्वार पर ही उनके स्वागत के लिए कस की आज्ञा से पद्मोत्तर और चपक दो मत्त गजराज खडे थे। यह स्वागत उनको प्रसन्न करने के लिए नही वरन् प्राण-हनन के लिए था।

दोनो भाइयो के समीप आते ही महावतो ने हाथियो को प्रेरित किया। दोनो पशु चिघाड कर उनकी ओर दौड पडे। यमराज के समान मतवाले गजराजो को देखकर कृष्ण ने वलराम से कहा—

—भैया! कस नगरी के द्वार पर यमराज हमारा स्वागत करने दौडे आ रहे है।

—हम भी तैयार है; अभी यमराजो को यमपुरी पहुँचाये देते है। —वलराम ने हँसकर कहा।

तव तक दोनो गजेन्द्र समीप आ गए। पद्मोत्तर गज कृष्ण के सम्मुख आ गया और चम्पक वलराम के।

श्रीकृष्ण ने उछल कर उसके दाँत पकडे और एक ही मुष्टिका प्रहार से प्राणहीन कर दिया। उन्होंने उसके दाँत खीचकर निकाल लिए। वलराम ने भी इसी प्रकार चम्पक को निष्प्राण कर दिया। दोनो के अतुलित वल को देखकर नगरवासी चकित रह गए।[1]

---

१ श्रीमद्भागवत मे एक ही हाथी 'कुवलयापीड' नाम का वताया गया है। यहाँ वह रगभूमि (मल्लयुद्ध के अखाडे के चारो ओर वना हुआ मडप जहाँ सभी दर्शक, राजाओ आदि के वैठने का स्थान था) के द्वार पर खडा दिखाया गया है।

श्रीकृष्ण ने रगभूमि के दरवाजे पर कुवलयापीड हाथी को खडा देखा तो महावत से वोले—'हमे शीघ्र ही रास्ता दे, अन्यथा हम तुझे

नगरजन परस्पर बातचीत करते हुए बताने लगे कि ये ही अरिष्ट वृषभ आदि को मारने वाले नन्द के पुत्र हैं।

दोनो भाई मल्लो के अखाडे मे पहुँचे और रिक्त आसनो पर जा जमे। बलराम ने सकेत से कृष्ण को उपस्थित सभी राजाओ का परिचय दे दिया। रगभूमि के ऊँचे मच पर समुद्रविजय आदि सभी दशार्ह राजा विराजमान थे। बलराम ने उनको भी सकेत से दिखा दिया।

कृष्ण की ओर सबकी दृष्टि उठ गई। वे सोचने लगे—'यह देव समान पुरुष कौन है ?' तभी कस ने आज्ञा दी—

—मल्लयुद्ध प्रारम्भ किया जाय।

मल्ल अखाडे मे उतरे और युद्ध करने लगे। अनेक प्रकार के दाँव और कौशलो को देखकर दर्शक आनन्दित हो रहे थे। कभी एक मल्ल नीचे तो दूसरे ही क्षण वह ऊपर दिखाई देता। अनेक जीते और अनेक हारे। किसी ने दर्शको की प्रशसा पाई तो किसी ने भर्त्सना। मल्ल अपना कौशल दिखाकर चले गए। अन्त मे रिक्त अखाडे के अन्दर कस की प्रेरणा से चाणूर उतरा और ताल ठोककर कहने लगा—

—मुझ से युद्ध करने के लिए कोई पुरुष आवे।

चाणूर का पर्वत समान डील-डौल वैसे ही भय उत्पन्न करने वाला था। समस्त मण्डप मे मौन छा गया। किसी को उसकी चुनौती स्वीकार करने का साहस न हुआ। चाणूर ने दुबारा गर्जना की—

—है कोई वीर ?

और इस हाथी को मार डालेंगे।' इस बात पर चिढकर महावत ने हाथी को आगे बढा दिया। कृष्ण ने कुछ देर तक तो पूँछ पकड कर हाथी को थकाया और फिर सूँड पकड कर उसे जमीन पर दे मारा और उसके दाँत उखाड लिए। उन्ही दाँतो के प्रहार से हाथी और महावतो का काम तमाम कर दिया। (१०/४३/२-१४)

अव भी सभा शान्त थी। मानो सवको साँप सूँघ गया। चाणूर ने पुन अभिमानपूर्ण शब्दो मे कहा—

—मैं तो समझता था कोई न कोई वीर होगा ही किन्तु यहाँ उपस्थित सभी जन कायर है।

चाणूर की गर्वोक्ति कृष्ण से न सही गई। वे सिह के समान अखाडे मे कूद पडे और चाणूर के सामने ताल ठोक दी। आस्फोट का स्वर दिशाओ मे गूँज गया। चाणूर और कृष्ण अखाड़े मे आमने-सामने खडे थे।

'यह चाणूर आयु और वल मे वहुत वडा हुआ है। यह मल्ल युद्ध से अपनी जीविका कमाने वाला और वडा कूर है। इसके सम्मुख दुधमुँहा वालक ! यह मुकाविला अनुचित है। यह नही होना चाहिए ? —दर्शको ने कोलाहल किया।

—ऐसा ही सुकुमार है यह वालक तो अखाडे मे क्यो कूद पडा ? —कस ने कुपित होकर कहा।

—किन्तु यह युद्ध असमान है। युद्ध वरावर वालो मे उचित होता है। —दर्शको की आवाज आई।

कस ने सवको शान्त करते हुए कहा—

—आप लोगो का कथन यथार्थ है। किन्तु मल्ल युद्ध के नियमानुसार स्वेच्छा से अखाडे मे उतरे हुए मल्लो मे युद्ध होना अनिवार्य है। यदि इस वालक को पीडा हो तो मुझ से प्रार्थना करे मैं इसे छुडा दूँगा। इस समय तो कुश्ती होगी ही।

कस के आश्वासन से दर्शक चुप हो गए। कृष्ण ने उच्च स्वर से दर्शको को सुनाते हुए कहा—

—यह चाणूर मल्ल राजपिड खाकर हाथी के समान मतवाला हो गया है। मैं गायो का दूध पीने वाला गोकुल का निवासी वालक हूँ। किन्तु जिस प्रकार सिह शावक मत्त गजराज को मार गिराता है उसी प्रकार मै चाणूर को भूमि मे सुला दूँगा। आप लोग देखिए।

'गोकुल का वासी वालक' शब्द सुनकर कस के कान खड़े हो गए। वह समझ गया कि यही वालक कृष्ण है। उसने तुरन्त अपने दूसरे मल्ल मुष्टिक को अखाड़े मे उतरने की आज्ञा दी।

स्वामी की आज्ञा पाकर मुष्टिक अखाडे मे उतर पडा। अव एक ओर कृष्ण अकेले थे और दूसरी दो भीमकाय पहलवान। यह सरासर अधर्म युद्ध था। वलराम इस स्थिति को न देख सके। वे अपने आसन से उछले और सीधे अखाडे मे मुष्टिक के सामने जा खडे हुए, मानो आकाश से मेघ सहित विजली आ गिरी हो। मुष्टिक स्तभित रह गया।

चाणूर कृष्ण से भिड गया परन्तु मुष्टिक को आगे बढने से वलराम ने रोक दिया। उसे विवश होकर वलराम से युद्ध करना पडा।

अव मुष्टिक वलराम से और चाणूर कृष्ण से गुँथ गए। वडी देर तक युद्ध होता रहा। न कोई जीता न कोई हारा। कृष्ण-वलराम ने चाणूर और मुष्टिक को एकाएक तृण के पूले के समान उठाया और दूर फेक दिया। साधारण पुरुष होते तो हड्डियाँ चटख जाती किन्तु वे भी मल्ल थे और वह भी विश्व-विख्यात। गिरते ही गेद के समान उछले और सीधे खडे हो गये।

पुन युद्ध होने लगा। अवकी वार दाँव लग गया मल्लो का। उन्होने दोनो भाइयो को भुजाओ पर उठा लिया और फेकने का प्रयास करने लगे तभी कृष्ण ने एक प्रवल मुष्टिका प्रहार चाणूर के वक्षस्थल पर किया। इस वज्र प्रहार से चाणूर खीझ उठा। उसने मल्ल युद्ध के नियम को ताक पर रखकर कृष्ण के उरस्थल (पेट—वक्षस्थल से नीचे का भाग) पर जवरदस्त घूँसा मारा। नाजुक स्थान पर आघात होने से कृष्ण की आँखो के आगे अँधेरा छा गया। विह्वल चाणूर भी हो चुका था। वह कृष्ण को हाथो पर सँभाल न सका और कृष्ण भूमि पर गिर गए। कुछ क्षणो के लिए उनकी चेतना विलुप्त होगई।

अच्छा अवसर देखकर कस ने चाणूर को सकेत किया कि 'इसी समय कृष्ण का प्राणान्त कर दो।' स्वामी की प्रेरणा पाते ही चाणूर

चेतना शून्य कृष्ण की ओर लपका। वलराम उसकी दुष्टेच्छा समझ गए। विजली की सी फुर्ती से आगे वढकर उन्होने ऐसा तीव्र प्रहार किया कि चाणूर को सात धनुष पीछे हट जाना पडा।

तव तक कृष्ण सचेत हो चुके थे। उन्होने चाणूर को पुन ललकारा और भुजाओ मे कसकर उसे इतने जोर से दवाया कि चाणूर की हड्डियाँ चटख गई। वलपूर्वक उसका मस्तक झुका कर ऐसा वज्रोपम मुष्टिका प्रहार किया कि चाणूर के मुख से रक्त-धारा वह निकली। वह भूमि पर गिर पडा और उसकी पुतलियाँ उलट गई। चाणूर के प्राण उसके विशालकाय शरीर से निकल भागे।

अपने मल्ल की मृत्यु से कस वहुत क्रोधित हुआ। उसने अनुचरो को आज्ञा दी—

—इन दोनो गोप-वालको को मार डालो और इनको पालने वाले नन्द का नाश कर दो।

—अरे दुष्ट चाणूर की मृत्यु के पश्चात् भी तू स्वय को मरा नही समझता। पहले अपने प्राणो की खैर मना, पीछे किसी के नाश का आदेश देना।—कुपित स्वर मे कृष्ण वोले और अखाडे से उछल कर कस के पास जा पहुँचे। कस के केश पकडकर उसे सिंहासन से खीच लिया और भूमि पर पटक कर कहने लगे—

—पापी! अपनी प्राण रक्षा के लिए तूने व्यर्थ ही गर्भ-हत्याएँ की। अव अपने पापो का फल भोग।

कस हाथी के समान भूमि पर पडा था और कृष्ण केशरी सिह के समान उसके समीप खडे थे। यह दृश्य देखकर दर्शको को वडा विस्मय हुआ। तव तक वलराम ने अपनी भुजाओ के वधन मे जकडकर मुष्टिक को श्वासरहित कर दिया।

स्वामी को सकटग्रस्त देखकर कस के अनुचर उसकी सहायता को दौडे। उनकी वाढ को रोका वलराम ने। वे मंडप के ही एक स्तम्भ को उखाड कर उनके सम्मुख खडे हो गए। उस स्तम्भ के प्रहारो से अनेक आयुधो से सुसज्जित अनुचर मक्खियो के समान भाग खडे हुए।

कृष्ण ने कस के मस्तक पर पैर रखकर उसे मार डाला और केश पकडकर सभा मडप से वाहरे फेक दिया। मानो दूध मे से मक्खी निकाल कर फेक दी।

मथुरापति कस ने पहले से ही जरासध के सैनिक वुला रखे थे। कस की मृत्यु से कुपित होकर वे कृष्ण-वलराम से युद्ध करने को आगे वढे।

अव तक मल्लयुद्ध का क्रीडास्थल प्राणघाती युद्ध का रणस्थल वन चुका था। दो निहत्थे भाइयो पर हजारो सैनिक अस्त्र-शस्त्र लेकर टूट पडे—यह समुद्रविजय आदि को सहन हो सका। जरासन्ध के सैनिको के समक्ष दशार्ह आगे वढे। उन्हे देखते ही जरासन्ध के सैनिक भाग खड़े हुए।

इस युद्धमय वातावरण से भयभीत होकर दर्शक भी अपने-अपने स्थानो को खिसक गए। सभा मडप मे नीरव शाति छा गई। तभी वसुदेव ने अनावृष्टि को कृष्ण और वलराम को घर ले जाने की आज्ञा दी।

समुद्रविजय आदि सभी भाई वसुदेव के घर पहुँचे और वहाँ सभी एकत्र होकर वैठे। वसुदेव ने अपने आधे आसन पर वलराम को विठाया और गोदी मे कृष्ण को। पुत्रो को हृदय से लगाने पर वसुदेव की आँखे भर आई। उनकी आँखो से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। वे वार-वार कृष्ण मस्तक का चुवन करने लगे।

—यह क्या ?—आश्चर्य चकित होकर वसुदेव के वडे भाइयो ने पूछा।

वसुदेव ने अतिमुक्त मुनि की भविष्यवाणी से लेकर अव तक की घटनाएँ विस्तार से सुना दी। कृष्ण वसुदेव का पुत्र है' यह जानकर सभी हर्षित हुए और उन सवने कृष्ण को अपने उत्सग मे विठाकर प्यार किया और वलराम की वारम्वार प्रशसा की।

उसी समय देवकी ने नकटी पुत्री के साथ प्रवेश किया। वह कृष्ण को अपने अक मे विठाकर प्यार करने लगी। वह कभी एक उत्सग मे

विठाकर प्रेम करती तो कभी दूसरे अक मे—मानो अव तक के विछोह की कसर अभी पूरी करना चाह रही हो। उसने कृष्ण को इतने दृढ आलिगन मे कस लिया कि वह दुवारा न विछुड जाय।

सभी यादवो ने हर्ष के आँसू वहाते हुए वसुदेव से पूछा—

—हे वसुदेव! तुम अकेले ही इस जगत को जीतने मे समर्थ हो फिर भी क्रूर कस के हाथो अपने पुत्रो की मृत्यु देखते रहे?

लम्वी साँस लेकर वसुदेव वोले—

—उसका कारण था।

—क्या?

—मेरी वचन-पालन की प्रतिज्ञा। देवकी ने और मैंने सात गर्भ कस को देने का वचन दिया था।

—और यह नकटी कन्या?—दशार्हो ने पूछा।

—यह पुत्री नन्द की है। देवकी के आग्रह से सातवाँ गर्भ मैं नन्द को दे आया था और उसकी नवजात कन्या यहाँ ले आया था। कस ने कन्या जानकर इसकी नाक काटकर ही छोड दिया।

इसके पश्चात् समुद्रविजय ने सभी भाइयो की सम्मति से राजा उग्रसेन को मुक्त किया और उनके साथ जाकर कस की अन्तिम क्रियाएँ की।

कस की सभी रानियो ने उसे जलाजलि दी किन्तु जीवयशा ने जलाजलि नही दी। उस गर्विता ने क्रोधपूर्वक प्रतिज्ञा की—

—'कृष्ण-वलराम, सभी ग्वाल-वाल और सन्तान सहित समुद्रविजय आदि दशार्हो को मृत्यु-मुख मे पहुँचाने वाद ही अपने पति को जलाजलि दूँगी अन्यथा स्वय ही अग्नि मे प्रवेश कर जाऊँगी।

यह कहकर जीवयशा मथुरा नगरी से निकल गई।

मथुरा नगरी का राज्य पुन राजा उग्रसेन को प्राप्त हुआ। उन्होने

अपनी पुत्री सत्यभामा का विवाह क्रौष्टुकि निमित्तज्ञ के द्वारा बताये गए शुभ मुहूर्त मे श्रीकृष्ण के साथ कर दिया।

—त्रिषष्टि० ८।५

—उत्तरपुराण ७०।४७५-४९७

विशेष—उत्तर पुराण के अनुसार—

१ मथुरा मे प्रवेश करते ही एक हाथी ने कृष्ण पर आक्रमण किया-जिसका उन्होंने एक दात उखाड लिया और उससे मारने लगे। हाथी डरकर दूर भाग गया। (श्लोक ४७७-४७८)

२ कस को मारने की प्रेरणा चाणूर से मल्ल युद्ध करने से पहले ही वसुदेव श्री कृष्ण को देते है—यह तुम्हारा कस को मारने का समय है। (श्लोक ४८१)

३ मुष्टिक का बलराम के साथ मल्ल युद्ध करने का उल्लेख नही है।

४ वे कस को केश पकडकर नही पाँव पकडकर घुमाते हैं और भूमि पर पटक कर मार डालते हैं।

चाणूर की मृत्यु के पश्चात् कस स्वय अखाडे मे उतरा तब कृष्ण ने उसे पैर पकड कर आकाश मे घुमाया और भूमि पर दे मारा। कस के प्राण पखेरू उड गए। (श्लोक ४९४)

द्वारका-निर्माण

८

मथुरा से चली जीवयशा तो सीधी राजगृह पहुँची। स्त्री के दो ही तो प्रमुख सहारे होते है पिता और पति। पति की मृत्यु के पश्चात् जीवयशा पिता के पास जा पहुँची।

जरासंध की राजसभा मे रोती हुई जीवयशा ने प्रवेश किया। उसके बाल खुले हुए थे, नेत्रो से अविरल अश्रुधारा बह रही थी, मुख म्लान था।

पिता ने पुत्री से रोने का कारण पूछा तो जीवयशा ने अतिमुक्त मुनि की भविष्यवाणी से लेकर कंस की मृत्यु तक पूरा वृतान्त कह सुनाया। सुनकर राजनीति निपुण जरासंध बोला—

—कस से भूल हो गई। उसे देवकी को उसी समय मार डालना चाहिए था। न रहता बॉस न बजती बासुरी। देवकी ही न होती तो गर्भ कहाँ से आते?

—उन्होने तो गर्भो की हत्या कर दी थी।—जीवयशा बोली।

—हाँ, छह हत्याएँ भी हुई और फिर भी सातवाँ गर्भ जीवित बच गया।

—यह तो वसुदेव और देवकी का छल था। उन दोनो ने मिलकर मेरे पति से विश्वासघात किया।

—उस विश्वासघात का फल अब पाएँगे। तू दुःख मत कर पुत्री! मे कस घातियो को सपरिवार नष्ट करके उनकी स्त्रियो को रुलाऊँगा।

—मैं भी यही चाहती हूँ।

—तेरी यह इच्छा पूरी होगी।—जरासंध ने पुत्री को आश्वासन देकर महल मे भेज दिया।

इसके पश्चात् उसने सोमक नाम के राजा को बुलाया और उसे सम्पूर्ण स्थिति समझाकर कहा—

—तुम राजा समुद्रविजय के पास जाओ और कृष्ण-बलराम को अपने साथ यहाँ लिवा लाओ।

स्वामी की आज्ञा पाकर राजा सोमक मथुरा आ पहुंचा। उसने मथुरा की राजसभा मे उपस्थित होकर राजा समुद्रविजय से कहा—

—राजन्! मै महाराज जरासध का सन्देश लेकर आया हूँ।

समुद्रविजय ने आदरपूर्वक राजा सोमक को आसन पर बिठाकर पूछा—

—कहिए, क्या सन्देश है?

—कृष्ण-बलराम को हमे सौप दो।

—क्यो? क्या करेगे आप उन दोनो का?

—वे हमारे स्वामी की पुत्री जीवयशा के पति कस के घातक हैं, इसलिए उन्हे उचित दण्ड दिया जायगा।

यह सुनकर एक बार तो सपूर्ण सभा कॉप गई। जरासध की क्रूरता से वे भलीभाँति परिचित थे। समुद्रविजय ने दृढतापूर्वक कहा—

—राजा सोमक! दण्ड अपराधी को दिया जाना है। कस ने कृष्ण-बलराम के निरपराध भाइयो की हत्या की थी। इसलिए भाइयो के हत्यारे कस को इन्होने मार दिया तो कोई अपराध नही किया। ये दोनो निर्दोष है।

—कृष्ण-बलराम तो अपराधी है ही, उनके साथ ही साथ वसुदेव भी अपराधी है। उन्होने कस को दिया हुआ अपना वचन भग किया और सातवे गर्भ का गोपन किया।

अब तक कृष्ण चुप बैठे थे। किन्तु पिता पर किए गए आक्षेप के कारण उनकी भ्रकुटि टेढी हो गई। उनके मुख पर क्रोध के भाव झलकने लगे। वे बोलना ही चाहते थे कि समुद्रविजय का दृढ स्वर सुनाई पडा—

—कस हत्यारा था, निरपराध-निरीह शिशुओं का क्रूर घातक। वसुदेव का उसके रक्तरंजित हाथो से शिशु को रक्षा के लिए छिपा लेना, अन्य स्थान पर पालन-पोषण करवाना, कृष्ण-बलराम का ऐसे आततायी अत्याचारी को मार डालना न धर्म-विरुद्ध है, न नीति विरुद्ध।

—किन्तु स्वामी की अवहेलना करना, उसकी आज्ञा का पालन न करना अवश्य ही नीति विरुद्ध है। —राजा सोमक ने भी दृढता से प्रत्युत्तर दिया।

अब कृष्ण चुप न रह सके। वे बीच मे ही बोल पडे—

—कौन स्वामी ? किसका स्वामी ? हम किसी स्वामी को नही जानते ?

राजा सोमक ने श्रीकृष्ण की ओर दृष्टि घुमाई। ऊपर से नीचे तक देखा—मानो बोलने से पहले युवक कृष्ण की क्षमता को तोल रहा हो। उत्तेजित होकर बोला—

—युवक ! जरासध स्वामी है, सब दशार्हो का, समस्त दक्षिण भरतार्द्ध का। आप सब उसकी आज्ञा पालन करने को बाध्य है, समझे।

—आज तक हमने उसकी इच्छा का सम्मान अपनी सज्जनतावश किया है। किन्तु उसने अत्याचारी कस का पक्ष लेकर आज से वह सम्बन्ध भी तोड दिया।

सोमक कृष्ण को तो प्रत्युत्तर दे न सका। वह समुद्रविजय को सबोधित करके बोला—

—राजन् ! यह लडका तो कुलागार है।

श्रीकृष्ण के प्रति कुलागार शब्द अनाधृष्टि न सह सका। वह क्रोधित होकर बोला—

—आपकी धृष्टतापूर्ण बाते हम बडी देर से सुन रहे है। ऐसे अमर्यादित वचन हमारे सम्मान के विरुद्ध है। आप जिस अहकार से गर्वित हो रहे है उसे हम शीघ्र ही नष्ट कर देगे।

राजा सोमक समझ गया कि वात किसी भी प्रकार वन नही सकती। वात का वतगड वन रहा है। वह वहाँ से चुपचाप उठा और समुद्रविजय से विदा लेकर चल दिया।

सोमक तो अपमानित होकर चला गया किन्तु दशार्ह राजा समुद्रविजय के हृदय मे चिता व्याप्त हो गई। दूसरे ही दिन उन्होने अपने समस्त भाइयो को एकत्र करके निमित्तज्ञ क्रौष्टुकि को बुलाकर पूछा—

—महाशय! हमारा त्रिखडेश्वर जरासध से विरोध हो गया है। इसका क्या परिणाम होगा?

—अहकारी और बली पुरुपो से विग्रह का एक ही परिणाम होता है—युद्ध! वही होगा।—क्रौष्टुकि ने उत्तर दिया।

- वह तो ठीक है, मै भी समझता हूँ किन्तु युद्ध का परिणाम क्या होगा?

—पराक्रमी कृष्ण-बलराम जरासध का प्राणान्त कर देगे।

क्रौष्टुकि की इस वात को सुनकर सभी उपस्थित जन सतुष्ट हुए। समुद्रविजय गम्भीरतापूर्वक कुछ देर तक सोचते रहे और फिर वोले—

—भद्र! हमारे साधन अल्प है और जरासध के अत्यधिक, फिर तुम्हारा कथन सत्य कैसे होगा? यदि सत्य हो भी गया तो व्यर्थ ही मथुरा की प्रजा पीडित होगी।

ज्येष्ठ दशार्ह की वात युक्तियुक्त थी। क्रौष्टुकि ने पुन गणित लगाया और वोला—

—महाराज! आप इस समय सपरिवार पश्चिम दिशा के समुद्र की ओर चल जाइये। आप उसी दिशा मे एक नगरी वसाकर निवास करिए। आपके पश्चिम दिशा मे गमन करते ही शत्रुओ का क्षय प्रारम्भ हो जायगा।

—यह भी वता दीजिए कि नगरी किस स्थान पर वसाई जाय?

—मार्ग मे चलते हुए जिस स्थान पर सत्यभामा दो पुत्रो को जन्म दे वहीं आप नगरी वसाकर नि.शक होकर रहिए।

निमित्तज्ञ के वचनो के अनुसार राजा समुद्रविजय ने परिवार सहित मथुरापुरी छोड दी। उनके पीछे-पीछे उग्रसेन भी चल दिये। मथुरा से ग्यारह कुल कोटि यादव उनका अनुसरण करते हुए चले। शौर्यपुर मे सात कुल कोटि यादव और सम्मिलित हो गये। अब दशार्ह राजा, समस्त परिवार-परिकर और राजा उग्रसेन सहित अठारह कोटि यादवो को लेकर विन्ध्याचल की ओर प्रस्थित हुए।

× × ×

राजा सोमक ने जरासध के समक्ष पहुँचकर सारी वार्ता कह कह सुनाई। जरासध की क्रोधाग्नि मे घी पड गया। उसकी आँखे क्रोध से लाल हो गई। पिता की कुपित मुद्रा देखकर पुत्र काल कुमार बोला—

—पिताजी! आप मुझे आज्ञा दीजिए। मैं इन यादवो को अग्नि से, समुद्र से भी खीचकर मार डालूँगा। यदि इतना न कर सका तो मुँह नही दिखाऊँगा।

जरासध ने कालकुमार को अन्य ५०० राजाओ के साथ बडी सेना लेकर यादवो पर चढाई करने के लिए भेज दिया। उसके साथ उसके भाई यवन और सहदेव भी चले।

कालकुमार यादवो का पीछा करता हुआ विन्ध्याचल मे आ पहुँचा। तब श्रीकृष्ण के रक्षक देवताओ को चिन्ता हुई। देवो ने एक द्वार वाले विशाल दुर्ग का निर्माण किया। उसमे स्थान-स्थान पर अनेक चिताऍ जल रही थी। बाहर एक वृद्धा बैठी रो रही थी। कालकुमार वहाँ पहुँचा तो वृद्धा से पूछने लगा—

—क्यो रोती हो? ये चिताएँ किस की है?

—कालकुमार के भय से सभी यादव अग्नि मे प्रवेश कर गए हैं। मैं उनके वियोग से दुखी होकर रो रही हूँ। अब मै अधिक जीवित नही रह सकती। मैं भी अग्नि-प्रवेश करती हूँ।

यह कहकर वृद्धा चिता मे कूद पडी।

कालकुमार को अपने बल पर अभिमान हुआ। साथ ही उसे अपनी प्रतिज्ञा भी स्मरण हो आई। बोला—

—मैंने पिताजी और बहन जीवयशा के समक्ष प्रतिज्ञा की थी कि मैं यादवो को अग्नि मे से भी खीचकर मार डालूँगा। इसलिए मैं भी अग्नि मे प्रवेश करता हूँ।

यह कहकर वह अग्नि मे प्रवेश कर गया और सबके देखते-देखते जीवित ही जल गया। उसी समय सूर्यास्त हो गया। अत जरासध के सैनिको ने वही रात्रि-विश्राम किया।

प्रात काल सैनिक उठे तो न वहाँ दुर्ग था और न अग्नि-चिताएँ। सहदेव, यवन तथा अन्य सभी राजा आश्चर्यचकित रह गए। तभी हेरिको ने आकर बताया—'यादव आगे निकल गए है।'

सभी के मुख म्लान हो गए। वृद्धजनो को निश्चय हो गया कि यह देवमाया थी। सेनापति की मृत्यु और देवमाया से भयभीत सेना वापिस लौट गई।

सैनिको ने जरासध को सम्पूर्ण वृतान्त सुनाकर यह भी बताया कि हमारे देखते ही देखते वह विशाल दुर्ग और चिताएँ अदृश्य हो गई तो वह 'हा पुत्र! हा पुत्र!!' कहकर छाती पीटने लगा।

× × × ×

यादव दल ने आगे बढते हुए कालकुमार की मृत्यु की खबर सुनी तो बहुत प्रसन्न हुए और निमित्तज्ञ क्रौष्टुकि का विशेष आदर करने लगे।

मार्ग मे एक वन मे यादव दल पडाव डाले ठहरा हुआ था। उसी समय अतिमुक्त चारण मुनि उधर आ निकले। दशार्हपति समुद्रविजय ने उनकी वन्दना करके पूछा—

—भगवन्! इस विपत्ति से हमारी रक्षा कैसे हो?

मुनिराज ने बताया—

—राजन्! तुम्हे तनिक भी भयभीत नही होना चाहिए। तुम्हारा पुत्र अरिष्टनेमि महा भाग्यवान, अतुलित बलशाली और बाईसवाँ

तीर्थंकर है। बलराम नवाँ बलभद्र है और कृष्ण नवाँ वासुदेव। कृष्ण द्वारका नगरी बसाकर रहेगा और जरासंध का वध करके भरतार्द्ध का स्वामी होगा।

हर्षित होकर समुद्रविजय ने मुनिश्री को भक्तिपूर्वक नमन करके विदा किया।

यादव दल सुखपूर्वक गमन करता हुआ सौराष्ट्र देश मे आया और रैवतक पर्वत की वायव्य दिशा मे अठारह कुल कोटि यादवो ने अपना शिविर डाल दिया।

श्रीकृष्ण की पत्नी सत्यभामा ने भानु और भामर नाम के दो पुत्र प्रसव किए। दोनो शिशु तेजस्वी थे। यादव छावनी मे हर्ष और उल्लास छा गया।

क्रौष्टुकि के बताए अनुसार शुभ मुहूर्त मे कृष्ण ने समुद्र की पूजा करके अष्टमभक्त तप प्रारम्भ किया। तीसरी रात्रि को लवण समुद्र का स्वामी सुस्थित देव प्रगट हुआ। उसने कृष्ण को पाचजन्य शख तथा बलराम को सुघोष शख भेट किए। इसके अतिरिक्त दिव्य रत्न-माला और वस्त्र अर्पित करके श्रीकृष्ण से बोला—

—मै लवण समुद्र का स्वामी सुस्थित देव हूँ। आपने किस कारण मेरा स्मरण किया ?

श्रीकृष्ण ने कहा—

—हे देव ! मैने सुना है कि अतीत के वासुदेव की यहाँ पर द्वारका नगरी थी जिसे तुमने जल से आच्छादित कर दिया है। इसलिए मेरे लिए भी वैसी नगरी बसाओ।

'जैसी आपकी इच्छा' कहकर देव वहाँ से चला गया। उसने सम्पूर्ण वृतान्त इन्द्र से निवेदन किया। इन्द्र ने कुबेर को आज्ञा दी और इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने द्वारका नगरी का निर्माण किया।

द्वारका नगरी बारह योजन लम्बी और नौ योजन विस्तारवाली थी। यह नगरी अनेक रत्नो से सुशोभित थी। अठारह हाथ ऊँचा, नौ हाथ भूमि के अन्दर गहरा और चारो ओर बारह हाथ चौडी खाई

से सुरक्षित एक किला बनाया । उसमें एक, दो, तीन मंजिल वाले लाखों भवनों का निर्माण किया । अग्निकोण विदिशा में स्वस्तिकाकार एक महल राजा समुद्रविजय के लिए, नैऋत्य दिशा का महल पाँचवे और छठे दशार्ह के लिए इसी प्रकार अन्य दशार्हों के लिए भी महलों की रचना हुई । राजमार्ग के समीप स्त्रीविहारक्षम महल उग्रसेन राजा के लिए तथा सभी प्रासादों से दूर हयशाला, गजशाला आदि का निर्माण किया । इन सबके मध्य में बलराम के लिए पृथिवीजय नाम का महल और कृष्ण के लिए सर्वतोभद्र नामक प्रासाद का निर्माण किया ।

सम्पूर्ण नगरी स्थान-स्थान पर तोरण, पताका आदि से सजा दी गई । यत्र-तत्र वेदिका, कूप, बावडी, तडाग, उद्यान, राजमार्गों का निर्माण हुआ ।

द्वारका इन्द्र की राजधानी अलकापुरी के समान सुशोभित होने लगी ।

नगर-निर्माण के पश्चात् कुबेर ने कृष्ण को दो पीताम्बर, नक्षत्र-माला, हार, मुकुट, कौस्तुभ नाम की महामणि, शार्ङ्ग धनुष, अक्षय बाण वाले तरकस, नन्दक नाम की खड्ग, कौमुदी नाम की गदा और गरुडध्वज रथ दिया । बलराम को वनमाला, मूशल, दो नील वस्त्र, तालध्वज रथ, अक्षय बाण वाले तरकस, धनुष और हल दिये । कृष्ण और बलराम के पूज्य होने के कारण सभी दशार्हों को रत्नमयी आभूषण तथा अनेक प्रकार के रत्न प्रदान किये ।

समस्त यादवों ने कृष्ण को शत्रु संहारक मानकर पश्चिम समुद्र के किनारे पर उनका राज्याभिषेक किया ।

राज्याभिषेक के पश्चात् यादवों ने नगर प्रवेश की तैयारी की । बलराम अपने सारथि सिद्धार्थ द्वारा संचालित रथ में आरूढ हुए और कृष्ण अपने सारथि दारुक द्वारा संचालित रथ में । अन्य यादव उनके चारों ओर खडे थे । उस समय दोनों भाई ग्रह नक्षत्रों से घिरे सूर्य-चन्द्र के समान सुशोभित हो रहे थे ।

द्वारका प्रवेश के समय जय-जयकार के उद्घोषो से आकाश गूँज उठा। बडे उत्साह और समारोह पूर्वक यादवो ने द्वारका मे प्रवेश किया।

श्रीकृष्ण की आज्ञा से कुवेर ने सभी विशिष्ट पुरुषो और दशो दशाहो के निमित्त निर्मित भवन वता दिये। सभी यादवो ने सुख पूर्वक उनमे प्रवेश किया।

कुवेर ने साढे तीन दिन तक स्वर्ण, रत्न, विचित्र वस्त्र तथा धान्यो की वृष्टि करके द्वारका नगरी को समृद्ध कर दिया।

वासुदेव श्रीकृष्ण के सुशासन मे द्वारका निवासी सुखपूर्वक समय व्यतीत करने लगे।

—त्रिषष्टि० ८/५
—उत्तर पुराण ७१/१-२८
—अन्तकृत, वर्ग १, अध्ययन १

●

---

० उत्तरपुराण मे सोमक राजा के आने का उल्लेख नही है। यहाँ जरासध के पुत्रो के आक्रमण का वर्णन है—

१ जीवयशा से मथुरा के समाचार सुनकर जरासध को वहुत क्रोध आया और उसने अपने पुत्र यादवो पर आक्रमण के लिए भेजे। यादवो ने उन्हे पराजित कर दिया। (श्लोक ७-८) तदन्तर जरासध का अपराजित नाम का पुत्र युद्ध हेतु आया। उसने ३४६ वार आक्रमण किया किन्तु उसे भी परागमुख होना पडा। (श्लोक ९-१०) तव कालयवन (यहाँ कालयवन नाम का एक ही पुत्र माना गया है) 'मैं यादवो को अवश्य जीतूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा करके चला। (श्लोक ११)

२ देव का नाम सुस्थित के स्थान पर नैगम है। (श्लोक २०)

रुक्मिणी-परिणय

द्वारका की समृद्धि दिन-दूनी रात चौगुनी वढ रही थी। उसकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गई।

घूमते-घामते नारदजी एक दिन कृष्ण की राजसभा मे आ पहुँचे। कृष्ण-बलराम दोनो भाइयो तथा सभी उपस्थित जनो ने नारद का स्वागत किया। अनेक प्रकार के विनयपूर्ण शब्दो को सुनकर देवर्षि सन्तुष्ट हुए किन्तु उनके हृदय मे इच्छा जाग्रत हुई कि 'जैसे विनयी श्रीकृष्ण है, क्या वैसी ही विनयवान उनकी रानियाँ भी है।'

इच्छा जाग्रत होने की देर थी कि नारदजी को कृष्ण के अन्तःपुर मे पहुँचने मे विलम्ब नही हुआ। सभी रानियो ने देवर्षि का उचित आदर किया किन्तु सत्यभामा अपने वनाव-सिगार मे लगी रही। उसने नारदजी की ओर देखा तक नही।

अनादर सभी को कुपित कर देता है जिसमे तो वह विश्वविख्यात कलहप्रिय मुनि नारद थे। सत्यभामा के भवन से ललाट पर वल डालकर वे लौट गए। मन मे विचार करने लगे—'इस रूप गर्विता सत्यभामा को कृष्ण की पटरानी होने का वडा अहकार है। इसकी छाती पर सौत लाकर विठा दी जाय तो इसके होश ठिकाने आ जायें।'

स्वेच्छा विहारी नारद के लिए यह काम कौन सा कठिन था। अपनी अभिलाषा को हृदय मे दवाए अनेक नगरो और ग्रामो मे घूमते रहे। कुडिनपुर मे उनकी अभिलषित वस्तु दिखाई दी—रुक्मिणी।

रुक्मिणी कुडिनपुर नरेश राजा भीष्मक और रानी यशोमती की पुत्री थी। रुक्मि नाम का वलवान युवक उसका भाई था। मुनि नारद

को रुक्मिणी ने नमन किया तो देवर्षि ने तुरन्त आशीर्वाद दे डाला—दक्षिण भरतार्द्ध के स्वामी श्रीकृष्ण तुम्हारे पति हो।

रुक्मिणी के हृदय मे उत्सुकता जागी। उसने पूछा 'श्री कृष्ण कौन है ?' तो नारदजी ने कृष्ण के शौर्य, पराक्रम, सुन्दरता तथा विनयशीलता, बुद्धिमत्ता, नीतिकुशलता और धर्मपरायणता का वर्णन कर दिया।

श्रीकृष्ण के अद्वितीय गुणो को सुनकर रुक्मिणी रीझ गई। उसने मन ही मन निर्णय कर लिया—'इस जन्म मे श्रीकृष्ण ही मेरे पति होगे।

नारदजी ने इधर तो रुक्मिणी को कृष्ण मे अनुरक्त किया और उधर रुक्मिणी का चित्रपट लेकर कृष्ण के पास आये। चित्र देखते ही कृष्ण चित्रलिखे से रह गए। पूछने लगे—

—देवर्षि ! क्या किसी देवी का चित्र बना लाए है ?

—नही कृष्ण ! यह तो मानवी है।

—मानवी और इतनी सुन्दर ? कौन है ? कुछ परिचय तो दीजिए।

—कुडिनपुर के वर्तमान नरेश रुक्मि की बहन रुक्मिणी —क्या इतना परिचय यथेष्ट है। नारदजी ने रुक्मिणी परिचय दे दिया।

कृष्ण ने सिर हिलाकर स्वीकृति दी।

तीर निशाने पर लग चुका था। अब नारद क्यो रुके ? उठ कर चलने लगे तो कृष्ण ने ससम्मान विदा कर दिया।

रुक्मिणी की सुन्दरता से प्रभावित होकर कृष्ण ने एक दूत भेज कर कुडिनपुर नरेश रुक्मि से प्रिय-वचनो मे उसकी बहन की याचना की।

दूत की बात सुनकर रुक्मि व्यगपूर्वक हँस पडा। बोला—

—अहो ! यह कृष्ण कैसा हीन-बुद्धि वाला है जो ग्वाला होकर भी मेरी बहन की इच्छा करता है। मै तो दमघोष के पुत्र शिशुपाल के साथ रुक्मिणी का विवाह करूँगा।

दूत को स्पष्ट उत्तर मिल चुका था । वह निराश वापिस लौट आया और रुक्मि की कठोर वाणी श्रीकृष्ण को सुना दी ।

रुक्मि का उत्तर पाकर श्रीकृष्ण मौन रह गये किन्तु रुक्मिणी के हृदय को वहुत आघात लगा । वह तो मन ही मन कृष्ण को अपना पति मान चुकी थी । वह उदास रहने लगी । उसकी उदासीनता का कारण जानकर धात्री ने एकान्त मे उससे कहा—

—राजकुमारी ! जव तुम वालिका थी और मेरे अक मे वैठी हुई थी तव अतिमुक्त मुनि ने तुम्हे देखकर कहा था —'यह वालिका कृष्ण की पटरानी होगी ।' मैंने उनसे पूछा—'कृष्ण कौन है ?' तव मुनिश्री ने वताया—'जो पश्चिम समुद्र के किनारे द्वारका नगरी वसाए—वही कृष्ण इसका पति होगा ।' उसी कृष्ण ने दूत द्वारा तुम्हारी याचना की थी किन्तु तुम्हारे भाई रुक्मि ने ठुकरा दी । वह तुम्हे दमघोष के पुत्र शिशुपाल को देना चाहता है ।

धात्री के वचन सुनकर रुक्मिणी ने पूछा—

—क्या मुनि के वचन निष्फल होगे ?

—क्या कभी निस्पृह सन्तो की भविष्यवाणी भी मिथ्या हो सकती है ?—धात्री ने प्रतिप्रश्न कर दिया ।

रुक्मिणी धात्री के मुख की ओर देखने लगी । उसे सूझा ही नही कि इस प्रतिप्रश्न का क्या उत्तर दे ? धात्री ने ही विश्वासपूर्वक कहा—

—मुनि के वचन मिथ्या नही होगे । यदि तुम्हारी इच्छा हो तो गुप्त दूत कृष्ण के पास भेजूँ ?

राजकुमारी रुक्मिणी ने धात्री को सहमति प्रदान की । धात्री ने एक गुप्त दूत पत्र लेकर श्री कृष्ण के पास भेजा । पत्र मे लिखा था—

माघमास की शुक्ल अष्टमी को नाग पूजा के वहाने मै रुक्मिणी को लेकर नगर के वाहर उद्यान मे जाऊँगी । हे कृष्ण ! यदि तुम्हे रुक्मिणी का प्रयोजन हो तो वहाँ आ जाना अन्यथा उसका विवाह शिशुपाल के साथ हो जायगा ।

दूत से यह संदेश पाकर कृष्ण ने मन ही मन कुंडिनपुर जाने का निश्चय कर लिया।

बहन के मुख पर झलकती निराशा और उसकी अप्रत्याशित चुप्पी ने रुक्मि को सावधान कर दिया। उसने शीघ्रातिशीघ्र बहन का विवाह करने में ही भलाई समझी। उसने भी दूत भेजकर शिशुपाल को आमंत्रित किया।

शिशुपाल सेना सहित कुंडिनपुर आ पहुँचा। श्रीकृष्ण भी अग्रज बलराम सहित पूर्व निर्धारित स्थान पर आए।

धात्री रुक्मिणी को उसकी सखियों सहित नागपूजा के लिए नगर के बाहर उद्यान में लाई। कृष्ण वहाँ पहले से ही खड़े थे। उन्होंने आगे बढ़कर पहले ही धात्री का अभिवादन किया। धात्री के संकेत से रुक्मिणी रथ में बैठ गई। रथ चल पड़ा।

जब रथ कुछ दूर चला गया तब धात्री और सखियों ने पुकार मचाई—दौड़ो! दौड़ो!! पकड़ो!!! कृष्ण रुक्मिणी को हर कर लिए जा रहे हैं।

कृष्ण ने भी पांचजन्य शंख फूंक दिया और बलराम ने अपना सुघोष शंख। शंखों की गंभीर ध्वनि को सुनकर एकबारगी सभी चकित रह गए।

किन्तु सवाल था इज्जत का। राजा रुक्मि की बहन और शिशुपाल को मिलने वाली रुक्मिणी का हरण हो जाय और वे चुप बैठे रहे ऐसा कैसे हो सकता था। रुक्मि और शिशुपाल दोनों ही विशाल सेना लेकर पीछे दौड़ पड़े।

विशाल सेना देखकर रुक्मिणी का दिल बैठने लगा। बोली—

—नाथ! मेरा भाई और यह शिशुपाल बड़े पराक्रमी और क्रूर हैं। इनके साथ अन्य वीर भी हैं और आप दोनों भाई अकेले। अब क्या होगा?

मुस्करा कर कृष्ण ने आश्वासन दिया—

—क्या रुक्मि और क्या शिशुपाल? मेरा बल देखो।

यह कह कृष्ण ने अर्द्धचन्द्राकार वाण से ताडवृक्षो की पक्ति कमल-पत्रो की भाँति छेद दी और अपनी अगूठी मे लगा हीरा मसूर के दाने के समान चूर्ण कर दिया। पति का बल और पराक्रम देखकर रुक्मिणी सन्तुष्ट हो गई।

कृष्ण ने अग्रज से कहा—

—आप इस वधू को लेकर चलिए। मैं रुक्मि-शिशुपाल आदि से निपट कर आता हूँ।

बलराम ने आदेशात्मक स्वर मे उत्तर दिया—

—कृष्ण! तुम रुक्मिणी को लेकर द्वारका पहुँचो। मैं अकेला ही इन रुक्मि आदि सबको यमलोक पहुचा दूँगा।

पति का बल तो रुक्मिणी देख ही चुकी थी। वह गिडगिडाकर बोली—

—रुक्मि! मेरा सहोदर है। उसकी प्राण रक्षा कीजिए।

बलराम ने बहन के प्रेम को समझा और रुक्मि को जीवित छोडने का आश्वासन देकर वहीं रुक गए।

श्रीकृष्ण रुक्मिणी को लेकर द्वारका की ओर चले गए।

× × ×

शत्रुओ की सेना समीप आते ही बलराम ने मूशल उठा कर युद्ध प्रारम्भ कर दिया। सम्पूर्ण सेना अकेले बलराम ने मथ डाली। शिशुपाल सहित रुक्मि की सेना भाग खडी हुई। रणभूमि मे अकेला रुक्मि खडा रहा। उस वीर ने युद्ध मे पीठ नही दिखाई। बलराम ने उसका रथ तोड दिया, मुकुट भग कर दिया और छत्र गिरा दिया। उसके पश्चात् क्षुरप्रवाण से उसके दाढी-मूछो को उखाड कर बोले—

—मूर्ख! तुम मेरे अनुज की पत्नी के भाई हो, इस कारण अवध्य हो। मेरी कृपा से दाढी-मूछ रहित होकर अपनी पत्नियो के साथ विलास करो।

बलराम तो यह कह कर चल दिये किन्तु अपमानित वीर रुक्मि वापिस कुडिनपुर नही गया। उसी स्थान पर भोजकट नगर बसा कर रहने लगा।

× × × ×

द्वारका नगरी को दूर से ही देखकर रुक्मिणी चकित रह गई। ऐसी समृद्ध और सुन्दर नगरी उसने जीवन मे पहली बार देखी थी। तभी कृष्ण ने कहा—

—हे देवी ! यह सुन्दर नगरी देव-निर्मित है। इसमे सुखपूर्वक मेरे साथ रहो।

रुक्मिणी मे हृदय मे हीन भावना उत्पन्न हो आई। उसने नीचा मुख करके कहा—

—नाथ ! आपकी अन्य स्त्रियाँ तो उनके पिताओ ने वडी समृद्धि के साथ दी होगी और मै अकेली वंदी के समान आपके साथ आ गई हूँ।

श्रीकृष्ण ने उसकी नारी-सहज भावना को समझा। आश्वासन देते हुए बोले—

—कैदी क्यो ? महारानी के समान आई हो। और यदि वंदी भी हो तो मेरे हृदय की।—यह कहकर वासुदेव कृष्ण हँस पडे।

रुक्मिणी आँखो मे आनन्दाश्रु भर आए। वोली—

—मेरा अहोभाग्य कि चरणदासी को हृदय मे स्थान मिला। स्वामी ! कुछ ऐसा करिए कि लौकिक दृष्टि से मेरा अपमान न हो।

वासुदेव ने कहा—'ऐसा ही होगा।'

तब तक रथ द्वारका मे प्रवेश कर चुका था। श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को सत्यभामा के महल के समीप ही दूसरे महल मे ठहरा दिया और गांधर्व विवाह करके क्रीडा करने लगे।

× × × ×

सत्यभामा के हृदय मे रुक्मिणी को देखने की सहज जिज्ञासा थी। वह जानना चाहती थी कि रुक्मिणी मे ऐसी क्या विशेषता है जिसके कारण वासुदेव उसमे इतने अनुरक्त रहते है।

इस जिज्ञासा को और भी वढा दिया—'रुक्मिणी के महल मे प्रवेश की निषेधाज्ञा ने।' विना वासुदेव की आज्ञा के उस महल मे कोई प्रवेश नही कर सकता था।

सत्यभामा ने एक दिन कृष्ण से आग्रह किया—

— स्वामी ! अपनी प्रिया को मुझे तो वताओ।

कृष्ण हँसकर उस आग्रह को टाल गए किन्तु उन्हे यह भी निश्चय हो गया कि वात आगे टलने वाली नही है। किसी दिन सत्यभामा हठ कर वैठे उससे पहले ही दोनो की भेट करा देनी चाहिए। किन्तु यदि सीधी-सादी भेट करा दी तो कृष्ण की चतुराई ही क्या ?

लीला-उद्यान मे श्रीदेवी की प्रतिमा एक भवन मे विराजमान थी। कृष्ण ने उस प्रतिमा को वहाँ से हटवाकर कुशल चित्रकारो के पास भिजवा दिया। श्रीदेवी की प्रतिमा के स्थान पर उन्होने रुक्मिणी को ला विठाया और उसे सिखा दिया—

—यही मेरी अन्य स्त्रियाँ आने आने वाली है, इसलिए तुम निश्चल होकर देवी की मूर्ति की भाँति वैठ जाना।

रुक्मिणी ने पति के हृदय की वात समझी और स्वीकृति दे दी।

श्रीकृष्ण सत्यभामा के महल मे पहुँचे। सत्यभामा को तो एक ही धुन थी—रुक्मिणी को देखने की। पति को देखते ही पूछ वैठी—

—कहाँ छिपा रखा है, अपनी प्राण-वल्लभा को ? मेरी-दृष्टि पडते ही कुरूप तो नही हो जायगी वह !

—अरे नही ! अरे नही !! देवि ! तुम नाराज मत हो। जब इच्छा हो तव मिल लो। —कृष्ण ने घवराने का अभिनय करते हुए उत्तर दिया।

—आप उसका स्थान वतावे तव तो भेट हो ? आपने तो उसे छिपा रखा है ?

— नही देवि ! वह तो चाहे जहाँ जा सकती है। आज ही वह श्रीदेवी के मन्दिर मे गई है।

वासुदेव सत्यभामा के महल से चल दिये और सत्यभामा अन्य स्त्रियो के साथ लीला-उद्यान के श्रीदेवी मन्दिर मे जा पहुँची। अनेक स्त्रियो को आते देखकर रुक्मिणी देवी-मूर्ति के समान निश्चल वैठ

गई। सत्यभामा ने पूरा मन्दिर छान मारा किन्तु उसे रुक्मिणी कही दिखाई न दी।

वेदिका पर बैठी निश्चल मूर्ति को देखकर कहने लगी—

—अहो इस श्रीदेवी का रूप कैसा मनोहर है। इसको बनाने वाला कारीगर कितना कुशल है ?

इसके बाद वह अजलिबद्ध होकर खडी हो गई और प्रार्थना करने लगी—

—हे श्रीदेवी ! मुझ पर प्रसन्न होकर इतनी कृपा करो कि मैं रुक्मिणी को अपनी रूपलक्ष्मी से पराजित कर दूँ। इसीलिए तुम्हारी पूजा अर्चना कर रही हूँ।

और सत्यभामा बडी भक्तिभाव से उसकी पूजा करने लगी।

रुक्मिणी को बडी जोर की हँसी आई किन्तु उसने हास्य के ज्वार को अन्दर ही दबा दिया। उसका शरीर भी काँपा। यदि जरा सी चेष्टा बदल जाती तो खेल ही बिगड जाता किन्तु वह पाषाण-प्रतिमा के समान निष्पद बैठी रही।

सत्यभामा ने बडे मनोयोग से पूजा की और सिर नवाकर श्रीकृष्ण के पास पहुँची। खीझकर बोली—

—आपकी पत्नी कहाँ है ?

—श्रीदेवी के मन्दिर मे। —कृष्ण ने भोलेपन से उत्तर दिया।

—आप नही बताना चाहते तो मत बताइये झूठ क्यो बोलते हैं ?

—नही प्रिये ! मैं झूठ नही बोलता, रुक्मिणी श्रीदेवी के मन्दिर मे ही है।

—मैंने तो वहाँ का कौना-कौना छान मारा।

—तुमसे अवश्य ही कोई भूल हुई है।

—हाँ ! हाँ !! मैं तो अन्धी हूँ, आप ही चलकर दिखा दीजिए।

—चलो ! मैं अभी दिखाए देता हूँ।

दोनो पति-पत्नी श्रीदेवी के मन्दिर मे जा पहुँचे। दूर से ही पति

को आते देखकर रुक्मिणी वेदिका से उठकर द्वार पर आ खडी हुई और पति से पूछने लगी—

—नाथ ! अभी-अभी थोडी देर पहले मुझे किसने नमन किया ?

कृष्ण ने सत्यभामा की ओर सकेत करके कहा—

—मेरी प्रिया सत्यभामा ने ।

—मैं क्यो इसे नमन करूँगी ? —सत्यभामा बीच मे ही बोल पडी ।

—क्यो ? तुमने अपनी बहन को नमन किया, इसमे क्या बुराई है ? —कहकर कृष्ण हँस पडे और रुक्मिणी के होठो पर मुस्कराहट फैल गई ।

सत्यभामा ने ध्यानपूर्वक रुक्मिणी की ओर देखा और फिर वेदिका की ओर । वेदिका रिक्त थी । सत्यभामा सब कुछ समझ गई और खीज कर बोली—

—तो यह बात है ? अब समझी । आप दोनो का मिला-जुला षड्यन्त्र । सौत के सामने मेरा सिर झुकाने का अच्छा स्वाग रचा, तुम दोनो ने । —सत्यभामा रूठ गई ।

कृष्ण ने मनाने का बहुत प्रयास किया किन्तु वह मानी नही । वह अपने महल मे चली गई और रुक्मिणी अपने महल मे । वासुदेव ने रुक्मिणी को बहुत समृद्धि दी और पति-पत्नी प्रेम रस मे निमग्न हो गए ।

—त्रिषष्टि० ८।६

अन्य पटरानियाँ

देवर्षि नारद ने द्वारका की राजसभा मे प्रवेश किया तो कृष्ण ने उठकर उनका स्वागत किया और उचित आसन पर विठाया। वात-चीत के बीच मे वासुदेव पूछ वैठे—

—देवर्षि ! आप तो ढाई द्वीप मे घूमते ही है। कोई आश्चर्य-जनक वस्तु दिखाई पडी हो तो वताइये।

और देवर्षि नारद तो ऐसे ही प्रश्नो का उत्तर देने मे स्वय को धन्य समझते थे। तुरन्त ही वोल पडे—

—हाँ वासुदेव ! जाबवती सर्वाधिक आश्चर्यकारी रत्न है।

—कुछ परिचय भी मिल जाए, मुनिवर !

—वैताढ्यगिरि पर जववान्नगर का वलवान विद्याधर राजा जबवान है। उसकी स्त्री शिवाचन्द्रा से एक पुत्र विश्वक्सेन और पुत्री जावबती हुई। वह नित्य गगास्नान करने जाती है। —नारदजी ने पूरा परिचय दे दिया।

नारदजी तो ससम्मान विदा होकर अपनी राह लगे और वासुदेव ने कुछ चुने हुए वीरो के साथ गगा नदी की राह पकडी।

गगा किनारे पहुँचकर देखा तो जाववती हसिनी के समान गगा जल मे किलोल कर रही थी। अन्य सखियाँ कुछ तो जल मे उतर कर उसकी क्रीडा मे सहायक थी और कुछ किनारे पर खडी उत्साहित कर रही थी।

कृष्ण सोचने लगे—'जैसा नारदजी ने कहा—वैसा ही है।'

तभी जाववती की दृष्टि कृष्ण पर पड गई। उन्हे देखते ही वह चित्रलिखी सी रह गई। जल क्रीडा वन्द हो गई। सखियो की दृष्टि

उधर को उठी तो कृष्ण एक वृक्ष की ओट मे छिप गए। जाववती को लगा चन्द्र निकला और छिप गया। वह तुरन्त जल से वाहर निकली और वस्त्र वदल कर कृष्ण के ममीप आई।

श्रीकृष्ण ने उसे अनुरक्त जानकर रथ मे विठाया और द्वारका की ओर ले चले।

सखियो ने देखा कि राजकुमारी का हरण हो रहा है तो उन्होने शोर मचा दिया।

पुत्री के अपहरण की वात सुनकर जववान हाथ मे तलवार लेकर पीछे दौडा। किन्तु मार्ग मे ही अनाधृष्टि ने उसे पराजित करके वन्दी वना लिया और कृष्ण के सामने ला पटका।

पराजित राजा जववान ने पुत्री जाववती कृष्ण को दी और स्वय प्रव्रजित हो गया।

जववान के पुत्र विश्वक्सेन को साथ लेकर श्रीकृष्ण जाववती सहित द्वारका आए।

जाववती को रुक्मिणी के समीप का महल निवास के लिए प्राप्त हुआ और उसने भी रुक्मिणी मे सखीपना स्थापित कर लिया।

विद्याधर पुत्री जाववती को उसके योग्य समृद्धि श्रीकृष्ण ने दे दी।

× × × ×

—हे स्वामी! सिहलपति श्लक्ष्णरोमा आपकी आज्ञा का अनादर करता है। उसकी लक्ष्मणा नाम की पुत्री शुभ लक्षण सम्पन्न है। वह द्रुमसेन सेनापति की रक्षा मे समुद्र-स्नान के लिए आती है और वहाँ सात दिन तक रहती है। लक्ष्मणा सभी प्रकार से योग्य है। —दूत ने कृष्ण से कहा।

दूत की इस विज्ञप्ति को सुनकर कृष्ण अपने अग्रज वलराम को साथ लेकर वहाँ पहुचे।

द्रुमसेन सेनापति ने विरोध किया तो उसे तालवृक्ष की भाँति छेद दिया और लक्ष्मणा को ले आए।

लक्ष्मणा को जाववती के निकट का रत्नमय महल निवास के लिए प्राप्त हुआ और वह कृष्ण की अग्रमहिषी वनी ।

× × × ×

सौराष्ट्र देश मे आयुस्खरी नगरी का राजा था—राष्ट्रवर्द्धन । उसकी विजया नाम की रानी से एक पुत्र हुआ नमुचि और एक पुत्री सुसीमा ।

नमुचि ने अस्त्र विद्या सिद्ध करली थी इस कारण वह स्वय को अजेय समझता था और कृष्ण की आज्ञा भी नही मानता था । अनेक वार दूत उसके अभिमान की चर्चा वासुदेव से कर चुके थे ।

एक वार नमुचि अपनी वहन सुसीमा के साथ प्रभास तीर्थ मे स्नान करने गया । कृष्ण के दूता ने आकर समाचार दिया—

—स्वामी ! इस समय नमुचि अपनी वहन सुसीमा के साथ प्रभास तीर्थ मे है और उसका शिविर वहुत पीछे पडा हुआ है ।

कृष्ण तुरन्त अग्रज वलराम के साथ वहाँ पहुचे और नमुचि को मारकर सुसीमा को अपने साथ द्वारका ले आए । विधिवत् विवाह करके लक्ष्मणा के निकटवर्ती महल मे रख दिया ।

पिता राष्ट्रवर्धन को यह समाचार ज्ञात हुआ तो उसने अपनी पुत्री सुसीमा के लिए दासी आदि परिवार और कृष्ण के लिए हाथी आदि विवाह का दहेज भेज दिया ।

× × × ×

मरुदेश के राजा वीतभय ने अपनी गौरी नाम की पुत्री का विवाह श्रीकृष्ण के साथ कर दिया ।

श्रीकृष्ण ने उसे अग्रमहिषियो मे स्थान दिया और सुसीमा के निकटवर्ती महल उसको निवासार्थ दिया ।

× × × ×

अरिष्टपुर के राजा हिरण्यनाभ की पुत्री पद्मावती के स्वयवर मे

श्रीकृष्ण अग्रज वलराम के साथ गए । हिरण्यनाभ रोहिणी[1] का सहोदर था । उसने अपने भानजे को पहचान कर उन दोनो का हर्षित होकर स्वागत किया ।

हिरण्यनाभ का ज्येष्ठ वन्धु रैवत भगवान नमिनाथ के तीर्थ मे श्रामणी दीक्षा ग्रहण करके गृहत्याग कर गया था । उसने अपनी रेवती, रामा, सीता और वन्धुमती—चारो पुत्रियाँ वसुदेव पुत्र वलराम के लिए सकल्प कर दी थी । अत राजा हिरण्यनाभ ने इन चारो कन्याओ का विवाह वलराम के साथ कर दिया ।

वलराम के विवाह के पश्चात् श्रीकृष्ण स्वयवर मे पहुँचे । उन्होने भरी स्वयवर सभा मे सभी राजाओ की नजरो के सामने पद्मावती का हरण कर लिया ।

स्वयवर मण्डप मे से राजकन्या का हरण हो जाय और उसके अभ्यर्थी क्षत्रिय देखते रहे, उनके क्षत्रियत्व का अपमान है यह । सम्मान की रक्षा और अपमान से पीडित अनेक राजा युद्ध के लिए तत्पर हो गए ।

युद्ध हुआ और श्रीकृष्ण ने सबको पराजित कर अपने पराक्रम का डका वजा दिया ।

पद्मावती उनकी हुई । वे उसे द्वारका ले आए और गौरी के महल के समीप के महल मे उसके निवास का प्रवन्ध कर दिया ।

× × × ×

गाधार देश की नगरी पुष्कलावती के राजा नग्नजित का एक पुत्र था चारुदत्त और पुत्री गाधारी । गाधारी अपने रूप लावण्य से विद्याधरियो को भी पराजित करती थी ।

१ रोहिणी अरिष्टपुर के राजा रुधिर की पुत्री और वसुदेव की पत्नी थी । रोहिणी के गर्भ से ही वलराम का जन्म हुआ था । इसी कारण वसुदेव पुत्र वलराम और कृष्ण को हिरण्यगर्भ ने अपना भानजा मानकर विशेष स्वागत किया ।

नग्नजित की मृत्यु के बाद पुष्कलावती का राज्य मिला चारुदत्त को, परन्तु वह उसे भोग न सका। उसके भागीदारो ने उसे पराजित कर दिया।

निर्बल सदा ही बलवान की शरण लेता है। चारुदत्त भी निर्बल था अत उसने श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण की। दूत द्वारा उसने द्वारकाधीश श्रीकृष्ण से कहलवाया—'हे स्वामिन्! मेरी रक्षा करो।'

तुरन्त शरणागत की रक्षा हेतु श्रीकृष्ण गाधार देश जा पहुँचे, भागीदारो को मार गिराया और चारुदत्त को राज्य पर बिठा दिया।

चारुदत्त ने भी अपने उपकारी वासुदेव कृष्ण को अपनी बहन गाधारी देकर आदरभाव प्रदर्शित किया।

श्रीकृष्ण गाधारी को द्वारका ले आए और रानी पद्मावती के महल के समीप ही उसे एक महल मे स्थान दिया।

× × × ×

इस प्रकार श्रीकृष्ण की आठ पटरानियाँ हो गई—सत्यभामा, रुक्मिणी, जाम्बवती, लक्ष्मणा, सुसीमा, गौरी, पद्मावती और गाधारी।

—त्रिषष्टि० ८/६

१० प्रद्युम्नकुमार का जन्म और अपहरण

—गुरुदेव ! मैं मातृत्व के गौरव से विभूपित हूँगी या नही ? रुक्मिणी ने विशिष्ट ज्ञानी मुनि अतिमुक्त से पूछा ।

—तुम्हारे कृष्ण जैसा ही प्रतापी पुत्र होगा । —मुनिश्री ने उत्तर दिया ।

मुनिश्री तो उठकर चले गए किन्तु रुक्मिणी और सत्यभामा मे विवाद छिड गया । रुक्मिणी कहती थी कि मुनिश्री का कथन मेरे लिए है और मत्यभामा का आग्रह था कि 'मेरे लिए ।'

विशिष्ट ज्ञानी और अनेक लब्धियो के स्वामी मुनि अतिमुक्त रुक्मिणी के महल मे पधारे थे और जिस समय रुक्मिणी ने पुत्रवती होने का प्रश्न किया था उस समय सत्यभामा और रुक्मिणी दोनो पास-पास वैठी थी । अत दोनो ने ही मुनिश्री के वचनो को अपने लिए मान लिया था ।

दोनो का विवाद चल ही रहा था कि दुर्योधन वहाँ आ गया । उनको विवादग्रस्त देखकर बोला—

—मुझे भी तो बताओ कि तुम्हारे विवाद का क्या कारण है ?

सत्यभामा ने कहा—

—भाई मुनिश्री ने मेरे लिए भविष्यवाणी की है कि मेरे गर्भ से आर्यपुत्र जैसा ही तेजस्वी पुत्र होगा ।

—मुनिश्री के वचनो का गलत अर्थ मत लगाओ । प्रश्न मेरा था इसलिए उनका भविष्य कथन मेरे लिए ही फलदायी होगा ।—रुक्मिणी ने अपनी बात कही ।

दुर्योधन भी सोचने लगा। किन्तु सत्यभामा अपने आग्रह पर अटल थी। उसे पूर्ण विश्वास था कि वह तेजस्वी पुत्र की माँ बनेगी। अतः दुर्योधन से बोली—

—मेरा पुत्र तुम्हारा जामाता होगा ?

—नही ! मेरा पुत्र तुम्हारा दामाद बनेगा। —रुक्मिणी ने बात काटी।

दुर्योधन ने देखा कि इनका विवाद इस प्रकार शान्त नही होगा। उसने उत्तर दिया—

—तुम मे से जिसके भी पुत्र होगा उसी को मैं अपनी पुत्री दे दूँगा।

किन्तु स्त्रियो का विवाद इतनी जल्दी शान्त नही होता। सत्यभामा को अब भी बेचैनी थी। वह बोली—

—मेरे पुत्र का विवाह पहले होगा।

रुक्मिणी ही क्यो दबती, उसने भी कह दिया—

—पहले तो मेरे ही पुत्र का विवाह होगा।

—नही होगा।

—होगा !

—लगाओ शर्त !

—हो जाय ! मै कौन सी कम हूँ।

सत्यभामा बोली—

—हम मे से जिसके पुत्र का भी विवाह पहले होगा तो दूसरी को अपने सिर के केश देने पडेंगे, स्वीकार है ?

—हाँ ! हाँ !! स्वीकार है।

—अच्छी तरह सोच लो।

—खूब सोच लिया।

—समय पर पलट मत जाना।

—बात बदलने वाले कोई और होगे।

और दोनो मे यह शर्त हो गई। साक्षी रूप मे कृष्ण, बलराम और दुर्योधन को भी सम्मिलित कर लिया गया।

सत्यभामा शर्त स्वीकार करके अपने महल मे चली गई और कृष्ण, वलराम, दुर्योधन अपने-अपने स्थानो को।

× × × ×

एक रात्रि को रुक्मिणी ने स्वप्न मे देखा कि 'वह एक श्वेत वृषभ पर रखे एक विमान मे वैठी है।' उसी समय एक महर्द्धिक देव महा-शुक्र देवलोक से च्यवकर उसके गर्भ मे अवतरित हुआ।

रुक्मिणी की निद्रा टूट गई। उसने गवाक्ष से आकाश की ओर देखा—रात्रि का अन्तिम प्रहर व्यतीत होने वाला था। प्रात काल उठकर रुक्मिणी ने अपना स्वप्न श्रीकृष्ण को सुनाया। कृष्ण ने इसका फल वताते हुए कहा—

—तुम्हारे गर्भ से अद्वितीय वीर पुत्र का जन्म होगा।

स्वप्न का फल जानकर रुक्मिणी हर्ष से भर गई।

दीवारो के भी कान होते है। सत्यभामा की एक दासी ने यह स्वप्न और उसका फल सुन लिया। दासी ने अपना कर्तव्य निभाया और स्वामिनी के कानो मे यह समाचार ज्यो का त्यो डाल दिया।

दासी ने समाचार क्या सुनाया मानो पिघला हुआ सीसा ही उडेल दिया। सुनते ही सत्यभामा का मुख-विवर्ण हो गया। किन्तु निराशा से काम नही चलता। सौत के सम्मुख नीचा और सौत देख ले, असम्भव! चाहे जितने भी छल-छन्द करने पडे पर अपनी नाक ऊँची ही रहनी चाहिए।

सत्यभामा ने भी 'मैने स्वप्न मे ऐरावण जैसा विशाल हाथी देखा है' कृष्ण को अपना कल्पित स्वप्न सुनाया।

कृष्ण ने देखा सत्यभामा की आँखे सौतिया डाह से जल रही है। वे समझ गए कि यह स्वप्न की वात मिथ्या है। किन्तु अपने भावो को मन मे रख कर वोले—

—तुम्हारा स्वप्न तो एक उत्तम पुत्र का फल सूचित करता है।

सत्यभामा हृदय मे सतुष्ट होकर अपने महल मे लौट आई।

दैव भी बडा बलवान है। सत्यभामा को भी गर्भ रह गया। उसके गर्भ मे साधारण जीव आ गया। सामान्य जीव होने के कारण सत्यभामा का उदर बढने लगा किन्तु रुक्मिणी के गर्भ मे विशिष्ट पुण्यात्मा जीव था अत वह कृशोदरा ही रही।

ज्यो-ज्यो सत्यभामा का उदर बढता जाता उसके हृदय की कली खिलती जाती। उसे यह देख कर और भी सतोष होता कि रुक्मणी के उदर पर गर्भ के कोई लक्षण नही है। एक दिन उसके मनोभाव मुख से निकल ही गए। वह कृष्ण से बोली—

—नाथ! आपकी पत्नी रुक्मिणी बडी झूठी है।

—क्यो?—अचकचा कर कृष्ण ने पूछा।

—वह आपको भी धोखा देने से नही चूकती।

—क्या? बात क्या हुई?

—अरे आप तो भूल ही गए। उसने अपने गर्भवती होने की आपको झूठी खबर दी थी। हम दोनो का उदर देखोगे तो आपको विश्वास हो जाएगा।

कृष्ण कुछ उत्तर देते इससे पहले ही एक दासी ने आकर समाचार दिया—

—देवी रुक्मिणी ने स्वर्ण की सी काति वाला एक उत्तम पुत्र प्रसव किया है।

कृष्ण ने मन्द स्मित से सत्यभामा की ओर देखा। उसका चेहरा बुझ चुका था।

कुछ काल पश्चात् सत्यभामा ने भी एक पुत्र को जन्म दिया और उस पुत्र का नाम रखा गया भानुक।

× × ×

वासुदेव रुक्मिणी के नवजात शिशु को अक मे लेकर खिला रहे थे। कभी उसके कपोल सहलाते तो कभी मस्तक। पुत्र भी पिता के अक मे किलक रहा था। टुम-टुम करती छोटी-छोटी आँखो से पिता के मुख को देखता और हाथ-पैर चला कर प्रसन्नता व्यक्त कर देता।

छोटे से मुख से निकली किलकारियाँ वासुदेव के कानो मे अमृत की बूँदे सी पड रही थी ।

इतने मे रुक्मिणी का रूप रख कर देव धूमकेतु आया और वालक को ले गया ।

थोड़ी देर वाद रुक्मिणी आई और वालक को माँगने लगी । कृष्ण हैरान रह गए ।

– अभी-अभी तो तुम ले गई थी ।

—नही तो ! मै तो अभी आई हूँ ।

—फिर वह कौन थी ?

—मैं क्या जानूँ ?

कृष्ण ने ठण्डी साँस भर कर कहा—

—रुक्मिणी ! हमारे पुत्र का किसी ने हरण कर लिया ।

'हरण' शब्द सुनते ही रुक्मिणी 'हा पुत्र' कह कर कटे वृक्ष के समान गिर पडी । शीतोपचार से सचेत हुई तो विलाप करने लगी ।

शिशु के अपहरण से समस्त यादव दु खी हो गए ।

हाँ, सत्यभामा के हृदय मे अवश्य ही लड्डू फूटने लगे । रुक्मिणी के पुत्र का अपहरण हो गया । अब अवश्य ही वह उसके केश कतरवाएगी । सत्यभामा की हार्दिक इच्छा तो थी कि घी के दिये जलाए किन्तु लोक निन्दा के कारण अपनी खुशी प्रगट न कर सकी। हृदय तो उसका वाँसो उछल रहा था ।

पुत्र की खोज मे यादवो ने जमीन आसमान एक कर डाले। जगह-जगह दूत भेजे गए । भरसक खोज कराई गई किन्तु शिशु का पता कही न लगा ।

पता तो तव लगता जव शिशु आस-पास कही होता । वह तो पहुँच चुका था वैताढ्यगिरि के भूतरमण उद्यान की टक शिला पर ।

शिशु के पूर्वजन्म का शत्रु धूमकेतु देव रुक्मिणी का रूप वना कर नवजात शिशु को वासुदेव कृष्ण के हाथो से ले गया था । वैताढ्य-

गिरि के भूतरमण उद्यान की टक शिला पर ले जाकर शिशु को उसने रख दिया और फिर सोचने लगा—'इस बालक को शिला पर पटक कर मार डालूँ। अरे नही! तब तो बहुत दुःख होगा। यह रोयेगा, चिल्लायेगा और सम्भव है मुझे ही दया आ जाय। तब ऐसा करूँ कि इसे यो ही पड़ा छोड जाऊँ। भूख-प्यास मे तड़प-तड़प कर अपने आप मर जायगा।' यह सोचकर देव उस बालक को वही छोड कर चला गया।

किन्तु वह बालक निरुपक्रम जीवितवाला[1] और चरमदेही[2] था।

प्रातःकाल कालसवर नाम का एक विद्याधर राजा अग्निज्वाल नगर से विमान द्वारा अपने नगर की ओर जा रहा था। उसका विमान आकाश मे अचानक ही रुक गया। विद्याधर ने नीचे की ओर देखा तो अति तेजस्वी शिशु शिला पर क्रीडा करता दिखाई दिया। उसने विचार किया—'मेरे विमान की गति को रोकने वाला यह कोई महा पुण्यवान जीव है।' विद्याधर ने शिशु को अङ्क मे उठाया और अपनी पत्नी कनकमाला को सौप दिया। कनकमाला तेजस्वी पुत्र को अङ्क मे लेकर धन्य हो गई।

अपनी राजधानी मेघकूट नगर मे जाकर विद्याधर राजा कालसवर ने विज्ञप्ति कराई कि 'मेरी रानी गूढगर्भा थी और उसके उदर से यह तेजस्वी बालक उत्पन्न हुआ है।'

राजा और प्रजा दोनो ने पुत्र का जन्मोत्सव किया और शिशु का नाम प्रद्युम्न रखा।

प्रद्युम्न को अङ्क मे लेकर विद्याधर राजा कालसंवर और रानी कनकमाला खुशी से फूले न समाते और इधर रुक्मिणी रानी और

---

१ किसी प्रकार से भी नष्ट न होने वाली आयु निरुपक्रम जीवित वाली आयु कहलाती है। ऐसी आयु वाला जीव अपना आयुष्य पूर्ण करके ही मरता है।

२ उसी भव मे मोक्ष हो जाय ऐसा शरीर चरमदेह कहलाता है और उसको पाने वाला जीव चरमदेही।

वासुदेव कृष्ण पुत्र वियोग मे सिर धुन कर पछताते। समस्त द्वारका शोक विह्वल थी।

ऐसे ही शोकपूर्ण समय मे मुनि नारद का द्वारका मे आगमन हुआ। यादवो को शोकाकुल देखकर उन्होने पूछा—

—कृष्ण ! यह क्या ? समस्त यादव दुखी हैं। क्या हो गया ?

—मुनिवर ! रुक्मिणी के नवजात शिशु को मेरे ही हाथो से कोई हरण कर ले गया। आपको मालूम हो तो उसका पता बता दो।—वासुदेव ने शोकपूर्ण शब्दो मे उत्तर दिया।

नारदजी आश्वासन देते हुए बोले—

—हे कृष्ण ! विशिष्ट ज्ञानी मुनि अतिमुक्त तो अव मुक्त हो गए। इसलिए मैं पूर्व विदेह क्षेत्र के तीर्थंकर भगवान सीमन्धर स्वामी से पूछ कर तुम्हे बताऊँगा।

यह सुनकर यादवो ने नारद से आग्रहपूर्वक कहा—

मुनिवर ! जितनी शीघ्र हो सके, शिशु के समाचार लाइये।

यादवो की उत्सुकता देखकर नारद उठ खडे हुए। यादवो ने उन्हे उचित सम्मान और शिशु-समाचार शीघ्रातिशीघ्र लाने के आग्रह सहित विदा किया।

—त्रिषष्टि० ८।६

—वसुदेव हिंडी, पीठिका

●

० वसुदेव हिंडी मे केवल प्रद्युम्न-जन्म और उसके अपहरण का वर्णन है। सत्यभामा-रुक्मिणी-विवाद और शर्त का कोई उल्लेख नही है।

प्रद्युम्न के पूर्वभव ११

पूर्व विदेह क्षेत्र मे प्रभु सीमधर स्वामी के समवसरण मे उपस्थित होकर नारद ने भक्तिपूर्वक नमन-वदन किया और उनकी परम कल्याणकारी देशना सुनने के पश्चात् अजलि बाँधकर पूछा—

—प्रभु । भरतक्षेत्र की द्वारका नगरी के स्वामी कृष्ण और उनकी पत्नी रुक्मिणी का पुत्र इस समय कहाँ है ?

—मेघकूट नगर मे । —प्रभु ने सक्षिप्त उत्तर दिया ।

—देवाधिदेव ! वह वहाँ कैसे पहुँच गया ?

प्रभु ने फरमाया—

—नारद ! शिशु के पूर्वजन्म का शत्रु धूमकेतु देव रुक्मिणी का रूप बनाकर उसे कृष्ण के हाथ से ले गया । उसने वह शिशु वैताढ्य-गिरि के भूतरमण उद्यान की टक शिला पर छोड दिया । उधर से अपने विमान मे बैठकर मेघकूट नगर का विद्याधर राजा कालसवर अपनी पत्नी कनकमाला के साथ निकला । वह शिशु को उठा ले गया और अब अपना पुत्र मानकर पालन कर रहा है ।

नारद ने पुन जिज्ञासा प्रगट की—

—नाथ ! धूमकेतु देव का इस शिशु के साथ पूर्वभव का वैर किस कारण था ?

सर्वज्ञ प्रभु बताने लगे—

इस जम्बूदीप के भरतक्षेत्र मे मगध देश है । इसके शालिग्राम नाम के समृद्धिवान ग्राम मे मनोरम नाम का एक उद्यान है । इस उद्यान का स्वामी सुमन नाम का यक्ष था ।

शालिग्राम मे सोमदेव नाम का ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी अग्निला के गर्भ से अग्निभूति और वायुभूति दो पुत्र हुए।

दोनो भाई युवावस्था प्राप्त करते-करते वेद-वेदाग के पारगामी विद्वान हो गए। विद्या यदि एक ओर विनयी बनाती है तो दूसरी ओर घमण्डी भी। अग्निभूति और वायुभूति दोनो घमण्डी हो गए। उन्हे अपने ज्ञान का बहुत मद था। अपने समक्ष वे किसी को कुछ नही समझते थे।

एक बार ग्राम के बाहर मनोरम उद्यान मे आचार्य-नदिवर्धन अपने शिष्य सघ सहित पधारे। सूरिजी का आगमन सुनकर गाँव के नर-नारी उनकी वदना को चल दिए।

विद्याभिमानी दोनो ब्राह्मण भाइयो के गर्व को ठेस लगी। उनके होते हुए किसी अन्य की ग्राम-वासी वदना करे—यह उन्हे कहाँ सह्य था? ईर्ष्याग्नि मे जलते हुए वे भी मनोरम उद्यान पहुँचे और अपने ज्ञान की महिमा स्थापित करते हुए पूछने लगे—

—अरे! श्वेताम्बरियो तुम मे कुछ ज्ञान हो तो बोलो।

सूरिजी ने दोनो भाइयो के ज्ञानमद को पहिचान लिया। व्यर्थ का वितण्डावाद श्रमण नही करते, इसलिए वे चुप रह गये।

दोनो भाइयो ने समझा कि श्रीसघ मे कोई ज्ञानी नही है। अत बार-बार अपना प्रश्न दुहराने लगे। उन्होने साधुओ का उपहास करना भी प्रारम्भ कर दिया। यह उपहास आचार्यश्री के शिष्य सत्य नाम के साधु को सह्य न हुआ। उसने शातिपूर्वक पूछा—

—ब्राह्मण पुत्रो! तुम तो बहुत ज्ञानी मालूम पडते हो?

—मालूम क्या पडते है? हम है ही ज्ञानी।

—कुछ पूछूँगा तो उसका उत्तर दे दोगे?

—क्यो नही? तीनो लोको और तीनो कालो की ऐसी कौन-सी बात है जो हम से छिपी है? तुम पूछो, हम अवश्य बता देगे।

ग्राम निवासी इस वार्तालाप को बडी रुचि से सुन रहे थे। उन्हे भी जिज्ञासा जाग्रत हो गई कि मुनिजी क्या पूछेगे?

सत्यमुनि ने उपशान्त भाव से प्रश्न किया—

—ब्राह्मणो ! तुम किस भव से इस मनुष्य जन्म मे आए हो ? यह बताओ ?

प्रश्न सुनते अग्निभूति और वायुभूति के चेहरे उतर गए। क्या उत्तर दे ? कुछ सूझ ही नही पडा ? लज्जावश दोनो का मुख नीचा हो गया।

उपस्थितजन प्रतीक्षा कर रहे थे कि ब्राह्मण-पुत्र अब बोले—अब बोले ? किन्तु वे नहीं बोले। उनकी जिह्वा को काठ मार गया। तब ग्रामवासियो ने ही जिज्ञासा प्रगट की—

—पूज्यश्री ! आप ही बताये।

सत्यमुनि ने बताया—

ब्राह्मणो ! पूर्वजन्म मे तुम दोनो इसी ग्राम की वनस्थली मे मास-भक्षी सियाल (गीदड) थे। एक रात्रि को एक कृषक अपने खेत मे चर्म रज्जु (चमडे की रस्सी) छोड गया। तुम चर्म लोभी तो थे ही उसे खा गए। वह रज्जु तुम्हारे उदर मे जाकर अटक गई और तुम्हारा प्राणान्त हो गया। श्रृगाल शरीर छोडकर तुमने मनुष्य शरीर पाया।

प्रात काल उस हलवाहे ने आकर देखा तो चर्म-रज्जु गायब मिली। अनुक्रम से उसने भी कालधर्म प्राप्त किया और अपनी ही पुत्र-वधू के उदर से पुत्र उत्पन्न हुआ। उसको किसी कारणवश जाति-स्मरण ज्ञान हो गया। वह मन ही मन सोचने लगा—'अरे ! यह तो मेरी पुत्रवधू है, इसे माता कैसे कहूँ और अपने ही पुत्र को पिता कैसे कह सकूँगा ?' ऐसा विचार कर वह मौन हो गया। लोगो ने समझा कि बालक गूँगा है।

लोगो की जिज्ञासा और भी बढ गई। ब्राह्मण भाइयो की आँखो मे सन्देह झलकने लगा। उनके सन्देह निवारण तथा अपनी जिज्ञासा-पूर्ति हेतु कुछ ग्रामवासी उस गूँगे मेढ़क (हलवाहे) को सूरिजी के पास बुला लाये।

सत्यमुनि ने उससे कहा—

—भद्र ! तुम गूंगे नही हो। तुमने वनावटी मौन धारण कर लिया है। अपने मौन का कारण ग्रामवासियो को वताओ।

गूँगे खेडुक ने मुनिजी की ओर देखा। वह समझ गया कि इनके समक्ष रहस्य छिप नही सकता। वन्दना करके उसने अपने मौन का कारण वता दिया। लोगो ने सुना कि जो कुछ मुनिजी ने कहा था वही खेडुक ने वताया। तव मुनिजी ने खेडुक को समझाया –

– कर्मों की लीला अति विचित्र है। एक जन्म का पिता दूसरे जन्म मे पुत्र हो जाता है, कभी भाई। स्त्री कभी वहन वन जाती है, कभी माँ, और कभी पुत्री ! पूर्वजन्मो के सम्वन्धो को इस जन्म मे मानना उचित नही है।

मुनिश्री के वचनो को सुनकर गूगे खेडुक को प्रतिवोध हुआ। अनेक लोगो ने श्रामणी दीक्षा ली और वाह्मण-भाइयो का लोक मे अपवाद फैला।

उस समय तो वे लज्जाभिमुख होकर चले आये किन्तु उपहास और लोकापवाद के कारण उनकी कोपाग्नि प्रज्वलित हो गई। रात्रि के अन्धकार मे वे दोनो तलवार लेकर मुनिश्री के प्राण हरण करने पहुंचे। उसी समय उद्यान के स्वामी सुमन यक्ष ने उन्हे स्तंभित कर दिया।

दूसरे दिन प्रात काल व्राह्मण-भाइयो को इस दशा मे देखकर लोगो ने उनकी वहुत निन्दा की। उनके माता-पिता रोने लगे। तव यक्ष ने प्रगट होकर कहा—

—तुम्हारे पुत्र मुनि को मारना चाहते थे इस कारण मैंने उन्हे स्तंभित कर दिया है।

– अव इन्हे मुक्त कर दो। —माता-पिता ने रोते-रोते विनय की।

—यदि ये दोनो श्रामणी दीक्षा लेना स्वीकार करे तो अभी मुक्त कर दूँ। —यक्ष का उत्तर था।

दोनो भाइयो ने विनयपूर्वक कहा—

—हम लोग साधुधर्म का पालन नही कर सकेगे ।

—फिर ? यक्ष ने पूछा ।

—श्रावकधर्म का पालन कर लेगे ।

दोनो की इस स्वीकृति को पाकर यक्ष ने उन्हे मुक्त कर दिया । इसके पश्चात् दोनो भाई यथाविधि जिनधर्म का पालन करने लगे । किन्तु उनके माता-पिता वैदिक धर्म का ही पालन करते रहे ।

अग्निभूति-वायुभूति कालधर्म प्राप्त करके सौधर्म देवलोक मे छह पल्योपम की आयु वाले देव हुए । देवलोक मे च्यव कर उन दोनो ने हस्तिनापुर के वणिक् अर्हद्दास के घर पूर्णभद्र और मणिभद्र के रूप मे जन्म लिया । वहाँ भी श्रावकधर्म का पालन करने लगे ।

एक बार माहेन्द्र नाम के मुनि हस्तिनापुर मे पधारे । उनकी देशना से प्रतिबोध पाकर अर्हद्दास ने श्रामणी दीक्षा ग्रहण कर ली । पूर्णभद्र और मणिभद्र भी मुनि माहेन्द्र की वन्दना करने जा रहे थे । मार्ग मे एक कुतिया और एक चाडाल को देखकर उन्हे प्रेम उत्पन्न हुआ ।

दोनो भाई विचार करने लगे—'चाडाल से तो साधारणतया घृणा होती है, हमे प्रेम क्यो उत्पन्न हुआ ? इसका क्या कारण है ?' यही ऊहापोह करते-करते दोनो भाई मुनिश्री के पास जा पहुँचे । उनकी वन्दना की और पूछने लगे —

—पूज्यश्री ! अभी मार्ग मे आते समय हमें एक कुतिया और एक चाडाल के प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ । इसका क्या कारण है ?

मुनिराज ने बताया—

पूर्वजन्म मे तुम दोनो भाई अग्निभूति और वायुभूति नाम के ब्राह्मण थे । उस समय तुम्हारे पिता सोमदेव और माता अग्निला थी ।

सोमदेव मर कर शखपुर का राजा जितशत्रु हुआ और अग्निला शखपुर मे ही सोमभूति ब्राह्मण की पत्नी रुक्मिणी बनी । राजा जितशत्रु

पर-स्त्री मे आसक्त रहता था। एक बार उसकी दृष्टि रुक्मिणी पर पड गई। काम पीडित होकर उसने गुण्डो द्वारा रुक्मिणी को पकडवा मँगाया और अपने अत पुर मे रख लिया।

सोमभूति पत्नी-वियोग की अग्नि मे जलने लगा और राजा जित-शत्रु कामसुख भोगने लगा। रुक्मिणी के साथ एक हजार वर्ष तक काम क्रीडा मे निमग्न रहने के बाद उसकी मृत्यु हुई और वह पहली नरक मे तीन पल्योपम आयुवाला नारकी बना। नरक से निकला तो हरिण बना। वहाँ शिकारी के हाथो मृत्यु पाई और माया-कपटी श्रेष्ठिपुत्र हुआ। वहाँ से मर कर हाथी बना। इसने १८ दिन का अनशन करके मृत्यु पाई और तीन पल्योपम आयुवाला वैमानिक देव बना। वहाँ से च्यव कर वह चाडाल बना। अग्निला भी अनेक भवो मे भटकती कुतिया बनी।

—हे भद्र ! तुम दोनो ने जो चाडाल और कुतिया देखे है, वे पूर्व-जन्म मे तुम्हारे माता-पिता थे। इसी कारण तुम्हारे हृदय मे उनके प्रति प्रेम जाग्रत हुआ।

मुनिजी के इस कथन से पूर्णभद्र और मणिभद्र को जातिस्मरण ज्ञान हो गया। उन दोनो ने चाडाल और कुतिया को प्रतिबोध दिया। चाडाल ने एक महीने के अनशनपूर्वक देह-त्याग किया और नन्दी-श्वर द्वीप मे देव हुआ। कुतरी (कुतिया) भी अनशन करके मरी और शखपुर मे सुदर्शना नाम की राजपुत्री हुई।

कुछ काल पश्चात् माहेन्द्र मुनि पुन हस्तिनापुर आये तब पूर्ण-भद्र-मणिभद्र ने चाडाल और कुतिया की गति के सम्बन्ध मे पूछा। मुनिजी ने उन दोनो की सद्गति के सम्बन्ध मे बता दिया। इस पर दोनो भाइयो ने शखपुर जाकर राजकुमारी सुदर्शना को प्रतिबोध दिया। राजपुत्री ने सयम ग्रहण किया और मर कर देव लोक गई।

पूर्णभद्र-मणिभद्र भी गृहस्थ-धर्म का पालन करते हुए अपनी आयु पूर्ण करके सौधर्म देवलोक मे इन्द्र के सामानिक देव हुए।

देवलोक से अपना आयुष्य पूर्ण करके पूर्णभद्र और मणिभद्र

हस्तिनापुर के राजा विश्वकर्मेन के मधु और कैटभ नाम के दो पुत्र हुए। नन्दीश्वर देव, चिरकाल तक भव-भ्रमण करता हुआ वटपुर नगर का राजा कनकप्रभ हुआ और राजकुमारी सुदर्शना उसकी पटरानी चन्द्राभा।

राजा विश्वकसेन मधु को राज्यपद और कैटभ को युवराज पद देकर दीक्षित हो गया और सयम पालन करके ब्रह्मदेवलोक मे देव वना।

मधु ने वहुत सी पृथ्वी विजय कर ली। एक वार भीम पल्लीपति उसके राज्य की सीमा पर उपद्रव करने लगा। उसका दमन करने के लिए मधु चला। मार्ग मे वटपुर के राजा कनकप्रभ ने उसका सत्कार किया। रानी चन्द्राभा ने भी उसे प्रणाम करके वहुत सी भेट दी। ज्यो ही चन्द्राभा अत पुर जाने को वापिस मुडी मधु काम-पीडित होकर उसे वलात् पकडने की इच्छा करने लगा। मन्त्रियो ने समझा-वुझा कर उस समय उसे शात कर दिया। मधु भी उस समय चुप हो गया। पल्लीपति का दमन करने के पश्चात् वह लौटा तो पुन वटपुर नरेश कनकप्रभ ने स्वागत-सत्कार करके अनेक प्रकार की भेटे दी। मधु ने कहा—'राजन्! मुझे तुम्हारी अन्य भेट अच्छी नही लगती। तुम मुझे अपनी रानी चन्द्राभा अर्पण करो।'

कौन पति ऐसा होगा जो अपनी पत्नी ही दूसरे को अर्पण कर दे? कनकप्रभ ने भी चन्द्राभा अर्पण नही की। तव वलवान मधु ने चन्द्राभा को जवरदस्ती पकडा और अपने साथ ले गया। निर्वल कनकप्रभ कुछ न कर सका और पत्नी वियोग मे दुखी होकर इधर-उधर भटकने लगा।

तडपने वाला तडपता रहा और मधु चन्द्राभा के साथ काम-क्रीडा का सुख भोगने लगा।

एक वार मधु रानी चन्द्राभा के महल मे देर से पहुँचा तो उसने इस विलम्व का कारण पूछा—

—आज आपको देर क्यो हो गई?

- एक विवाद का निर्णय करने मे विलम्ब हो गया। —मधु ने वताया।

- विवाद क्या था ?

—व्यभिचार।

— वह व्यभिचारी तो पूजने योग्य है।

—व्यभिचारी और पूज्य ? क्या कह रही हो चन्द्राभा ? वह तो दण्ड देने योग्य है। —मधु ने उत्तेजित होकर कहा।

—यदि यही न्याय है तो आप भी तो जगविख्यात व्यभिचारी । चन्द्राभा ने वात अधूरी छोड दी।

चन्द्राभा के शब्द मार्मिक थे। लज्जा से मधु का मुख नीचा हो गया। उसी समय राजा कनकप्रभ राजमार्ग पर निकला। उसकी दशा पत्नी वियोग मे पागलो जैसी हो रही थी। उसके कपडे फटे थे और वालक उसके पीछे किलकारियाँ मारते चल रहे थे। चन्द्राभा के हृदय मे विचार आया—'अहो ! मेरे वियोग मे मेरे पति की यह दशा हो गई, मुझ जैसी परवश स्त्री को धिक्कार है।' उसने राजा मधु को भी अपने पति को इस दशा मे दिखा दिया।

मधु को गहरा पश्चात्ताप हुआ। तत्काल धुन्ध नाम के अपने पुत्र को राज्य दिया और अनुज कैटभ के साथ मुनि विमलवाहन के पास दीक्षा ग्रहण कर ली। आयु के अन्त मे अनशन करके दोनो भाइयो ने शरीर छोडा और महाशुक्र देवलोक मे सामानिक देव हुए।

राजा कनकप्रभ तीन हजार वर्ष तक पत्नी वियोग मे दुखी रह कर मरा और ज्योतिष्क देवो मे धूमकेतु नाम का देव हुआ। अवधि ज्ञान के उपयोग से जानकर पूर्वभव के शत्रु मधु को ढूँढने लगा किन्तु उसे वह कही न मिला। वहाँ से च्यव कर मनुष्य जन्म पाकर तापस हो गया। वाल तप करके मरा तो वैमानिक देव वना। इस भव मे भी वह मधु को नही देख सका। पुन भव भ्रमण करता हुआ ज्योतिषी देव वना। इस जन्म मे भी उसका नाम धूमकेतु ही था। वह अपने

पूर्वभव के शत्रु मधु को अब भी न भूला था और निरन्तर खोज रहा था।

प्रभु ने नारद को सम्बोधित किया—

—हे नारद ! ज्योही महाशुक्र देवलोक मे च्यव कर मधु राजा के जीव ने श्रीकृष्ण की पटरानी रुक्मिणी के गर्भ मे जन्म लिया त्योही धूमकेतु उसे खोजता हुआ द्वारका आ पहुँचा। अवसर देखकर उसने रुक्मिणी का रूप बनाया और कृष्ण के हाथो मे ले उडा। शिशु को मारने की इच्छा से वह उसे वैताढ्यगिरि की टक शिला पर छोड आया। वही से कालसवर विद्याधर शिशु को उठा ले गया। अब वह शिशु उनके भवन मे पल रहा है।

नारद ने प्रभु की बात सुनकर पूछा—

—स्वामी ! अब वह बालक द्वारका किस प्रकार पहुँचेगा ?

—नारद ! अभी तो उसके जाने का योग नही है, सोलह वर्ष की आयु के पश्चात् ही वह द्वारका जा सकेगा ?

—इसका कारण ? देवाधिदेव !

—रुक्मिणी को सोलह वर्ष तक पुत्र वियोग सहना पडेगा ?

इतना कहकर भगवान सीमधर स्वामी मौन हो गए। किन्तु नारद के हृदय की जिज्ञासा शान्त नही हुई। उनके हृदय मे उथल-पुथल होने लगी। वे इस वियोग का कारण जानने को उत्सुक हो गए।

—वसुदेव हिंडी, पीठिका

—त्रिषष्टि० ८/६

—उत्तरपुराण ७२/१-६६

●

० उत्तर पुराण मे प्रद्युम्न के पूर्वभवो के बारे मे बलभद्र भगवान अरिष्टनेमि के गणधर वरदत्त से पूछते हैं। (श्लोक १-२)। कथानक वही है केवल कुछ नामो का नगण्य-सा भेद है।

प्रद्युम्न का हरण वह कृष्ण के हाथ से नहीं करता वरन् अन्तःपुर के सभी लोगों को मोह निद्रा में सुलाकर हरण कर लेता है। खदिर नाम के वन में तक्षक नाम की शिला के नीचे रख कर चल देता है।

(श्लोक ५१-५२)

विद्याधर का नाम कालसंभव (कालसंवर के स्थान पर) और उसकी रानी का नाम कंचनमाला (कनकमाला की बजाय) बताया है। (श्लोक ५४) बालक का नाम देवदत्त (प्रद्युम्न के स्थान पर) रखा।

(श्लोक ६०)

सोलह मास का फल सोलह वर्ष १२

अमृत सलिला गङ्गा के तट पर कोई प्यासा नही रहता तो अनन्त ज्ञानी सीमधर स्वामी के चरण-कमलो मे वैठे नारद ही क्यो अपनी जिज्ञासा शात न करते ? अजलि वाँधकर खडे हो गए और पूछने लगे—

—नाथ ! रुक्मिणी को पुत्र-वियोग किस कर्म के कारण भोगना पड़ेगा ?

प्रभु रुक्मिणी के पूर्व-भव वताने लगे—

इस जम्वूद्वीप के भरतक्षेत्र मे मगध देश के अन्तर्गत लक्ष्मीग्राम नाम का एक ग्राम है । उसमे सोमदेव नाम का एक ब्राह्मण रहता था । उसकी स्त्री का नाम था लक्ष्मीवती । लक्ष्मीवती एक वार उपवन मे गई । वहाँ एक मोर का अण्डा पडा हुआ था । लक्ष्मीवती ने उत्सुकता-वश वह अण्डा उठा लिया और कुछ समय तक ध्यानपूर्वक देखकर उसे पुन उसी स्थान पर रख दिया ।

लक्ष्मीवती तो वहाँ मे चली आई किन्तु उसके हाथो के कुकुम के कारण अण्डे के रग और गध परिवर्तित हो गये । मोरनी ने उसे देखा और सूँघा तो उमे वह अपना अण्डा ही न मालूम पडा । उसने वह सेया नही । सोलह घडी तक अण्डा इसी प्रकार पडा रहा । सयोग से वरसात हो जाने के कारण जव उसका रग धुल गया और गध वायु तथा पानी के साथ वह गई तव उसका असली रग-रूप और गध उभर आया । मयूरी ने अपने अण्डे को पहिचाना और सेया ।

अण्टे से उचित समय पर उत्तम मोर का वच्चा निकला । लक्ष्मीवती पुन उद्यान गई और मोर के छोटे से शिशु पर मोहित हो गई । मोरनी रोती ही रह गई और लक्ष्मीवती उस वच्चे को पकड

लाई। घर लाकर उसने उसे पिजरे मे रख दिया। लक्ष्मीवती उसे वडे प्रेम से अन्न-पान आदि खिलाती और सुन्दर नृत्य करने की शिक्षा देती।

लक्ष्मीवती तो मोर का वच्चा पाकर मगन थी किन्तु मोरनी अपने शिशु से विछुड कर विह्वल। वह रात-दिन रोती। उसके आक्रन्दन से द्रवीभूत होकर नगर-निवासियो ने लक्ष्मीवती के पास आकर कहा—

—तुम्हारा तो खेल हो रहा है और वह वेचारी मोरनी मरी जा रही है। उसके वच्चे को छोड दो।

लोकनिन्दा के भय से लक्ष्मीवती उस मोर के वच्चे को छोडने को तत्पर हो गई। उसने वह वच्चा उसकी माता के पास जाकर छोड दिया। मोर का नवजात शिशु अव सोलह मास का युवा हो चुका था।

उस समय लक्ष्मीवती ने सोलह वर्ष के पुत्र-वियोग का घोर असाता वेदनीय और अन्तराय कर्म वॉधा।

एक समय लक्ष्मीवती अपने सुन्दर रूप को दर्पण मे देख रही थी। उसी समय मुनि समाधिगुप्त भिक्षा के लिए उसके घर मे आए। उन्हे देखकर उसके पति सोमदेव ने कहा—

—भद्रे! मुनिराज को भिक्षा दो।

उसी समय सोमदेव को किसी अन्य पुरुप ने बुला लिया और वह चला गया।

अपने शृङ्गार मे वाधा पडने के कारण लक्ष्मीवती कुपित तो हो ही गई थी। पति की अनुपस्थिति मे उसने घृणापूर्वक मुनिश्री को कठोर वचन कहकर घर से निकाल दिया और शीघ्र ही दरवाजा वन्द कर लिया।

मुनि-जुगुप्सा के तीव्र पाप के फलस्वरूप उसे सातवे दिन गलित कुष्ट रोग हो गया। रोग की वेदना से वह छटपटाने लगी। जव वेदना असह्य हो गई तो वह अग्नि मे जल मरी। आर्त परिणामो के कारण उसी गॉव मे धोवी के घर मे गधेड़ी हुई। वहॉ से मरी तो विष्टा

खाने वाली डुक्करी (शूकरी) हुई। पुन' उसने कूकरी (कुतिया) का जन्म लिया। इस जन्म मे दावानल में दग्ध होते हुए उसने किसी शुभ परिणाम से मनुष्य आयु का वध किया। प्राण त्याग कर वह नर्मदा नदी के किनारे भृगुकच्छ (भडौच) नगर मे काणा नाम की एक मच्छीमार की पुत्री हुई।

काणा की काया अति दुर्गन्धमयी थी। उसकी दुर्गन्ध ऐसी असह्य थी कि माता-पिता न सह सके और नर्मदा के किनारे छोड आए। किसी प्रकार वह युवती हुई और लोगो को नाव मे बिठाकर नदी पार उतार कर अपनी जीविका उपार्जन करने लगी।

दैवयोग से मुनि समाधिगुप्त वहाँ आ गए। दिन का चौथा प्रहर प्रारम्भ हो गया अत नदी किनारे ही मुनिराज कायोत्सर्ग मे लीन हो गए।

भयङ्कर शीत पड रहा था। दिन में सूर्य के आतप मे ही शरीर की ठठरी बँध जाती जिसमे तो अब रात का धुँधलका छाने लगा। काणा ने सोचा ये साधु ऐसे शीत मे कैसे रह सकेगे। उसने दयार्द्र चित्त होकर मुनि को तृणो से ढक दिया।

रात्रि व्यतीत हुई। प्रात काल होने पर मुनिश्री का ध्यान पूरा हुआ। काणा ने मुनि को भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। धर्मलाभ का शुभाशीष देकर मुनि ने सोचा कि 'यह कन्या भद्र परिणाम वाली है' अत उन्होने उसे धर्मदेशना दी।

धर्मदेशना सुनते हुए काणा मुनिश्री की ओर टकटकी लगाकर देखती रही। उसके हृदय मे बार-बार विचार उमडता —'कही देखा है ? कहाँ ? कुछ याद नही ?' काणा अपनी जिज्ञासा रोक न सकी, पूछ बैठी —

—महाराजश्री ! मैंने आपको कही देखा है। पर कहाँ ? कुछ स्मरण नही आ रहा। आप ही बताइये।

मुनिश्री ने उत्तर दिया—

—मत पूछो काणा तुम्हे दुख होगा।

यह सुनकर काणा की जिज्ञासा और भी तीव्र हो गई। यह वार-वार आग्रह करने लगी। तव मुनि ने उसे उसके पूर्वभव सुना दिये।

मुनिराज के प्रति अपनी जुगुप्सा के कारण काणा को वडा पश्चात्ताप हुआ। वह वार-वार स्वय को धिक्कारने लगी। मुनिश्री से उसने वारम्वार क्षमा माँगी।

काणा परम श्राविका हो गई। मुनिश्री ने उसे धर्मश्री नाम की आर्या को सौप दिया। वह आर्याजी के साथ विहार करते हुए सद्धर्म का पालन भली-भाँति करने लगी।

एक वार किसी गाँव के नायल नाम के श्रावक को आर्याजी ने उसे सौंप दिया। नायल के आश्रय मे रहती हुई श्राविका काणा एकातर उपवास करती हुई अर्हन्त आराधना मे लीन रहती। अन्त समय मे अनशन पूर्वक मरण करके वह अच्युत इन्द्र की इन्द्राणी वनी। वहाँ से आयुष्य पूर्ण करके वह रुक्मिणी हुई है।

हे नारद! मयूरी के वच्चे को सोलह मास तक माता विछोह कराने के कारण इसने जो तीव्र असाता का वन्ध किया था उसका फल रुक्मिणी को भोगना ही पडेगा क्योकि किये हुए कर्मो का फल भोगना ही सासारिक जीव की नियति है।

इतना कहकर प्रभु सीमधर स्वामी मौन हो गए।

नारद की जिज्ञासा भी शात हो चुकी थी। अत उन्हे श्रीकृष्ण को दिए हुए वचन का स्मरण हो आया। केवली भगवान को नमन-वन्दन करके नारद विदेह क्षेत्र से चले तो सीधे वैताढ्यगिरि पर जा पहुँचे।

मेघकूटनगर की राजसभा मे नारद पधारे तो विद्याधर कालसवर ने उनका हार्दिक स्वागत किया। नारद ने पूछा—

—विद्याधर! वहुत प्रसन्न हो।

—हाँ देवर्षि! आपकी कृपा से मुझे पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई है!

—अति सुन्दर ! अति सुन्दर !! बधाई हो विद्याधर ! देखने मे कैसा लगता है, कुमार ?

—आपसे क्या छिपाव, नारदजी ! महल मे चलिए। अपनी आँखो से देख लीजिए।

कालसवर नारद को महल मे ले गया। वहाँ उसने शिशु को लाकर उन्हे दिखाया। नारदजी गद्गद् हो गए। कुछ समय तक एक-टक देखते रहे फिर पूछा—

—क्या नाम रखा है, इस नन्हे-मुन्ने का ?

—जी, प्रद्युम्न !

—बहुत ठीक। इसके मुख के प्रकाश से दिशाएँ जगमगा रही है। सही नाम रखा है तुमने।

नारदजी की इस बात को सुन कर विद्याधर कालसवर गद्गद् हो गया। नारदजी ने शिशु को आशीर्वाद दिया और वहाँ से चल पड़े।

द्वारका आकर नारद ने कृष्ण-रुक्मिणी को पूरा वृतान्त कह सुनाया।

रुक्मिणी ने लक्ष्मीवती आदि अपने पूर्वभव सुनकर मयूर के शिशु को उसकी माता से विछोह कराने पर बहुत पश्चात्ताप किया। मुनि-जुगुप्सा के कर्म की निन्दा की और भक्तिभावपूर्वक वही से सीमधर स्वामी को भाव-नमन किया।

श्रीकृष्ण भी सीमन्धर स्वामी को मन ही मन नमन करने लगे।

अर्हन्त प्रभु के वचनानुसार 'सोलह वर्ष बाद पुत्र से मिलाप होगा' यह विश्वास कर रुक्मिणी ने धैर्य धारण कर लिया।

—त्रिषष्टि० ८।६

—उत्तर पुराण ७१।३१६—३४१

विशेष—उत्तरपुराण मे कथानक तो लगभग यही है किन्तु दूसरे रूप से प्रस्तुत किया गया है। सक्षेप मे कथानक इस प्रकार है—

भगवान अरिष्टनेमि के समवशरण मे गणधर वरदत्त से रुक्मिणी ने अपने पूर्वभव पूछे तो उन्होने बताया—

भरतक्षेत्र के मगधदेश मे लक्ष्मी नाम का गाँव था। वहाँ सोम नाम का ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री का नाम लक्ष्मीमती था। वह आभूषण पहनकर दर्पण मे अपना रूप निरख कर विभोर हो रही थी। इतने मे समाधिगुप्त मुनि भिक्षा के लिए आए। वह उनसे घृणा करके निन्दावचन कहने लगी। फलस्वरूप सात दिन बाद ही उसे कुष्ट रोग हो गया। पति के प्रति प्रेम रखकर मरी तो उसी घर मे छछूदर हुई। पूर्वभव के पति-प्रेम के कारण बार-बार सोम ब्राह्मण के पास जाती। ब्राह्मण ने क्रोध करके उसे बडे जोर से पटका जिससे मर कर सर्पिणी हुई फिर गधा हुई। गधा बार-बार उसी ब्राह्मण के पास जाता तो एक दिन उसने पत्थर मार कर उस गधे की टाँग ही तोड दी। उसके घाव मे कीडे पड गए और वह कूए मे गिर कर मर गया। मर कर उसी गाँव के बाहर अधा सूअर हुआ। गाँव के कुत्तो ने उसे काट खाया। जिससे मर कर वह मन्दिर नाम के गाँव मे मत्स्य नाम के धीवर की स्त्री मडूकी से पूतका नाम की कन्या हुई। उत्पन्न होते ही उसके माँ-बाप मर गए। एक दिन वह नदी किनारे बैठी थी कि उन्ही समाधिगुप्त मुनि के दर्शन हो गए। धर्मोपदेश सुनकर वह पर्वो मे उपवास करने लगी। दूसरे दिन किसी अर्जिका के साथ हो ली। आयु के अन्त मे समाधिपूर्वक मरण करके अच्युत स्वर्ग के इन्द्र की प्रियवल्लभा हुई। वहाँ से च्यवकर कुडिनपुर के राजा वासव की रानी श्रीमती से अब रुक्मिणी नाम की पुत्री हुई है।

[नोट—यहाँ मयूरी के अडे और बच्चे के हरण की घटना का कोई उल्लेख नही है।

१३ द्रौपदी स्वयंवर

कापिल्यपुर नरेश राजा द्रुपद की पुत्री राजकुमारी द्रौपदी ने भरी स्वयवर सभा मे वरमाला पाँचो पाँडवो[1] के गले मे अति आसक्त होकर डाल दी।

---

१ पाँचो पाडवो का सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है —

आदि जिनेश्वर भगवान ऋषभदेव के एक पुत्र का नाम कुरु था। उसके नाम पर ही भारतवर्ष के एक प्रदेश का नाम कुरुजागल पडा। कुरु का पुत्र हस्ती हुआ। उसके नाम पर हस्तिनापुर नगर बसाया गया। हस्ती की वश परपरा मे अनन्तवीर्य राजा हुआ और उसका पुत्र कृतवीर्य। कृतवीर्य का पुत्र हुआ सुभूम चक्रवर्ती। सुभूम की ही वश परम्परा मे अनेक राजाओ के पश्चात शातनु नाम का राजा हुआ।

शातनु की दो स्त्रियाँ थी—गगा और सत्यवती। गगा का पुत्र हुआ भीष्म जो भीष्म पितामह के नाम से विख्यात हुआ और सत्यवती के दो पुत्र हुए—चित्रागद और चित्रवीर्य।

भीष्म तो आजीवन ब्रह्मचारी रहे और चित्रवीर्य का विवाह अबिका, अबालिका और अबा तीन राजकुमारियो मे हुआ। अबिका से धृतराष्ट्र, अबालिका से पाडु और अम्बा से विदुर ये तीन पुत्र हुए।

धृतराष्ट्र का विवाह हुआ गाधार नरेश सुबल की गाधारी आदि आठ कन्याओ से। शकुनि इन गाधारी आदि बहनो का भाई था। धृतराष्ट्र के दुर्योधन आदि सौ पुत्र हुए।

पाडु का विवाह कुन्ती और माद्री दो राजकन्याओ से हुआ। कुन्ती से उनके तीन पुत्र थे—युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन तथा माद्री

इस अद्भुत और अकरणीय कार्य को देखकर उपस्थित राजा एव वासुदेव कृष्ण, वलराम, दशो दशार्ह आदि सभी चकित रह गए। उनके मुख से भाँति-भाँति शब्द निकलने लगे—

—यह क्या ?

—घोर अकृत्य।

—अन्यायपूर्ण आचरण।

—एक स्त्री के पाँच पति।

—न कभी सुना न देखा।

एक राजा ने कुछ सयत स्वर मे कहा—

—सभवत राज-पुत्री पर किसी कुदेव की छाया पड गई है।

महाराज द्रुपद अपनी पुत्री के इस अनोखे कृत्य पर वडे दुखी हुए। वे तो हतप्रभ ही रह गए। कुछ वोल ही न सके। पुत्री ने एक ऐसा प्रश्नचिह्न उपस्थित कर दिया था जिसका समाधान आवश्यक था। किन्तु समाधान कौन करे ? वरमाला कण्ठ मे पडते ही पाँचो पाडव उसके पति हो गए—यही लौकिक रीति थी, किन्तु लौकिक परम्परा मे एक स्त्री के अनेक पति नही हो सकते, यह अति निद्य था। हाँ, एक पति की अनेक पत्नियाँ समाज द्वारा मान्य थी।

राजा लोग समाधान के लिए वासुदेव कृष्ण की ओर देखने लगे—क्योकि वही उस समय विवेकी और नीतिवान राजा थे। कृष्ण दशो दशार्ह की ओर देखते। नजरे मिलती और फिर हट जाती। किसी को

(यह शल्य राजा की वहन थी) से नकुल और सहदेव दो पुत्र। ये पाँचो पाडु राजा के पुत्र होने के कारण पाडव कहलाते थे।

चित्रवीर्य की मृत्यु के पश्चात हस्तिनापुर का सिहासन पाडु को मिला किन्तु वह मृगया प्रेमी थे। अत राज्य का सचालन धृतराष्ट्र के हाथो मे सौपकर वे निश्चित से हो गये। फिर भी शासक तो पाडु ही थे।

पाँचो पाडव न्याय नीतिपूर्ण आचरण करने वाले थे।

कुछ सूझ ही नही रहा था। लोग आकाश की ओर देखने लगे। शायद कोई दैवी चमत्कार हो और इस समस्या का समाधान मिले।

सभी चकित थे किन्तु द्रौपदी सहज खडी थी—मानो कुछ हुआ ही न हो। जैसे उसने कोई अकार्य किया ही न हो।

तभी एक चारण ऋद्धिधारी श्रमण आकाश से उतरे। सभी ने उठकर वन्दन किया। कृष्णादिक राजाओ ने विनयपूर्वक पूछा—

—प्रभो! क्या इस द्रौपदी के पाँच पति होगे? क्या यह पंचभर्तारी कहलाएगी?

—इसमे आश्चर्य की क्या बात है?—मुनिश्री ने सहज स्वर मे उत्तर दिया।

—यह तो लोक-रीति के विपरीत है?

—किन्तु कर्मफल लोक-रीति से बँधकर ही नही चलता? द्रौपदी ने पूर्वभव मे जैसा निदान किया था वैसा ही तो फल प्राप्त होगा।

—भगवन्! द्रौपदी के पूर्वभव सुनाइये। इसने ऐसा विचित्र निदान क्यो किया?

सभी की जिज्ञासा जान कर मुनिराज द्रौपदी के पूर्वभव बताने लगे—

चम्पानगरी मे सोमदेव, सोमभूति और सोमदत्त नाम के तीन ब्राह्मण रहते थे। वे तीनो सहोदर भाई थे। तीनो मे बहुत स्नेह था। सोमदेव की स्त्री का नाम नागश्री था। सोमभूति की स्त्री भूतश्री और सोमदत्त की यक्षश्री थी। सभी भाइयो ने निश्चय किया कि तीनो बारी-बारी से एक दूसरे के घर भोजन किया करेगे।

इस क्रम के अनुसार एक दिन तीनो भाई सोमदेव के घर भोजन करने गए। नागश्री ने अनेक प्रकार के सरस व्यजन बनाए। कई प्रकार के शाक बना कर उसके हृदय मे भावना हुई कि इन्हे चख कर तो देखूँ कही स्वाद मे कोई कमी न रह गई हो। चखते-चखते ज्योही तुम्बी के शाक की एक बूँद जीभ पर रखी तो थूक दिया—जहर के समान कडवी थी वह। सोचा—यह क्या हो गया? ऐसा कडवा शाक

कैसे परोसा जा सकता है ? अत वह तो ढक कर एक ओर रख दिया और पति एव देवरो को दूसरे शाको से भोजन करा दिया।

नागश्री यह सोच ही रही थी कि इस शाक का क्या किया जाये कि मासखमण के पारणे हेतु धर्मरुचि अनगार आते दिखाई दिये। उसने वह सारा शाक उन्हे वहरा दिया। मुनिश्री जब शाक लेकर आचार्य धर्मघोष के पास पहुँचे तो उन्होने उठती हुई गन्ध से ही समझ लिया कि यह शाक नही जहर है। उन्होने कहा—भद्र ! इसे निर्दोष स्थान पर परठ दो। यह अखाद्य है। जो भी खाएगा उसका प्राणान्त ही समझो। धर्मरुचि ने प्रयास करके निर्दोष स्थान ढूँढा। परठने को उद्यत हुए तो पहले एक बूँद जमीन पर डाल कर देखी। शाक की तीव्र सुगन्धि से आकर्षित होकर अनेक चीटियाँ आदि आई और चखते ही काल के मुँह मे समा गयी। मुनिश्री को अनुकम्पा हो आई। उन्होने सोचा—जब एक बूँद का ही यह परिणाम तो सम्पूर्ण शाक का कैसा भयकर दुष्परिणाम होगा ? यह सोचकर उन्होने स्वय ही शाक खा लिया और समाधिपूर्वक देह त्याग दी। वे सर्वार्थसिद्ध विमान मे अहमिद्र हुए।

धर्मरुचि को जब काफी देर हो गई तो आचार्य धर्मघोष को चिन्ता हुई। उन्होने दो साधुओ को उनकी खोज मे भेजा। उन्होने लौटकर बताया कि उन्होने तो देहत्याग दी है। यह समाचार और मुनिश्री की मृत्यु का कारण लोगो को पता लगा तो सबने नागश्री को धिक्कारा। सोमदेव ने भी उसके अक्षम्य अपराध के कारण उसे घर से निकाल दिया।

नागश्री दु खी होकर भटकने लगी। उसके शरीर मे कास, श्वास, कुष्ठ आदि अनेक महारोग हो गए। वह नारकीय वेदना भोगने लगी। मरकर छठे नरक मे गई। वहाँ से निकल कर चाडालिनी वनी। पुन मरी और सातवे नरक मे पडी। वहाँ से निकली तो म्लेच्छ वनी, फिर नरक मे उत्पन्न हुई। इस प्रकार नागश्री ने प्रत्येक नरक की वेदना दो-दो वार भोगी। फिर पृथ्वीकाय आदि जीवो मे कई वार उत्पन्न

हुई। तव चम्पानगरी मे सागरदत्त सेठ की स्त्री सुभद्रा के गर्भ से सुकुमारिका नाम की पुत्री हुई।

उसी नगर मे जिनदत्त नाम का एक धनी सार्थवाह था। वह एक वार सेठ सागरदत्त के घर आया तो उसने सुकुमारिका को अपने पुत्र सागर के योग्य समझा। उसने उसकी मागणी की तो सागरदत्त ने कह दिया—'पुत्री मुझे प्राणो से प्यारी है, यदि तुम्हारा पुत्र घरजँवाई वनने को तैयार हो तो विवाह हो सकता है।' जिनदत्त ने जव यह वात अपने पुत्र सागर से पूछी तो वह चुप रह गया। उसके मौन को को सम्मति समझ कर जिनदत्त ने उसका विवाह सुकुमारिका से कर दिया। रात्रि को ज्यो ही सुकुमारिका ने उसका स्पर्श किया तो सागर का शरीर अगारे की भाँति जलने लगा। कुछ समय वाद जव सुकुमारिका सो गई तो वह चुपचाप उठा और अपने घर आ गया।

प्रात जब सागर न मिला तो सेठ सागरदत्त उलाहना देने जिनदत्त के घर गया। उस समय जिनदत्त अपने पुत्र से कह रहा था 'तुमने वहाँ से आकर अच्छा नही किया। मैंने समाज के भद्रपुरुषो के समक्ष वचन दिया है कि तुम सागरदत्त सेठ के घरजँवाई हो और उसी के यहाँ रहोगे। इसलिए तुम तुरन्त वहाँ चले जाओ।'

सागर ने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया—'मै अग्नि मे कूद सकता हूँ किन्तु सुकुमारिका के साथ नही रह सकता।'

पिता-पुत्र की यह वाते सागरदत्त भी वाहर से कान लगाए सुन रहा था। उसे विश्वास हो गया कि सागर को उसकी पुत्री से घोर अरुचि है। अत विना कुछ कहे ही उल्टे पाँव लौट आया और सुकुमारिका से वोला—

—पुत्री! सागर तो अव तुम्हारे साथ रहेगा नही। मैं तुम्हारा दूसरा विवाह कर दूँगा। तुम खेद मत करो।

दूसरा विवाह किया सागरदत्त ने अपनी पुत्री का एक दीन-हीन पुरुष के साथ। किन्तु उसके साथ भी वैसा ही हुआ और वह रात को ही भाग गया।

अब सागरदत्त ने कहा—मैं क्या करूँ ? तुम्हारे पाप का उदय है। अब तो तुम धैर्य ही रखो और विवाह की आशा त्याग दो।

सुकुमारिका ने भी पिता का कथन स्वीकार कर लिया। धर्म मे तत्पर रहने लगी। एक बार गोपालिका नाम की साध्वी उसके घर आई तो उसने सयम ग्रहण कर लिया और गुरुणी के साथ छट्ठम-तप करने लगी। एक बार उसने गुरुणी से पूछा—यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं सुभूमिभाग उद्यान मे सूर्य आतापना[1] लूँ। गुरुणी ने कहा—उपाश्रय से बाहर सूर्य आतापना लेना साध्वी को नही कल्पता, ऐसा आगम का वचन है। किन्तु वह न मानी और सुभूमिभाग उद्यान मे आतापना लेने लगी।

उद्यान मे उसका ध्यान हास्य और विनोद की आवाजो से भग हो गया। सूर्यबिम्ब पर से दृष्टि आवाज की ओर घूम गई। देखा—देवदत्ता नाम की वेश्या अपने प्रेमियो के साथ बैठी विनोद कर रही है। एक ने उसे अक मे ले रखा है, दूसरा उसके सिर पर छत्र रख रहा है, तीसरा अपने वस्त्रो से पखा झल रहा है, चौथा उसका केश शृङ्गार कर रहा है और पाँचवाँ उसके चरण पकडे बैठा है। सुकुमारिका की सोई वासना जाग उठी। उसे वेश्या के भाग्य से ईर्ष्या हुई। वासना के तीव्र आवेग में उसने निदान किया—'इस तपस्या के फलस्वरूप मैं इस वेश्या के समान ही पाँच पति वाली बनूँ।'

इसके पश्चात् उसकी प्रवृत्ति ही बदल गई। वह अपने शरीर-शृ गार की ओर ध्यान देने लगी। गुरुणीजी ने वर्जना दी फिर भी वह न मानी और उपाश्रय से अलग रहने लगी। कालधर्म पाकर सौधर्म स्वर्ग मे देवी बनी और वहाँ से च्यव कर द्रौपदी हुई है।

मुनिश्री ने द्रौपदी के पूर्वभव बताकर कहा—

—कर्म का फल तो भोगना ही पडता है। द्रौपदी कृतनिदान है।

---

१ सूर्य आतापना मे कायोत्सर्गपूर्वक सूर्यबिम्ब को अपलक दृष्टि से देखा जाता है। यह तप का एक प्रकार है।

प्रद्युम्न का द्वारका आगमन १४

विद्याधर कालसवर और उसकी रानी कनकमाला के प्यार-दुलार मे पलता हुआ प्रद्युम्न युवा हो गया। उसकी आयु सोलह वर्ष की हो गई। अग-सौप्ठव वढ गया। उसको प्यार से बुलाकर कनकमाला ने अपने पार्श्व मे विठाया। सहजभाव से प्रद्युम्न वैठ गया। कनकमाला उसके शरीर पर हाथ फेरने लगी किन्तु आज का स्पर्श और प्यार माँ का वात्सल्य न होकर कामिनी का कामोत्तेजक उन्माद था। प्रद्युम्न माता के हाव-भाव और विचित्र चेष्टाओ को ध्यानपूर्वक देखने लगा।

—प्रद्युम्न अव तुम युवा हो गए हो। मेरे साथ भोग करो!—कनकमाला ने काम याचना की।

सुनते ही प्रद्युम्न चकित रह गया। उसने कहा—

—ऐसा पाप! घोर अनर्थ! आप मेरी माता है, फिर भी यह भावना? लज्जा आनी चाहिए।

— मैं तुम्हारी माँ नही हूँ। तुम न जाने किसके पुत्र हो। अग्नि-ज्वालपुर से आते समय तुम मार्ग मे मिल गए थे। मैंने तो पालन ही किया है।

—पालन करने वाली भी माँ ही होती है।

—और उसका पहला अधिकार भी होता है। देखो, माली वृक्ष का पालन करता है और फल आने पर वही उनका उपभोग भी।—कनकमाला ने तर्क दिया।

—वृक्ष और पुत्र दोनो की समानता नही हो सकती। तुम्हारी यह इच्छा सर्वथा अनुचित है।

—उचित-अनुचित मैं नही जानती। मेरा तुम पर अधिकार है और मैं तुम्हारे साथ भोग करूँगी। तुम इसको अस्वीकार नही कर सकते। —कनकमाला ने हठपूर्वक कहा।

—तो मैं तुम्हारी शिकायत पिता कालसवर से कर दूंगा।

व्यगपूर्वक हँस पडी कनकमाला। बोली—

— प्रद्युम्न तुम मेरी शक्ति को नही जानते। कालसवर मेरा कुछ नही बिगाड सकता।

— क्यो ?—चकित होकर प्रद्युम्न ने पूछा।

सुनो—कनकमाला कहने लगी—मैं उत्तर श्रेणो के नलपुर नगर के राजा निषध की पुत्री हूँ। मेरा भाई नैपधि है। पिता ने मुझे गौरी नामक विद्या दी है और कालसवर ने प्रज्ञप्ति नाम की विद्या। इन दोनो विद्याओ के कारण मैं अजेय हूँ।

प्रद्युम्न हतप्रभ होकर उसकी ओर ताकने लगा। कनकमाला ही पुन बोली—

—इसी कारण कहती हूँ कि मेरी इच्छा पूरी करते रहोगे तो सुखी रहोगे अन्यथा ।

कनकमाला ने बात अधूरी छोड दी किन्तु उसके स्वर मे स्पष्ट धमकी थी। प्रद्युम्न पशोपेश मे पड गया। यदि कनकमाला की बात स्वीकार करता है तो घोर पाप होता है और नही मानता तो असहनीय कष्ट और लोकापवाद। कामान्ध स्त्रियो का क्या भरोसा ? न जाने कैसा कपट-जाल रचदे। सोच-विचार कर उसने नीति से काम लिया। नम्र स्वर मे बोला—

—आपकी इच्छा स्वीकार करने पर कालसवर और उसके पुत्र रुष्ट होकर मुझे मार डालेगे।

—नही, मेरी विद्याएँ तुम्हारी रक्षा करेगी।

—आप आठो पहर तो मेरे साथ रहेगी नही। न जाने किस समय घात करदे।

अत यह प्रचलित लोक-परम्परा के विपरीत पाँच पति वाली ही होगी ।

सभी ने मुनि का कथन स्वीकार किया किन्तु फिर भी एक शका रह ही गई—

—भगवन् ! इस प्रकार तो स्वय द्रौपदी और पाँचो पाडवो का लोकापवाद होगा ?

—हाँ कुछ अशो मे तो होगा किन्तु फिर भी पूर्वकृत तपस्या के कारण द्रौपदी की गणना सतियो मे ही होगी ।

—पच-भर्तारी और सती ? —एक ओर से प्रश्न हुआ ।

—हाँ ऐसा ही ! कर्म की लीला बहुत विचित्र है । मुनिश्री ने कहा और आकाश मे उड गए ।

सभी ने उनका वदन किया और जब तक वे दिखाई दिये उनकी ओर देखते रहे ।

द्रौपदी का विवाह पाँचो पाँडवो[1] से हो गया ।

---

१ (क) पाडव चरित्र मे देवप्रभ सूरि ने द्रौपदी स्वयवर मे राधावेध का उल्लेख किया है । अर्जुन ने राधावेध किया । द्रौपदी के हृदय मे पाँचो पाडवो के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ । उसने अर्जुन के गले मे वरमाला डाली, वह पाँचो पाडवो के गले दिखाई पडने लगी । सभी विचार मे पड गए तभी चारण श्रमण ने आकर बताया कि द्रौपदी निदानकृत है । उन्होंने द्रौपदी के पूर्वभव का भी वर्णन किया । (सर्ग ४)

(ख) इसी प्रकार वैदिक परम्परा के मान्य ग्रथ महाभारत मे भी राधा-वेध का उल्लेख है—

जब लाक्षागृह से निकल कर पाँचो पाडव और कुन्ती ब्राह्मण वेश मे द्रुपद राजा की नगरी मे पहुँचे तो अर्जुन राधावेध मे द्रौपदी को जीत लाया । बाहर मे ही माँ को आवाज देकर कहा—माँ ! मैं एक अद्भुत वस्तु लाया हूँ । कुन्ती ने बिना देखे ही कह दिया—पाँचो भाई

द्रुपद राजा ने सभी को विदा कर दिया। पाडव भी द्रौपदी सहित हस्तिनापुर आ गए।

कुछ समय पश्चात् धृतराष्ट्र के पुत्रो को राज्य का लोभ जागा। दुर्योधन ने सभी वृद्धजनो को चाटुकारितापूर्ण विनय से प्रसन्न कर लिया। उसने छलपूर्वक पाडवो से द्यूत क्रीडा[1] मे सम्पूर्ण राज्य जीत लिया। युधिष्ठिर ने लोभ के वश द्रौपदी को भी दाॅव पर लगा दिया और उसे भी हार गए। भीम के कोप से भयभीत होकर द्रोपदी तो वापिस कर दी लेकिन राज्य पर दुर्योधन ने अपना अधिकार जमा लिया। पाडवो को अपमानित करके निकाल दिया।

वनवास की अवधि के बाद पाडव द्वारका पहुँचे। वहाॅ समुद्रविजय आदि सभी ने उसका स्वागत किया। दशार्हो ने लक्ष्मीवती, वेगवती, सुभद्रा, विजया ओर रति नाम की अपनी पुत्रियो का विवाह अनुक्रम से युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव के साथ कर दिया। कुन्ती सहित पाॅचो पाडव सुखपूर्वक द्वारका मे रहने लगे।

—त्रिषष्टि० ८।६

●

बाॅट लो। और द्रोपदी पाँचो भाइयो की पत्नी बन गई। इसके आगे इतना उल्लेख और है कि जब द्रुपद राज इसके लिए तैयार न हुए तो वेदव्यास ने आकर कहा—द्रौपदी की उत्पत्ति अग्नि से हुई है। अत यह पाच पतियो की पत्नी होते हुए भी सती रहेगी। तब द्रौपदी का विवाह पाँचो पाडवो मे हो गया।

(ग) उत्तर पुराण के अनुसार—स्वयवर मे द्रौपदी ने अर्जुन के गले मे वरमाला डाली (७२।२११)।

१ वैदिक परम्परा के मान्य ग्रन्थो मे द्यूत क्रीडा का विस्तारपूर्वक उल्लेख है। वहाँ द्रौपदी का चीरहरण, श्रीकृष्ण द्वारा चीर को बढाया जाना, धृतराष्ट्र तथा अन्य गुरुजनो के समझाने पर १२ वर्ष का वनवास और एक वर्ष के अज्ञातवास की शर्त पर द्रौपदी को मुक्त करना आदि विविध प्रसगो का वर्णन है। इस वनोवास मे पाॅचो पाडव और द्रौपदी गए थे।

—यदि तुम मुझे वचन दो तो मै तुम्हे दोनो विद्याएँ दे दूँ। तुम अजेय हो जाओगे।

—हाँ, यह ठीक है।

कामाध कनकमाला ने विना कुछ सोचे-विचारे प्रद्युम्न को दोनो विद्याएँ दे दी। उसने भी उन्हे शीघ्र ही सिद्ध कर किया। विद्यासिद्धि के पश्चात कनकमाला ने उसे वचन की याद दिलाई और पुन काम-याचना की तो प्रद्युम्न ने कह दिया, 'अव तो आपकी इच्छा पूरी होना विलकुल ही असभव है। आप मेरी गुरु हैं और गुरु के साथ ऐसा सबध होना सर्वथा अनुचित है।' किन्तु कनकमाला न उसकी वात की ओर ध्यान नही दिया। वह वार-वार आग्रह करने लगी। जव प्रद्युम्न ने देखा कि यह काम की गध मे अधी हो गई है तो वह उसे फटकार कर महल से निकल गया और कालावुका नाम की वापिका के किनारे जा पहुँचा। वहाँ वह अपने भावी जीवन पर विचार करने लगा।

अपना मनोरथ विफल होने पर कनकमाला नागिन की तरह वल खाने लगी। उसने त्रियाचरित्र प्रारभ किया। अपने हाथो से ही अपने वस्त्र फाड डाले, शरीर पर नाखूनो से खरोंचे लगा ली और पुकार करने लगी। तुरन्त ही पुत्र दौडे आये। उसने रो-रोकर कहा—'प्रद्युम्न ने वलात्कार की इच्छा से मेरी यह दशा कर दी है।'

पुत्रो को प्रद्युम्न पर वडा क्रोध आया। वे उसे मारने के लिए दौड पडे। किन्तु गौरी और प्रज्ञप्ति महाविद्याओ के कारण वह अजेय था। उसने सभी को मौत की नीद मे सुला दिया। कालसवर भी पत्नी की वेइज्जती और पुत्रो की मृत्यु से लाल अगारा हो गया। प्रद्युम्न को मारने पहुँचा तो विद्या-वल से प्रद्युम्न ने उसे पराजित कर दिया। कालसवर उसके विद्यावल को देखकर हतप्रभ रह गया। चकित होकर उसने पूछा—

—प्रद्युम्न! तुम्हे इन महाविद्याओ की प्राप्ति कैसे हुई?

तव प्रद्युम्न ने सपूर्ण वृतान्त सुनाकर कहा—

—अपना कुटिल मनोरथ पूर्ण करने के लिए माता ने मुझे ये

विद्याएँ दी थी और मैं उनकी इच्छा पूर्ण किए विना ही यहाँ चला आया ।

कालसवर को वहुत दु ख हुआ। उसने प्रद्युम्न की प्रशसा की और घर वापिस चलने का आग्रह। तभी नारदमुनि आकाश-मार्ग से घूमते-घामते वहाँ आ पहुँचे और प्रद्युम्न को उसके वास्तविक माता-पिता का परिचय देकर कहा—

—प्रद्युम्न ! अव तुरन्त ही द्वारका चलने की तैयारी करो ।

कालसवर ने पूछा—

—तुरन्त ही क्यो मुनिवर !

नारद ने वताया—

—इसकी माता रुक्मिणी और विमाता सत्यभामा मे यह शर्त तय हुई थी कि जिसके पुत्र का विवाह पहले होगा दूसरी अपने केश काट कर उसको देगी। सत्यभामा के पुत्र भानुक का विवाह शीघ्र ही होने वाला है। अत केशदान के अपमान और पुत्रवियोग के कारण रुक्मिणी का प्राणान्त निश्चित है ।

माता का अपमान हो जाय और प्रद्युम्न जैसा पुत्र देखता रह जाय—यह कैसे सभव था। उसने तुरन्त कालसवर से उसके चरण छूकर विदा ली और विद्यावल से रथ का निर्माण कर नारद के साथ द्वारका आ पहुँचा। द्वारका के समीप आते ही नारद ने कहा—

—वत्स ! यह तुम्हारे पिता श्रीकृष्ण की नगरी है। इसका निर्माण सुस्थित देव ने किया है और कुवेर ने धन एव रत्नो से इसे परिपूर्ण कर दिया है ।

प्रद्युम्न को विनोद सूझा। उसने कहा—

—मुनिवर ! आप कुछ समय तक विमान मे ही विश्राम कीजिए तव तक मैं नगर मे कुछ कौतुक कर आऊँ ।

नारद तो कौतुक प्रेमी थे ही, तुरन्त हँसकर स्वीकृति दे दी ।

प्रद्युम्न चला तो सीधा वहीं पहुँचा जहाँ भानुक के साथ परणी

जाने वाली कन्या वैठी थी। उसका हरण किया और नारदजी के पास ला विठाया। राज-पुत्री घवडाने लगी तो नारद ने धैर्य वँधाया—

—निश्चित रहो, वत्से ! यह कृष्ण का ही पुत्र है और मेरे पास तुम्हे किसी प्रकार का भय नही है।

कन्या को नारद के पास छोडकर प्रद्युम्न ने अपने साथ एक माया-रचित वानर लिया और उद्यानपालको के पास जाकर कहा—

—यह वानर वहुत भूखा है; कुछ फल वगैरह दे दो।

—इस उद्यान के फल भानुककुमार के विवाह के लिए सुरक्षित है, इसलिए कुछ मत माँगो। —उद्यानपालको ने उत्तर दिया।

—एक छोटा सा वानर है। खायेगा ही कितना ? मुँह माँगा धन ले लो और इसे अपनी भूख वुझा लेने दो।

यह कहकर प्रद्युम्न ने उद्यानपालको को धन देकर प्रसन्न कर लिया। उन्होने वानर को अन्दर चला जाने दिया। मायावी वानर ने उद्यान को फलरहित ही कर डाला।

अव प्रद्युम्न के पास एक अश्व था। घास और दाना वेचने वाले दूकानदार से जाकर कहा—

—मेरे अश्व के लिए दाना-घास दे दो।

उसने भी भानुककुमार के विवाह के लिए 'दाना-घास सुरक्षित है, तुम्हे नही मिल सकता' कहकर उसे लौटाना चाहा तो वहाँ भी प्रद्युम्न ने धन देकर अपना काम वनाया। एक के वाद एक सभी दूकानो पर दाना-घास खतम हो गया। मायावी अश्व ने दाने-घास से तनिक भी दोस्ती न निभाई। सव सफाचट कर गया।

अव प्रद्युम्न ने सभी जलाशयो, कुओ, वावड़ियो को विद्यावल से जलरहित कर दिया।

नगर मे इस प्रकार का कौतुक करके वह राजमहल की ओर चला। साथ मे अश्व था। उसे क्रीडा कराने लगा। सुन्दर अश्व पर कुमार भानुक की दृष्टि पडी तो ललचा गया। उसने पूछा—

—कितने मे वेचोगे ? जो मूल्य माँगोगे, वही दूँगा।

—मूल्य की वात पीछे हो जायगी, पहले परीक्षा करलो।—प्रद्युम्न ने सलाह की वात वताई।

भानुक प्रस्तुत हो गया। अकड़कर जैसे ही अश्व पर वैठा तो तुरन्त ही भूमि पर दिखाई दिया। दर्शक हँस पडे। भानुक ने कई वार प्रयास किया किन्तु हर वार जमीन चाटी। दर्शक गण हँसते-हँसते लोट-पोट हुए जा रहे थे। भानुक लज्जित होकर अपने भवन मे जा छिपा। साधारण अश्व होता तो वह सवारी कर भी लेता किन्तु वह तो मायावी था।

भानुक की हँसी उडवाकर प्रद्युम्न मेढे पर सवार होकर कृष्ण की सभा मे जा पहुँचा। उसकी विचित्र चेष्टाओ को देखकर सभी सभासद हँसते-हँसते लोट-पोट हो गए।

सभासदो को हँसता हुआ छोडा और ब्राह्मण का वेश धारण करके मधुर स्वर मे वेद-पाठ करता हुआ प्रद्युम्न द्वारका की गलियो मे घूमने लगा। वही उसे सत्यभामा की कुब्जा नाम की दासी दिखाई दी। कुब्जा नाम भी उसका इसीलिए था कि उसकी कमर धनुष के समान वक्र थी। प्रद्युम्न ने विद्या-वल से उसे सीधा कर दिया। अपने वदले रूप को देखकर कुब्जा की वाँछे खिल गई। पैरो मे गिर कर वोली—

—ब्राह्मण देवता! किधर जा रहे हो?

—जहाँ पेटभर भोजन मिल जाय।

—तो मेरे साथ चलो।

—क्या भरपेट भोजन मिलेगा?

—अवश्य! मैं महारानी सत्यभामा की दासी हूँ। उनके पुत्र का विवाह है। षट्रस व्यजन वने है। वहाँ तुम्हे इच्छानुसार भोजन मिल जायेगा।

—चलो वही सही। ब्राह्मण को क्या? भरपेट भोजन से काम।

दासी ब्राह्मण को साथ लेकर सत्यभामा के महल मे आई। उसे द्वार पर खडा रहने को कह, स्वय अन्दर गई। सत्यभामा ने उसे देखा तो पहिचान ही न पाई, पूछा—

—तुम कौन हो ?

—आप मुझे न पहिचान सकी । मैं वही हूँ आप की दासी-कुब्जा ।

—कुब्जा ? तू कुरूप थी ? ऐसी सुन्दर कैसे वन गई ? क्या चमत्कार हुआ ?

—एक ब्राह्मण की कृपा है ।

—कहाँ है वह ब्राह्मण ?

—वाहर खडा है ? उसे द्वार पर खडा कर आपके पास आई हूँ ।

—उस महात्मा को जल्दी अन्दर ला ।

सत्यभामा की आज्ञा पाकर दासी ब्राह्मण को अन्दर ले पहुँची । ब्राह्मण उसे आशिष देकर वैठ गया । सत्यभामा ने विनय की—

—ब्राह्मण देवता ! मुझे भी सुन्दर वना दो ।

—तुम तो वैसे ही वहुत सुन्दर हो ।

—नहीं, और भी अधिक । विश्व की अनुपम सुन्दरी वनना है मुझे ! तुम मुझ पर कृपा करो ।—सत्यभामा ने आग्रह किया ।

—इसके लिए तुम्हे कुछ कष्ट उठाना पडेगा ।

—मैं सहर्ष प्रस्तुत हूँ ।

—तो सुनो—ब्राह्मण कपटपूर्वक कहने लगा—सुन्दर वनने के लिए पहले कुरूप होना आवश्यक है, जितनी अधिक कुरूपता उतनी ही ज्यादा सुन्दरता ।

—आप जल्दी वताइये । मै सुरूप वनने के लिए सव कुछ करूंगी ।

—सिर के केश काटकर (सिर मुडवाकर), सम्पूर्ण शरीर पर कालिख पोत कर, जीण-शीर्ण वस्त्र पहन कर आओ तव तुमको अनुपम सुन्दरता प्राप्त होगी ।

सत्यभामा ब्राह्मण का कपट न समझ सकी । उसके कथनानुसार रूप वनाकर आ वैठी । प्रद्युम्न को हँसी तो आई किन्तु वलपूर्वक रोककर उसने कहा—

—मेरे पेट मे चूहे कूद रहे है । भूख से व्याकुल हूँ । तुम्हे मालूम

ही है—भूखे भजन न होहि गुपाला। भोजन की व्यवस्था करो। पेट भरते ही तुम्हे सुन्दर वना दूँगा।

तुरन्त ही भोजन का आदेश हुआ। ब्राह्मण ने कहा—

—महारानीजी! जव तक मैं भोजन करूँ आप कुलदेवी के सामने वैठकर एकाग्रचित्त से 'रुड्वुड् रुड्वुड्' मत्र का जाप करिए।

सुन्दर वनने की लालसा मे विवेकहीन वनी सत्यभामा वहाँ से उठी और कुलदेवी के समक्ष ब्राह्मण के वताए मन्त्र का दत्तचित्त होकर जाप करने लगी।

भोजन करने वैठे ब्राह्मण देवता तो रसोई ही सफाचट कर गए। दासियाँ हैरान रह गई। पूरी वारात की भोजन सामग्री खतम करने पर भी पेट न भरा 'और लाओ, और लाओ' कहता रहा। दासियो ने हाथ जोड कर कहा—

—भोजनभट्ट! अव तो कृपा करो। रसोई मे कुछ नही वचा। कही और जाओ।

—जाता हूँ, फिर मुझसे शिकायत न करना।—और रूठ कर ब्राह्मण देवता चल दिए।

अवकी वार प्रद्युम्न किशोर साधु के रूप मे रुक्मिणी के महल मे जा पहुँचा। दूर से ही साधु को देखकर रुक्मिणी हर्षित हुई और साधु के वैठने योग्य आसन लेने हेतु घर के अन्दर गई। तव तक वह साधु श्रीकृष्ण के सिंहासन पर जा जमा। रुक्मिणी आसन लेकर आई तो उसे वहाँ वैठा देखकर चकित रह गई। वोली—

—इस सिंहासन पर श्रीकृष्ण और उनके पुत्र के अलावा किसी अन्य को देव लोग नही वैठने देते। तुम उतर जाओ।

—मेरे तपोतेज के कारण देव लोग मेरा कोई अहित नही कर सकते।—साधु ने दृढतापूर्वक कहा।

—इतनी छोटी आयु और ऐसा तपोतेज।—रुक्मिणी के स्वर मे आश्चर्य था।

—हाँ मैंने सोलह वर्ष तक निराहार तप किया है। उसी के पारणे के निमित्त तुम्हारे महल मे आया हूँ।

—सोलह वर्ष का निराहार तप! मैंने तो एक वर्ष से अधिक का निराहार तप सुना ही नही।—चकित थी रुक्मिणी।

—इससे तुम्हे क्या मतलब? कुछ देने की इच्छा हो तो दो। नही तो मैं चला सत्यभामा के महल मे। —किशोर साधु ने उठने का उपक्रम किया।

क्षमा-सी माँगती हुई रुक्मिणी बोली—

—आज मेरा चित्त बहुत दुखी है। मैंने कुछ बनाया ही नही।

—क्यो? किस कारण दुखी हो तुम?

—पुत्र वियोग मे! सोलह वर्ष पहले मेरा पुत्र बिछुड गया था। उससे मिलने के लिए कुलदेवी को आराधना की। आज प्रात निराश होकर शिरच्छेद करने लगी तो देवी ने बताया 'जब अकाल ही तुम्हारे आँगन मे लगे आम्रवृक्ष पर फल आ जायँ तभी पुत्र से तुम्हारा मिलन हो जायगा।' आम के वृक्ष पर फल भी आ गये किन्तु पुत्र नही आया। साधुजी! आप तो तपस्वी है, कुछ विचार करके बताइये।

—खाली हाथ पूछने से फल प्राप्ति नही होती।

—तो आप को क्या दूँ?

—कहा न, सोलह वर्ष से निराहार हूँ। पेट पीठ से लग गया है। खीर बना कर खिला दो।

रुक्मिणी ने खीर बनाने की तैयारी की तो उसे सामग्री ही न मिली। हार कर कृष्ण के लिए जो विशेष मोदक रखे थे उनकी खीर बनाने को उद्यत हुई किन्तु अग्नि ही प्रज्वलित न कर सकी। साधु बोला—

—तुम न जाने किस आरम्भ मे पड गई। मेरे तो भूख के मारे प्राण निकले जा रहे है। इन मोदकों को ही खिला दो।

—यह तो सिवा श्रीकृष्ण के और कोई हजम ही नही कर सकता। मैं तुम्हे खिला कर ऋषि-हत्या का पाप नही कर सकती।

—तप के प्रभाव से मैं सब हजम कर जाऊँगा। लाओ मुझे दो तो सही।

डरते-डरते रुक्मिणी ने एक मोदक दिया। साधु खा गया। एक के बाद दूसरा-तीसरा इस तरह रुक्मिणी देती गई और साधु खाता गया। विस्मित होकर रुक्मिणी ने कहा—

—साधु ! तुम तो बहुत शक्तिशाली लगते हो।

खिलखिला कर हँस पडा प्रद्युम्न। उसने कुछ उत्तर नही दिया। बस बडे प्रेम से मोदक खाता रहा।

इधर प्रद्युम्न आनन्द से माता के पास बैठ मोदक खा रहा था और उधर सत्यभामा 'रुडुबुडु' मत्र का जाप कर रही थी। उद्यान-पालक ने आकर प्रणाम किया और कहा—

—स्वामिनी ! एक वानर ने उद्यान के सभी फल खा लिए, एक भी नही छोड़ा।

तब तक दूसरे सेवक ने प्रवेश करके कहा—

—किसी भी दूकान पर घोडो के लिए न दाना है और न घास।

—जलाशयो का जल सूख गया। कही भी पीने योग्य पानी नही है। —तीसरे ने कहा।

—कुमार भानुक अश्व की पीठ से गिर गए। —चौथे ने आकर बताया।

चकरा गई सत्यभामा। मन्त्र जाप छोडकर दासियो से पूछा—

—वह ब्राह्मण कहाँ है ?

दासियो ने बताया—

—वह भोजनभट्ट सारी रसोई चट कर गया तब हमने उसे भगा दिया।

सत्यभामा निराश होकर पछताने लगी। पर अब क्या हो सकता था ? उसने अपनी दासियो को रुक्मिणी के केश लाने भेज दिया। दासियो ने रुक्मिणी के पास जाकर उसके केश माँगे तो प्रद्युम्न ने अपने विद्याबल से उनके ही केश काटकर उनके पात्रो मे भर दिए

और साथ ही सत्यभामा के कटे केश भी दे दिए। दासियाँ जब अपनी स्वामिनी के पास पहुँची तो उनके मुंडे सिरो को देखकर उसने पूछा—

—यह क्या ? तुम्हारे सिर कैसे मुंड गए ?

—जैसी स्वामिनी, वैसी दासियाँ। —दासियो ने उत्तर दिया।

अब सत्यभामा ने कुछ पुरुषो को भेजा तो उस साधु ने उन्हे शिखाविहीन करके लौटा दिया।

सत्यभामा क्रोध मे भर गई। वह श्रीकृष्ण के पास पहुँची और कहने लगी—

—स्वामी ! आप हमारी शर्त के मध्यस्थ भी थे और जमानती भी। अब रुक्मिणी के केश मँगाइये।

श्रीकृष्ण ने जो सत्यभामा का यह रूप देखा तो रोकते-रोकते भी उनकी हँसी फूट पडी। उन्होने कहा—

—तुम मुण्डित हो तो गई ?

—मेरी हँसी उडाना तो छोड़िये। अभी उसके केश मँगाइये।

श्रीकृष्ण ने देखा कि सत्यभामा की आँखे क्रोध से लाल है तो उन्होने उसके साथ बडे भाई बलभद्र को भेज दिया। दूर से ही देखकर प्रद्युम्न ने अपना रूप कृष्ण का सा बना लिया। बलभद्र तो छोटे भाई को देखकर सकोचवश बाहर ही खडे रह गए। किन्तु सत्यभामा का कोप और भी बढ गया। वह पाँव पटकती वापिस कृष्ण के पास लौट आई। कुपित स्वर मे बोली—

—आप तो मेरी हँसी उडाने पर ही उतर पडे है। इधर मुझे केश लेने भेजा और उधर स्वय ही वहाँ जा जमे। लौटकर आई तो उससे पहले यहाँ आ विराजे।

कृष्ण ने बलराम की ओर देखा तो उन्होने भी सत्यभामा का ही कथन सत्य बताया। अब श्रीकृष्ण ने सौगन्ध खाकर कहा कि मै वहाँ गया ही नही, तुम लोग विश्वास करो। किन्तु सत्यभामा को उनका विश्वास ही नही हुआ। 'सब तुम्हारा मायाजाल है' कहकर अपने

महल की ओर चली गई। श्रीकृष्ण भी रूठी रानी को मनाने पीछे-पीछे ही उसके महल मे जा पहुँचे।

× × × ×

प्रद्युम्न तो द्वारका मे कौतुक कर रहा था और उधर नारदजी रथ मे वैठे-वैठे ऊव गए। ढाई घडी से ज्यादा एक जगह न टिकने वाले नारद निठल्ले वैठे भी कैसे रह सकते थे। राजकन्या से 'अभी आता हूँ' कहकर सीधे रुक्मिणी के महल मे जा पहुंचे। रुक्मिणी ने मुनि का स्वागत करके पूछा—

—देवर्षि ! अव तो सोलह वर्ष वीत गए। मेरा पुत्र

—यह वैठा तो है। क्या इसने अभी तक नही वताया। —नारद जी ने उस साधु की ओर सकेत किया।

रहस्य खुल गया प्रद्युम्न का। वह अपने असली रूप मे आ गया। माता के चरणो मे गिर पडा। माँ ने अक से लगा लिया। सोलह वर्ष से माँ के प्यार की भूखी प्रद्युम्न की आत्मा तृप्त हो गई। उसने कहा—

—माँ ! तुम साथ दो तो पिताजी को चमत्कार दिखाऊँ।

—हाँ ! हाँ !! क्यो नही ? —आनदातिरेक मे रुक्मिणी ने स्वीकृति दे दी।

प्रद्युम्न रुक्मिणी को साथ लेकर आकाश मे उडा और घोष किया—

—द्वारकाधीश कृष्ण और सभी सुभट सुन ले। मै महारानी रुक्मिणी का हरण करके ले जा रहा हूँ। साहस हो तो मुझे रोके।

पुत्र की इस घोषणा से रुक्मिणी हतप्रभ रह गई। उसे स्वप्न मे भी आशा न थी कि पुत्र ऐसा चमत्कार दिखाएगा। उसने कुछ कहना चाहा तो प्रद्युम्न ने रोक दिया। वोला—

—कुछ समय तक मौन रहकर जरा तमाशा देखो।

तव तक द्वारका मे शोर मच गया। सुभट अस्त्र-शस्त्र लेकर

निकल आए। कृष्ण भी शस्त्र-सज्जित होकर बाहर निकले और उच्च स्वर मे बोले—

—किस दुर्बुद्धि की शामत आई है ?

प्रद्युम्न ने उत्तर तो कुछ दिया नही। जोर से हँस पडा। कृष्ण की दृष्टि आकाश की ओर उठ गई। देखा—एक नवयुवक रुक्मिणी को रथ मे बिठाए हँस रहा है। कृष्ण की आँखे लाल हो गई। शस्त्र उठाकर प्रहार करने का प्रयास किया ही था कि हाथ से धनुष गायब। अन्य अस्त्र भी नदारद हो गए। हतप्रभ रह गए वासुदेव।

बलभद्र भी चकित थे। सम्पूर्ण सुभट किंकर्तव्यविमूढ। मानो किसी ने स्तभित कर दिया हो।

श्रीकृष्ण के चित्त मे खेद व्याप्त हो गया। तभी आकाश से नारद उतरे और बोले—

—कृष्ण ! चकित मत हो। यह तो तुम्हारा ही पुत्र है, प्रद्युम्न। जो सोलह वर्ष पहले तुमसे बिछुड गया था।

नारद के वचन सुनकर सभी सन्तुष्ट हुए। प्रद्युम्न ने भी अपनी विद्या समेटी और पिता के चरणो मे आ गिरा। विह्वल होकर कृष्ण ने उसे कंठ से लगा लिया। उनके हर्ष का ठिकाना न था। बलभद्र आदि सभी आनदित हो गए। कृष्ण ने प्रद्युम्न को अपने अक मे बिठा लिया। मानो वह सोलह वर्ष का युवक न होकर सोलह दिन का अबोध शिशु ही हो। वे बार-बार उसका मस्तक चूमने लगे।

प्रद्युम्न के आगमन से द्वारका मे प्रसन्नता की लहर दौड गई। स्थान-स्थान पर उत्सव मनाए जाने लगे। रुक्मिणी के तो मानो प्राण ही लौट आए। उसके महल मे दीवाली ही मनाई जाने लगी। स्वामिनी के साथ-साथ दासियो के मुख भी गुलाब की भाँति खिल रहे थे।

वासुदेव को सोलह वर्ष बाद पुत्र मिला तो भानुक के विवाह की बात मानो भूल ही गए। तब दुर्योधन ने आकर कहा—

—वासुदेव ! मेरी पुत्री और आपकी पुत्र-वधू को कोई हर ले गया ।

—मैं कोई सर्वज्ञ तो हूँ नही । मेरे ही पुत्र प्रद्युम्न को कोई हर ले गया तो मैं कुछ न कर सका ।

सभी के मुख पर निराशा छा गई । तव प्रद्युम्न वोला—

—यदि आप लोगो की आज्ञा हो तो प्रज्ञप्ति विद्या द्वारा मैं पता लगाऊँ ।

सभी ने स्वीकृति दे दी । प्रद्युम्न ने वह कन्या लाकर खडी कर दी । जव कृष्ण ने उसका विवाह प्रद्युम्न से करना चाहा तो उसने कह दिया—'यह छोटे भाई भानुक की स्त्री है ।' भानुक के साथ उस का विवाह हो गया ।

प्रद्युम्न की इच्छा न होते हुए भी कृष्ण ने उसका विवाह कितनी ही खेचर कन्याओ से कर दिया ।

—त्रिषष्टि० ८।६

—उत्तर-पुराण ७२/७२-१६६

—वसुदेव हिंडी, पीठिका

●

० उत्तरपुराण मे प्रद्युम्न का चरित्र कुछ विस्तार से वर्णित है । युवावस्था प्राप्त होने पर प्रद्युम्न ने अपनी सेवा और पराक्रम से विद्याधर पिता को प्रसन्न किया । उसकी प्रमुख घटनाएँ निम्न हैं —

(१) किसी दिन अग्निराज नाम का कालसमव (कालसवर का यहाँ यही नाम लिखा है) का शत्रु सेना लेकर चढ आया । तव देवदत्त (प्रद्युम्न का उत्तरपुराण मे यही नाम वताया गया है) ने उसे प्रताप रहित करके युद्ध मे जीत लिया और पिता के चरणो मे ला गिराया ।

(श्लोक ७२-७३)

(२) उसके यौवन से काम-विकल होकर कचनमाला (विद्याधर कालसवर की पत्नी और प्रद्युम्न की पालक माता) उसे प्रज्ञप्ति विद्या देती है । जिसे वह शीघ्र ही सिद्ध कर लेना है ।

(श्लोक ७५-८१)

(३) इच्छा पूरी न करने पर कचनमाला ने उसकी शिकायत अपने पति से कर दी और विद्याधर ने विद्युद्दण्ट्र आदि अपने पाँच सौ पुत्रो को वुला कर उसे मार डालने की आज्ञा दी। (श्लोक ८४-८६)

(४) विद्युद्दप्ट्र आदि कुमार उसे वन मे ले गए और एक अग्नि कुण्ड दिखाकर वोले—'जो इसमे कूद पडेगा वह सवसे निर्भय गिना जायेगा।' प्रद्युम्न उस कुण्ड मे कूद गया। वहाँ रहने वाली देवी ने आदरपूर्वक उसे वस्त्र-आभूपण दिए। इस तरह वह वहाँ से निकला। (श्लोक १०२-१०४)

(५) दूसरी वार प्रद्युम्न को उन पाँच सौ कुमारो ने विजयार्द्ध पर्वत के किसी विले मे घुसा दिया। वहाँ मेंडे का रूप रखकर उस पर दो पर्वत आये किन्तु प्रद्युम्न ने उन्हे अपनी भुजाओ के वल से रोक दिया। इस पर वहाँ का देवता प्रसन्न हुआ और उसे मकर की आकृति के दो कुण्डल दिए। (श्लोक १०५-१०७)

(६) तीसरी वार उसे वराह नामक विल मे घुसा दिया। वहाँ उसने अपने पराक्रम के फलस्वरूप देव से विजयघोष नाम का शख और महाजाल विद्या—ये दो वस्तुएँ प्राप्त की। (श्लोक १०८-११०)

(७) काल नाम की गुफा मे महाकाल नाम के राक्षस को पराजित कर वृपभ नाम का रथ और रत्नकवच दो वस्तुएँ प्राप्त की। (श्लोक १११)

(८) दो वृक्षो के वीच मे कीलित विद्याधर को छुडा दिया। उसने सुरेन्द्रजाल, नरेन्द्रजाल और प्रस्तर नाम की तीन विद्याएँ दी। (श्लोक ११२-१५)

(९) सहस्रवक्त्र नाम के नागकुमार भवन मे जाकर उसने शख वजाकर नाग-नागिनी को प्रसन्न किया और उनसे चित्रवर्ण नाम का धनुष, नदक नाम की तलवार और कामरूपिणी अँगूठी पाई। (श्लोक ११६-११७)

(१०) कैथ वृक्ष के देवता ने उसे दो उड़न-खडाऊँ दिये ।

(श्लोक ११७)

(११) अर्जुन वृक्ष पर रहने वाले पाँच फण वाले नागपति देव से उसे (१) तपन (२) तापन (३) मोहन (४) विलापन (५) मारण—ये पाँच बाण प्राप्त हुए । (श्लोक ११८-११९)

(१२) कदम्बकमुखी वापिका के देव से नागपाश की प्राप्ति हुई ।

(श्लोक १२०)

यह सब देखकर विद्युद्दंष्ट्र आदि पाँच सौ भाई बडे दुखी हुए । तब उन्होंने पातालमुखी वापिका मे कूदने के लिए प्रद्युम्न से आग्रह किया । प्रद्युम्न ने प्रज्ञप्ति विद्या को अपना रूप बनाकर कुदा दिया और स्वय छिप कर देखने लगा । सभी पाँच सौ विद्याधर पुत्र उसे बावडी मे कूदा जान कर पत्थर मारने लगे । क्रोध मे आकर उसने उन सबको नागपाश मे बाँध लिया और उलटा लटकाकर ऊपर से शिला ढक दी । सबसे छोटे कुमार ज्योतिप्रभ को नगर मे समाचार देने भेज दिया ।

(श्लोक १२१-१२६)

तभी नारदजी ने आकर उसको उसका असली परिचय दिया ।

(श्लोक १२८)

इसके पश्चात् विद्याधर युद्ध के लिए आता है और प्रद्युम्न उसे सब कुछ बता कर सभी विद्याधर पुत्रो को बधन मुक्त कर देता है । फिर वह उनसे आज्ञा लेकर नारद के साथ द्वारका की ओर चल देता है ।

पहले वह हस्तिनापुर मे कौरवो के यहाँ कौतुक करता है, फिर पाडवो के यहाँ और तब द्वारिका पहुँचता है । (श्लोक १३५-१३८)

इसके पश्चात् उसके द्वारका मे किए गए कौतुको का वर्णन है ।

भानुक के लिए द्वारका मे लाई हुई कन्याओ के साथ प्रद्युम्न ने सबकी सम्मति से विवाह किया । (श्लोक १६९)

जैन कथामाला

भाग ३३

श्रीकृष्ण-कथा

यदुवन के फूल

शांब का जन्म

प्रद्युम्न का पराक्रम देखकर सत्यभामा चकित रह गई। उसके हृदय मे नारी सुलभ लालसा जाग उठी। रुक्मिणी के प्रति ईर्ष्या भी जाग्रत हुई। वह कोप-भवन मे जा लेटी। ज्योही श्रीकृष्ण को मालूम हुआ, वे पहुँचे और पूछने लगे—

— प्रिये! क्या किसी ने तुम्हारा अपमान किया है?

—नहीं!

—तो फिर रुष्ट होने का कारण?

—आप है, आप!

—क्यो? मैंने क्या किया?

—आप ही ने तो किया है।

—कुछ बताओ भी तो?

—रुक्मिणी को तो प्रद्युम्न जैसा पराक्रमी पुत्र और मुझे?

—इसमें मेरा क्या दोष? यह तो भाग्य की बात है।

—मैं कुछ नही जानती। आप कुछ भी करिये, मुझे प्रद्युम्न जैसा ही पराक्रमी पुत्र चाहिए।

पत्नी की हठ के सामने पति को झुकना पडा। आश्वासन दिया—

—मैं अपना भरपूर प्रयास करूँगा कि तुम वीर-पुत्र की माता बनो।

श्रीकृष्ण ने नैगमेषी देव को उद्दिष्ट करके अष्टमभक्त युक्त प्रौषध व्रत ग्रहण किया। देव ने प्रगट होकर पूछा—

—क्या इच्छा है वासुदेव?

—सत्यभामा को प्रद्युम्न जैसे पराक्रमी पुत्र की इच्छा है।

—जिस स्त्री को तुम जैसे पुत्र की इच्छा हो, उसे यह हार पहना कर सेवन करो ।" —कहकर नैगमेषी देव ने एक हार दिया और अन्तर्धान हो गया ।

प्रसन्न होकर कृष्ण ने सत्यभामा को अपने शयन कक्ष में आने का निमन्त्रण भिजवाया ।

पिता को प्रौषध करते देखकर तो प्रद्युम्न को आश्चर्य नही हुआ किन्तु विमाता को शयन कक्ष मे निमन्त्रण अवश्य रहस्यमय लगा। तुरन्त प्रज्ञप्ति विद्या से पूछा । सच्चाई जानकर प्रद्युम्न माता से बोला—

—माँ ! मेरे जैसे पुत्र की इच्छा हो तो वह हार ले लो ।

—रुक्मिणी ने उत्तर दिया—

—पुत्र ! मैं तो एक तुम से ही कृतार्थ हूँ। मुझे दूसरे पुत्र की कोई इच्छा नही क्योकि स्त्री रत्न को बार-बार प्रसव उचित नही है ।

—यदि तुम्हारी कोई प्रिय सपत्नी हो तो मैं उसकी इच्छा पूर्ण करूँ ।

कुछ समय तक सोचने के बाद रुक्मिणी ने कहा—

—हाँ बेटा ! जब मै तुम्हारे वियोग मे दुखी थी तो जाबवती ने सहानुभूति दिखाई थी। वह मुझे अधिक प्रिय है ।

—तो उसे बुलाओ ।

जाबवती बुलाई गई । प्रद्युम्न ने उसका रूप अपने विद्या बल से सत्यभामा का सा बना दिया और सम्पूर्ण योजना समझा कर उसे श्रीकृष्ण के शयन कक्ष में पहुँचा दिया । कृष्ण ने उसे भामा समझकर हार पहिनाया और सुखपूर्वक क्रीडा की। जाबवती उठकर इठलाती चली आई ।

कुछ समय पश्चात् सत्यभामा ने शयनकक्ष मे पदार्पण किया । उसे देखकर कृष्ण सोचने लगे—'अहो ! स्त्रियो मे काम की कैसी अधिकता ! अभी-अभी तो यहाँ से गई थी, फिर भी मन नही भरा, पुन लौट आई ।' किन्तु कहा कुछ भी नही । उसके साथ क्रीड़ा करने लगे।

जिस समय कृष्ण भामा के साथ क्रीडा कर रहे थे उसी समय प्रद्युम्न ने लोगो के हृदय को प्रकम्पित करने वाली कृष्ण की भेरी उच्च स्वर से वजा दी। सत्यभामा का हृदय भयभीत होकर धकधक करने लगा। कृष्ण भी क्षुभित होकर सेवको से पूछ वैठे—भेरी किसने वजाई ?

—रुक्मिणी-पुत्र प्रद्युम्न ने। —सेवको ने वताया।

कृष्ण मन ही मन समझ गए कि 'प्रद्युम्न ने भामा को छल लिया। अव इसके भीरु पुत्र होगा क्योकि इसका हृदय भय से प्रकम्पित है।' किन्तु होनी को वलवान समझकर चुप हो गए।

× × ×

दूसरे दिन कृष्ण रुक्मिणी के महल मे गए। वहाँ उन्हे जाववती भी वैठी दिखाई दी। उसके कण्ठ मे पड़े दिव्यहार पर उनकी दृष्टि जम गई। अपनी ओर पति को निर्निमेष दृष्टि से निहारते हुए देखकर उसने मुस्करा कर पूछा—

—क्या देख रहे है, स्वामी ! मैं आपकी पत्नी जाववती ही तो हूँ। वदल तो नही गई।

—वदली तो नही परन्तु यह नया हार अवश्य पहन लिया है। कहाँ से मिला ? किसने दिया ? —कृष्ण ने भी मुसकरा कर पूछा।

—आप ही ने तो दिया, कल ही रात ! वडी जल्दी भूल गए।

—हूँ ! तो वह तुम ही थी ?

—क्या किसी और को देने का विचार था ? मैं अनाधिकार ही ले आई ?—जाववती के इस प्रश्न का उत्तर दिया रुक्मिणी ने—

—हाँ, और क्या ? तुमने स्वामी की प्रिय-पत्नी के अधिकार का हनन कर लिया है। ऐसा तो नही करना चाहिए था।

—क्या इसमे मेरा ही दोष है ? पुत्र की इच्छा तो सभी स्त्रियो को होती है।

—होती तो है किन्तु तुमने अवसर शायद गलत चुना था। इसी-लिए स्वामी रुष्ट है।

—वाह दीदी ! अवसर तो आपने ही वताया था। सम्पूर्ण योजना तुम्हारी ही थी और अव साफ निकल रही हैं।

कृष्ण दोनो की वाते सुनकर मुसकरा रहे थे। उन्हे पूर्णरूप से विश्वास हो गया कि प्रद्युम्न ने अपने विद्यावल से सत्यभामा का मनोरथ विफल कर दिया।

हँस कर कहने लगे—

—तुम तीनो ने मिलकर अपना काम बना लिया। जाववती ! तुम्हारी इच्छा पूर्ण हुई।

जाववती ने कहा—

—स्वामी ! रात को मैने स्वप्न मे एक सिह देखा था।

—तुम्हारे सिह जैसा ही पराक्रमी पुत्र होगा। —कृष्ण ने वताया।

महाशुक्र देवलोक से च्यवकर कैटभ का जीव जाववती की कुक्षि मे अवतरित हो गया था।

अनुक्रम से जाववती और सत्यभामा का गर्भकाल पूरा हुआ। दोनो ने पुत्रो को जन्म दिया। जाववती के पुत्र का नाम रखा गया शाव और सत्यभामा के पुत्र का भीरुकुमार। उसी समय सारथि दारुक को भी एक पुत्र की और सुबुद्धि मन्त्री को जयसेन नाम के पुत्र की प्राप्ति हुई।

शनै शनै कुमार वढने लगे और युवावस्था आते-आते शाव सभी कलाओ मे निपुण हो गया।

प्रद्युम्न और शाव मे पूर्वजन्म के सम्वन्धो के कारण विशेष प्रेम था। दोनो साथ-साथ ही रहते।

—वसुदेव हिंडी, पीठिका

—त्रिषष्टि० ८।७

—उत्तरपुराण ७२।१७०—१७५

---

० उत्तरपुराण मे जाववती के पुत्र का नाम शभव अथवा जावकुमार वताया है और सत्यभामा के पुत्र का नाम सुभानु। (श्लोक १७४)

२ वैदर्भी-परिणय

एक वार रुक्मिणी के हृदय मे विचार आया कि 'मेरे भाई की पुत्री वैदर्भी भी विवाह योग्य हो गई होगी। यदि प्रद्युम्न के साथ उसका लग्न हो जाय तो ....' यह सोचकर उसने एक आदमी भोजकटनगर भाई के पास भेजा। उसकी वात सुनकर रुक्मि एकदम आग-वबूला हो गया। उसे पुराने वैर की स्मृति हो आई। अपना अपमान उसके स्मृतिपटल पर तैर गया। कुपित होकर वोला—

—चाडाल को कन्या दे देना अच्छा समझूँगा किन्तु कृष्ण के कुल मे हरगिज नही दूँगा।

यह उत्तर सुनकर वह पुरुप लौट आया। भाई की भावना जानकर रुक्मिणी का मुख म्लान हो गया। उसका मलिन मुख देखकर प्रद्युम्न ने पूछा—

—क्या वात है, मातेश्वरी! तुम्हारा मुख म्लान क्यो है?

—कुछ नही! वेटा ऐसे ही।

प्रद्युम्न के अति आग्रह पर रुक्मिणी ने अपने विवाह की सम्पूर्ण घटना सुनाकर कहा—

—मैंने उस शत्रुता को मित्रता मे वदलने का प्रयास किया किन्तु मुझे निराश होना पड़ा।

—तुम निराश मत हो माँ! मै मामा (मातुल) की इच्छा से ही वैदर्भी का परिणय करूँगा। मुझे भोजकटनगर जाने की आज्ञा दो।

रुक्मिणी ने जाने की आज्ञा देते हुए कहा—

—पुत्र! ऐसा मत करना की वैर की परम्परा और भी वढ जाय।

—नही माँ ! निश्चिन्त रहो। सब कुछ मामा की स्वीकृति से ही होगा।

माता की आज्ञा पाकर प्रद्युम्न और शाब दोनो भोजकटनगर जा पहुँचे। एक ने किन्नर का रूप बनाया और दूसरे चाडाल का। दोनो गलियो मे सगीत कला का प्रदर्शन कर जनता का मन मोहने लगे। उनकी कला की प्रशसा सुनकर रुक्मि ने उन्हे राजसभा मे बुलाया और गाना सुनने की इच्छा प्रकट की। उसी समय उसकी पुत्री वैदर्भी भी वहाँ आ गई। दोनो ने अपनी सगीत कला से सब को प्रसन्न कर लिया। प्रभूत पारितोषक देकर रुक्मि ने पूछा—

—तुम लोग कहाँ से आए हो ?

—हम आकाश मार्ग से द्वारका नगरी आए जहाँ श्रीकृष्ण राज्य कर रहे है ?

वैदर्भी बीच मे ही बोल पडी—

—क्या तुम रुक्मिणी-पुत्र प्रद्युम्न को जानते हो ?

—कामदेव के समान सुन्दर और महापराक्रमी प्रद्युम्न को कौन नही जानता ?

प्रद्युम्न की प्रशसा सुनकर वैदर्भी के हृदय मे अनुराग उत्पन्न हुआ। वह आगे कुछ पूछती इससे पहले ही हस्तिशाला के अधीक्षक ने आकर कहा—

—महाराज ! अपका निजी हाथी उन्मत्त होकर हस्तिशाला से भाग निकला है।

तुरन्त ही हाथी को वश मे करने के प्रयास किए गए किन्तु कोई भी उसे वश मे न कर सका तब राजा ने उद्घोपणा कराई कि 'जो कोई हाथी को वश मे करेगा उसे मुहमाँगा पुरस्कार मिलेगा।' किन्तु इस घोषणा का भी कोई प्रभाव न हुआ। कोई व्यक्ति हाथी पकडने के लिए तैयार न हुआ। उसका उपद्रव बढता ही जा रहा था। तब प्रद्युम्न ने यह घोषणा स्वीकार की और अपनी सगीत कला से हाथी को निर्मद कर दिया।

जब उसकी कुशलता से प्रसन्न होकर राजा रुक्मि ने पुरस्कार माँगने को कहा तो वह बोला—

—महाराज ! हमे भोजन बनाने मे बडी परेशानी होती है। इस-लिए अपनी पुत्री वैदर्भी दे दीजिए।

इस अनुचित माँग को सुनते ही रुक्मि एकदम आग-बबूला हो गया। दोनो को नगर से निकाल बाहर किया। राज-पुत्री इन किन्नर-चाडालो का चूल्हा फूँके यह कैसे सम्भव था ?

दोनो नगर से बाहर निकले और विद्या-बल से एक भवन बना कर रहने लगे। एक दिन शाब ने कहा—

—भैया ! हम तो यहाँ आनन्द से रह रहे है और उधर माता हमारी याद मे व्याकुल होगी। जल्दी से विवाह करके द्वारका चलना चाहिए।

प्रद्युम्न ने उसकी बात स्वीकार की और अर्धरात्रि मे विद्या के प्रभाव से वैदर्भी के शयन कक्ष मे जा पहुँचा। उसे जगाकर रुक्मिणी का पत्र दिया। पढकर वैदर्भी ने पूछा—

—आपको क्या दूँ ?

—सुन्दरी ! तुम स्वय ही मुझे समर्पित हो जाओ। मै ही रुक्मिणी पुत्र प्रद्युम्न हूँ। मेरे लिए ही माता ने तुम्हारी याचना की थी।

वैदर्भी प्रद्युम्न के प्रति पहले ही आकर्षित थी। प्रत्यक्ष देखकर तो अनुरक्त हो गई। मुँह से कुछ न बोली। प्रद्युम्न ने ही पुन कहा—

—यदि तुम्हारी स्वीकृति हो तो मैं तुम्हारे साथ पाणिग्रहण करूँ।

वैदर्भी ने सिर झुकाकर स्वीकृति दे दी। प्रद्युम्न ने वही उसके साथ गांधर्व विवाह किया। विवाह सूचक कगन आदि अलकार पहनाए और शेष रात्रि वही व्यतीत की। चतुर्थ पहर की समाप्ति पर उठ कर चलने लगा तो उसने वैदर्भी को समझाया—

—कोई तुमसे मेरा नाम पूछे तो बताना मत।

—तो क्या कहूँ ?

—बस चुप हो जाना।

—आप नही जानते स्वामी ! मौन मे तो मेरी मरम्मत हो जायगी। पिताजी कुपित होकर मुझे तरह-तरह के त्रास देंगे।

—तुम्हे कोई त्रास नही दे सकता।

—क्यो ?

—मैंने मन्त्र शक्ति से तुम्हारे शरीर को मन्त्रित कर दिया है, इसलिए।

वैदर्भी को विश्वास हो गया और प्रद्युम्न वहाँ से चला आया।

रात्रि जागरण के कारण प्रात काल वैदर्भी गहरी निद्रा मे निमग्न हो गई। धायमाता उसे जगाने आई तो विवाह के चिह्न देखकर चकित रह गई। वैदर्भी को जगा कर पूछा तो उसने कुछ भी उत्तर न दिया। धायमाता से रुक्मि को पता चला तो उसने भी पुत्री से पूछा। किन्तु पुत्री मौन ही रही। कभी वह प्रेम से पूछता तो कभी दण्ड का भय दिखाता किन्तु वैदर्भी तो मानो पत्थर की मूर्ति बन गई। हार-थककर उसने अनुचर भेजा और उन दोनो किन्नर-चाडालो को बुलवा लिया। वैदर्भी को देते हुए उसने कहा—

—इस कन्या को ग्रहण करो।

प्रद्युम्न ने राज्य-कन्या से पूछा—

—क्या तुम सहर्ष मेरे साथ चलने को प्रस्तुत हो ?

वैदर्भी ने स्वीकृति दे दी। वे दोनो उसे लेकर चल दिए।

कुछ समय पश्चात् रुक्मि राजसभा मे आया। तब तक क्रोध शात हो चुका था। वह अपने अकृत्य पर पश्चात्ताप करने लगा। बार-बार उसके हृदय मे विचार उठता—मैंने बुरा किया। पुत्री को चाडाल के हवाले नही करना चाहिए !' तभी उसके कानो मे वाद्यों की मधुर ध्वनि पडी। उसने सभासदो से पूछा—

—यह मधुर ध्वनि कहाँ से आ रही है ?

कोई कुछ न बता सका। सभी मौन थे—अनभिज्ञ थे। अनुचरों को भेजकर पता लगवाया गया तो उन्होंने आकर बताया—स्वामी नगर के बाहर द्वारकाधीश कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न और शाब एक महल

मे ठहरे हुए हैं। उनके साथ वैदर्भी भी है। चारण लोग उत्तम वाद्यो से उनकी स्तुति कर रहे हैं। वही स्वर आपके कानो तक आ रहा है।

रुक्मि को यह समझते देर न लगी कि यह सव चमत्कार प्रद्यु म्न का है। उसने तुरन्त ही उनको आदरपूर्वक वुलाया और वैदर्भी का विधिवत विवाह प्रद्युम्न के साथ कर दिया। विदा करते समय रुक्मि ने हँस कर कहा—

—छल-कपट मे वेटा वाप मे कुछ अधिक ही निकला। कृष्ण ने तो युद्ध मे मुझे जीता और तुमने वुद्धि से।

—सवाया कहिए मातुल ! क्योकि शक्ति से युक्ति प्रवल होती है।—प्रद्यु म्न ने उत्तर दिया।

रुक्मि हँस पडा और प्रेमपूर्वक सवको विदा कर दिया।

सभी लोग द्वारका आ पहुँचे। रुक्मिणी ने वहुत उत्सव मनाया। प्रद्यु म्न वैदर्भी के साथ सुखपूर्वक रहने लगा।

शाव का विवाह भी हेमागद राजा की वेश्या की अप्सरा जैसी सुन्दर पुत्री सुहिरण्या[1] के साथ हो गया।

—त्रिषष्टि० ८।७

—वसुदेव हिंडी, पीठिका।

---

१ सुहिरण्या का परिचय वसुदेव हिंडी पीठिका मे इस प्रकार दिया है—

एक वार श्रीकृष्ण की आज्ञा मे कचुकी ने शावकुमार से निवेदन किया—'हे देव ! रत्नकरडक उद्यान मे गणिका पुत्री सुहिरण्या और हिरण्या का नृत्य होगा, आप देख आवे।'

शावकुमार रथ मे वैठकर वहाँ पहुँचा और उसने नृत्य देखा। सुहिरण्या ने वत्तीस प्रकार का नृत्य करके शाव का मन मोह लिया। शाव ने आकर्षित होकर उससे वाग्दान कर लिया।

इसके बाद सुहिरण्या कई बार कृष्ण सभा में गई किन्तु शाब ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। निराश होकर एक दिन उसने अपने गले में फाँसी का फन्दा डाल लिया। तब उसकी दासी भोगमालिनी ने उसे आश्वासन दिया कि वह उसे शाब से अवश्य मिलाएगी। तब उस दासी ने बुद्धिसेन (शाब का एक सेवक) को आकर्षित किया और उसके द्वारा शाब के पास सुहिरण्या को भेजा। रात्रि भर सुहिरण्या शाब के कक्ष में उसके साथ रही तब जाववती और कृष्ण ने उसे स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार शाब का विवाह (यद्यपि विधिवत नहीं) सुहिरण्या के साथ हो गया।

३ शांब का विवाह

शाव भीरुक को सदा तग करता रहता—कभी उसे मारता तो कभी द्यूत-क्रीडा मे उसका धन हरण कर लेता। भीरुक नाम से ही नही स्वभाव से भी भीरु (डरपोक-कायर) था। शाव से तो उसका कुछ वश चलता नही—माता सत्यभामा से जाकर उसकी शिकायत करता। नित्य की शिकायतो से तग आकर एक दिन सत्यभामा ने कृष्ण से कहा—

—स्वामी! अव तो शाव वहुत उद्धत होता जाता है।

—हॉ प्रिये! उसका भी कुछ न कुछ प्रवन्ध करना ही पडेगा। मैंने भी उसकी वहुत शिकायते सुनी है।

सत्यभामा पति के आश्वासन से संतुष्ट हो गई। कृष्ण ने जाववती से शाव की शिकायत की तो वह वोली—

—आप क्या कह रहे है, नाथ! मैंने तो उसके विरुद्ध कुछ नही सुना। वडा भद्र है वह तो।

—सिहनी को तो अपना पुत्र सौम्य ही लगता है। उन हाथियो से पूछो जिनके मस्तक वह क्रीडा मात्र मे ही विदीर्ण कर देता है।

—मुझे विश्वास नही है कि शाव ऐसा होगा।

—तो मेरे साथ वेश वदल कर चलो और अपने पुत्र की करतूते अपनी ऑखो से देखो।

जाववती तुरन्त तैयार हो गई। कृष्ण ने अहीर का वेश वनाया और जाववती ने अहीरन का। दोनो छाछ (तक्र) वेचने चल दिये—द्वारिका की गलियो मे। मार्ग मे स्वेच्छा विहारी शाव मिल गया। अहीरन के रूप को देखकर आकर्षित हुआ और वोला—

—अहीरन मेरे साथ आओ, मुझे गोरस लेना है।

आगे-आगे शाव चल दिया और पीछे-पीछे अहीरन। एक देवालय मे शाव घुस गया किन्तु अहीरन द्वार पर ही खडी रह गई। शाव ने कहा—

—अन्दर आ जाओ। यहाँ तुम्हारा सम्पूर्ण गोरस खरीद लूँगा।

—नही, यही से लेना हो तो लो, अन्यथा मैं चली।

शाव ने लपक कर उसका हाथ पकडा और घसीटता हुआ वोला—

—चली कैसे जायेगी, मुझसे वचकर ?

तभी अहीर भी आ पहुँचा और वोला—

—कौन दुष्ट मेरी स्त्री का हाथ पकड रहा है ?

शाव की दृष्टि ज्यो ही अहीर की ओर उठी तो उसे पिता श्री कृष्ण दिखाई दिए और अहीरन माता जाववती। माता-पिता को देखकर शाव मुँह छिपा कर वहाँ से भाग गया। किन्तु माता को अपने पुत्र के दुश्चरित्र का पता अवश्य लग गया। पुत्र की दुश्चेष्टा से माता का मुख नीचा हो गया।

दूसरे दिन कृष्ण ने बलपूर्वक शाव को अपने पास बुलाया तो वह एक काठ की कीली वनाता हुआ उनके समक्ष आकर खडा हो गया। इस विचित्र चेष्टा को देखकर कृष्ण ने पूछा—

—कीली किस लिए वना रहे हो ?

—जो कल की वात मुझसे करेगा, उसके मुख मे ठोकने के लिए।

ऐसे निर्लज्जतापूर्ण उत्तर की आशा कृष्ण को स्वप्न मे भी नही थी। उससे अधिक वात करना व्यर्थ समझ कर उन्होने उसे नगरी से वाहर निकाल दिया। पूर्वभव के स्नेह के कारण प्रद्युम्न ने नगर से वाहर जाते समय उसे प्रज्ञप्ति विद्या दी। विद्या लेकर शाव चला गया।

शाव के जाने पर भी भीरुक की परेशानी खतम न हुई। अव उसे प्रद्युम्न तग करने लगा। एक दिन सत्यभामा ने प्रद्युम्न को उलाहना देते हुए कहा—

इतना ही प्रेम है शाव से तो उसकी ही भाँति नगरी से बाहर क्यो नही निकल जाते ? भीरुक को हमेशा क्यो तग करते रहते हो ?

—कहाँ जाऊँ ?—प्रद्युम्न ने हँस कर पूछ लिया।

—श्मशान मे जाओ, वही तुम्हारे लिए उचित स्थान है ?

—फिर कभी आऊँ या नही ?

—क्या आवश्यकता है तुम्हारी ? कौन सा काम रुक जायगा तुम्हारे विना ?

—शायद कोई रुक ही जाए। सोच लो कभी आवश्यकता पड ही गई तो……?

—तो जव मैं शाव को हाथ पकड कर लाऊँ तव तुम भी आ जाना।—क्रोधित होकर सत्यभामा ने कहा।

'जैसी माता की आज्ञा' कहकर प्रद्युम्न चल दिया और श्मशान मे जा वैठा। शाव भी घूमता-घामता वहाँ आ पहुँचा। दोनो भाई श्मशान मे रहने लगे। नगर-निवासी जव कोई शव लाते तो कर लिये विना अग्नि सस्कार न करने देते।

× × ×

सत्यभामा ने प्रयत्न करके भीरुक के लिए ९९ कन्याएँ एकत्र कर ली। वह अपने पुत्र का विवाह १०० कन्याओ से करना चाहती थी। एक कन्या की खोज और करने लगी। प्रज्ञप्ति विद्या द्वारा माता का विचार जान कर प्रद्युम्न और शाव ने एक षडयन्त्र किया। प्रद्युम्न तो वन गया राजा जितशत्रु और शाव उसकी रूपवती पुत्री। वह कन्या एक वार भीरुक की धायमाता को दिखाई दे गई। धायमाता से सत्यभामा को पता चला और उसने उसकी याचना की। जितशत्रु ने दूत से कहा—'यदि महारानी सत्यभामा मेरी पुत्री का हाथ पकडकर द्वारका ले जायें और लग्न मण्डप मे अपने पुत्र के हाथ के ऊपर मेरी पुत्री का हाय रखे तो यह सम्वन्ध हो सकता है।' सत्यभामा को तो एक कन्या की खोज थी ही। उसने तुरन्त जितशत्रु की शर्त स्वीकार कर ली। वह जितशत्रु के शिविर मे जा पहुची। उस समय शांव ने

प्रज्ञप्ति विद्या से कहा—'ऐसा करो कि सत्यभामा को तो मैं कन्या ही दिखाई पड़ूँ और बाकी सब लोगो को अपने असली रूप मे शाव ही।' विद्या ने शाव की इच्छा पूरी कर दी।

सत्यभामा राज-कन्या का हाथ पकड कर द्वारका मे ले आई। उस समय नगरवासियो को वडा आश्चर्य हुआ कि भामा शाव का हाथ पकडे लिए जा रही है। कहाँ तो इसे फूटी आँख भी नही देखना चाहती थी। किन्तु कहा किसी ने कुछ भी नही। कौन राजा-रानियो के वीच मे वोले और अपने सिर व्यर्थ की विपत्ति मोल ले।

लग्न मण्डप मे भी शाव ने कपट से काम लिया। भीरुक के हाथ का इतनी जोर से दवाया कि वह व्यथित हो गया। उसने अपना हाथ अलग कर लिया। लोगो को दिखाने के लिए केवल नीचे लगाये रहा। वाकी ९९ कन्याओ के हाथ भी शाव के करतल के नीचे रख दिये गये। वलशाली शाव के साथ विवाह होते देखकर सभी कन्याएँ सतुष्ट हो गई।

वास गृह मे कन्याओ के साथ शाव गया तो पीछे-पीछे भीरुक भी जा पहुँचा। शाव ने उसे फटकार कर भगा दिया। भीरुक ने अपनी माता सत्यभामा से जाकर कहा तो उसे पुत्र की वात पर विश्वास ही नही हुआ। स्वय आई। शाव को देखकर वोली—

—निर्लज्ज ! तू फिर यहाँ आ गया ?

—हाँ माता ! आपकी कृपा से।

—कौन लाया तुझे ?

—आप स्वय ही तो मुझे लाई और इन ९९ कन्याओ से विवाह कराया।

—झूठ, विल्कुल झूठ !—सत्यभामा को शाव की ढिठाई पर क्रोध आ गया।

—विलकुल सत्य। मेरा विश्वास न करो तो इन कन्याओ से, नगरवासियो से और अपनी ही दासियो से पूछ लो।

सत्यभामा ने कन्याओ से पूछा तो उन्होंने कह दिया कि हमारा विवाह भीरुक से नही शाव, से ही हुआ है। दासियो की वारी आई तो उन्होंने अंजलि वाँधकर कहा—

—महारानीजी ! क्रोध तो करिए मत। हमने तो अपनी आँखो से आपको शावकुमार को ही हाथ पकड़कर लाते देखा है और इसी के साथ इन कन्याओ का विवाह हुआ है।

जव सत्यभामा ने नगरजनो से पूछा तो उन्होने भी कह दिया—

—महारानीजी ! क्षमा करे। आप स्वय ही तो शावकुमार को हाथ पकडकर लाई थी।

विवाह सम्पन्न कराने वाले पुरोहित तथा अन्य सभी लोगो की साक्षी सुनकर तो भामा के क्रोध का ठिकाना न रहा। रोपपूर्वक शाव से वोली—

—कपटी माता-पिता का पुत्र, कपटी भाई का अनुज—तू महा-कपटी है। मुझे कन्या का रूप रख कर छल लिया।

विमाता के कथन का शाव ने वुरा नही माना। वह मुस्कराता रहा। भामा क्रोध मे पैर पटकती चली गई।

कृष्ण ने शाव का विवाह उन कन्याओ से लोगो के समक्ष कर दिया और जाववती ने वडा उत्सव मनाया।

अपनी छल विद्या से शाव फूला न समाया। एक दिन वसुदेवजी को प्रणाम करके वोला—

—दादाजी (पितामह) ! आपने तो सारी पृथ्वी पर घूम कर अनेक कन्याओ से विवाह किया और मैंने घर वैठे ही, देखी मेरी कुशलता।

वसुदेव ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया—

—शाव ! तुम निर्लज्ज भी हो और ढीठ तथा अभिमानी भी ! कुए के मेढक के समान पिता की नगरी से वाहर जाने का साहस ही न कर सके। भाई द्वारा प्रदत्त छल-विद्या से कन्याओ को जीत लेना कोई कुशलता नही। मैंने जो कुछ किया अपने अकेले के ही वलवूते पर किया। मै स्वावलम्वी हूँ और तुम परावलम्वी।

शाव को अपनी भूल ज्ञात हो गई। उसने अजलि वॉध कर कहा—

—क्षमा कीजिए दादाजी ! मै अज्ञानवश आपका तिरस्कार कर वैठा।

क्षमा मॉगकर उसने वसुदेव को प्रणाम किया और चला आया।

—वसुदेव हिंडी,
—त्रिषष्टि० ८।७

वशेष—वसुदेव हिंडी मे शाव का १०८ कन्याओ के साथ विवाह का उल्लेख है।

यहाँ प्रद्युम्न न तो वाहर ही जाता है और न शाव से मिलता है। कथा अन्य प्रकार से दी हुई है।

सत्यभामा ने शाव की अनुपस्थिति मे अपने पुत्र सुभानुकुमार का विवाह १०८ कन्याओ से करना चाहा। १०७ कन्याएँ उसे प्राप्त हो गई। यह सव वात शाव को प्रज्ञप्ति विद्या द्वारा ज्ञात हो गई। उसने एक कन्या का रूप वनाया और एक सार्थवाह के पास अपनी धात्री माता (यह प्रज्ञप्ति विद्या थी) के साथ आया। धात्री माता और वह सार्थवाह के साथ द्वारका आ गई। वहाँ सुभानु ने उसे देखा। उसके रूप-गुण पर मोहित होकर उसने खाना-पीना त्याग दिया। तव कृष्ण और सत्यभामा उसे लिवा लाए। उसने स्पष्ट कह दिया कि 'मैं गणिका पुत्री हूँ' किन्तु सुभानु इस पर भी विवाह के लिए तैयार हो गया। तव शाव ने उन १०७ कन्याओ को भी शाव के रूप-गुणो का वखान करके उन्हे सुभानु के विरुद्ध कर दिया। कन्याओ ने सुभानु के साथ विवाह करने से इन्कार कर दिया। तव शाव प्रगट हुआ और उसका विवाह उन १०७ कन्याओ से हो गया। सुहिरण्या के साथ भी उसका विधिवत विवाह हुआ। इस प्रकार शाव की १०८ पत्नियाँ हो गई।

४

जरासंध-युद्ध

यवनद्वीप के कुछ व्यापारी जल-मार्ग से व्यापार हेतु द्वारका[1] आ पहुँचे। अन्य माल तो उन्होने वही वेच दिया किन्तु रत्नकम्वल नही वेचे। उन्हे आशा थी कि मगध की राजगृह नगरी मे उन्हे अच्छा मूल्य मिल जायगा। अधिक लाभ की आशा मे व्यापारी राजगृह जा पहुँचे और वे रत्नकवल मगधेश्वर की पुत्री जीवयशा को दिखाए। जीवयशा ने उन कवलो का आधा मूल्य ही लगाया। मुँह विचकाकर व्यापारियो ने कहा—

—इससे दुगना मूल्य तो द्वारका नगरी मे ही मिल रहा था।

---

१ भवभावना, गाथा २६५६-६५।

किन्तु यहाँ अन्य ग्रन्थो मे कुछ मतभेद है—

(क) मगध देश के कुछ वैश्यपुत्र जलमार्ग से व्यापार करते हुए भूल से द्वारवती नगरी जा पहुँचे। वहाँ मे उन्होने श्रेष्ठ रत्न खरीदे और राजगृह नगरी जाकर जरासध को भेट किए। जरासध ने पूछा तो उन्होने द्वारवती नगरी का विस्तार से वर्णन किया।

(उत्तर पुराण ७१/५३-६४)

(ख) जरासध के पास अमूल्य मणियो के विक्रयार्थ एक वणिक पहुँचा।

(हरिवश पुराण ५०/१-४)

(ग) किसी व्यक्ति ने जरासध को रत्न आदि अर्पित किए। पूछने पर उसने वताया कि मैं द्वारका पुरी से आ रहा हूँ। वहाँ श्रीकृष्ण राज्य करते हैं। यह सुनकर जरासध क्रोधित होगया।

(शुभचन्द्राचार्य प्रणीत—पांडव पुराण, १९/८-११)

—यह द्वारका नगरी कहाँ है ?

—समुद्र के किनारे, अति समृद्ध ! स्वर्ग की अलकापुरी के समान।

—कौन है, वहाँ का शासक ?

—यादव कुलभूपण वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण ।

कृष्ण का नाम सुनते ही जीवयशा वहाँ से उठकर सीधी पिता के पास गई और रोने लगी। पुत्री से रोने का कारण पूछा तो उसने वताया—

—मेरे पति का हत्यारा कृष्ण अभी तक जीवित है और द्वारका नगरी पर राज्य कर रहा है। मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं अग्नि मे जलकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर सकूँ।

कृष्ण के जीवित रहने का समाचार जानकर जरासध भी कुपित हो गया। धैर्य बँधाते हुए पुत्री से वोला—

—वत्से ! रो मत। मैं कृष्ण को मारकर यादवो का समूलोच्छेद कर दूँगा। यादव स्त्रियाँ अपने ही आँसुओ से भीग जायेगी।

पुत्री को आश्वासन देकर जरासध युद्ध की तैयारियो मे जुट गया। उसकी सहायता के लिए चेदि नरेश शिशुपाल दुर्योधन आदि समस्त कौरव, महापराक्रमी राजा हिरण्यनाभ आदि आगए। प्रतिवासुदेव जरासध ने चतुरगिणी सेना सजाकर प्रस्थान कर दिया। प्रस्थान के समय अनेक अपशकुन हुए किन्तु उसने कोई चिन्ता नही की और द्वारका की ओर वढता रहा।

× × ×

जरासध के आगमन का समाचार कौतुकी नारद तथा अन्य चरों ने कृष्ण को पहले ही दे दिया। युद्ध को अवश्यम्भावी जानकर यादव भी तैयारियाँ करने लगे। समस्त यादव-परिवार और सेना के साथ पाँचो पाडव भी उनसे आ मिले। श्रीकृष्ण द्वारका से प्रस्थित हुए और पैंतालीस योजन दूर सेनपल्ली मे शिविर लगा दिया।

उस समय कुछ विद्याधर आये और समुद्रविजय से प्रार्थना की—

—हे स्वामिन् ! यद्यपि आपके साथ श्रीकृष्ण जैसे महायोद्धा और अरिष्टनेमि जैसे अतुलित वली है। अकेले कृष्ण ही जरासध को जीतने मे समर्थ है। फिर भी आप हमे अपना सेवक समझिए। आपको हमारी सहायता की आवश्यकता तो नही है किन्तु जरासध के साथ कुछ विद्याधर हैं। उन्हे रोकने के लिए वसुदेवजी के नेतृत्व मे प्रद्युम्न तथा शाव कुमारो को हमारे साथ भेज दीजिए।

समुद्रविजय ने उन विद्याधरो की वात स्वीकार कर ली। उस समय अरिष्टनेमि ने अपनी भुजा पर जन्मस्नात्र के अवसर पर देवताओ द्वारा वाँधी गई अस्त्रवारिणी ओषधि वसुदेव को दे दी।

× × ×

जरासध ने अपना शिविर कृष्ण के पडाव से चार योजन दूर लगा दिया। उस समय उसके नीतिमान मत्री हसक ने कहा—

—हे स्वामी! शत्रु का वलावल विचार करके ही युद्ध करना चाहिए।

—तुम्हारा आशय क्या है?

—राजन्! यादवो मे अकेले वसुदेव ने ही कई वार आपको अपनी कुशलता दिखाई है जिसमे अव तो उनकी ओर एक से एक वढकर वली है। अरिष्टनेमि, दशों दशार्ह, कृष्ण, पाँचो पाडव आदि और हमारी ओर अकेले आप! कही कस का सा-दुष्परिणाम न हो।

मत्री के वचन सुनकर जरासध जल उठा। रोषपूर्वक वोला—

—सभवत यादवो ने तुम्हे रिश्वत दे दी है। तुम उनसे मिल गए हो। इसी कारण ऐसे खोटे वचन वोल रहे हो।

—यह दुर्वचन नही नीतिपूर्ण सलाह है।

—धिक्कार है तुम्हे जो रणभूमि से पीठ दिखाने की राय दे रहे हो। मैं अकेला ही शत्रु सेना को भस्म कर दूँगा।

तभी डिभक नाम का दूसरा मत्री वोल उठा—

—सत्य है महाराज! रणभूमि मे पीठ दिखाना क्षत्रिय धर्म के विरुद्ध है। फिर युद्ध करते हुए मरने से लोक मे यश और परलोक मे

स्वर्ग मिलता है जबकि युद्ध से भाग जाने पर लोकापवाद ! अत युद्ध करना ही श्रेष्ठ है ।

जरासव डिभक की वात सुनकर सतुष्ट हुआ । डिभक ने ही पुन कहा—

—आपके हाथ मे चक्र है और मेरे मस्तिष्क मे चक्रव्यूह । मै चक्रव्यूह की रचना करके शत्रु-योद्धाओ को उसमे फँसा लूँगा और आप अपने पौरुप से उनका शिरच्छेद कर दीजिए । वस किस्सा खतम ।

योजना पसद आई जरासघ को । वह अपनी विजय के प्रति आश्वस्त होकर फूल गया ।

दूसरे दिन प्रात काल से ही डिभक ने एक हजार आरे वाले चक्र-व्यूह की रचना प्रारभ कर दी । प्रत्येक आरे मे एक-एक महावलवान राजा अवस्थित कर दिया । उसके साथ १०० हाथी, २००० रथ, ५००० अश्व और १६००० पराक्रमी पैदल सैनिक थे । चक्रव्यूह की परिधि मे ६२५० राजा और केन्द्र मे अपने पुत्रो सहित स्वय जरासघ ५००० राजाओ के साथ जम गया । उसके पृष्ठ भाग मे गाधार और सैन्धव सेना थी, दक्षिण भाग मे दुर्योधन आदि १०० कौरव, वायी ओर मध्य देश के अनेक राजा और आगे अन्यान्य योद्धा तथा सुभट । इनके आगे शकट व्यूह रचकर प्रत्येक सघिस्थल मे पचास-पचास राजा नियुक्त कर दिये । चक्रव्यूह के वाहर भी विभिन्न प्रकार के व्यूहो की रचना की और कौशलाधिपति राजा हिरण्यनाभ को सेनापति वनाया । इस सपूर्ण व्यवस्था मे ही दिन व्यतीत होगया ।

रात्रि मे यादवो ने गरुडव्यूह की रचना की । व्यूह के मुख भाग पर अर्द्धकोटि महावीर, उनके पीछे वलराम और कृष्ण और उनके पीछे अक्रूर, जराकुमार आदि यादव, उग्रसेन आदि राजा, दक्षिण भाग मे समुद्रविजय और अरिष्टनेमि आदि पुत्र तथा अन्य राजा, वाम पक्ष मे युधिष्ठिर आदि पाँचो पाडव; तथा पृष्ठ भाग मे भानु, भीरुक आदि अनेक यादवकुमार अवस्थित हो गए । इस प्रकार कृष्ण ने रात्रि मे ही गरुडव्यूह की रचना पूरी कर दी ।

इसी समय शक्रेन्द्र ने भगवान अरिष्टनेमि[1] के लिए अपना रथ और मातलि नाम का सारथि भेजा। उसने आकर नमस्कार किया और उन्हे सज्जित करके अमावृष्टि (एक यादव) को सेनापति पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। कृष्ण के कटक मे इस घटना पर इतना प्रबल जयनाद का शब्द हुआ कि जरासध की सेना क्षुभित हो गई।

प्रात काल ही दोनो ओर की सेनाओ मे भयकर युद्ध प्रारम्भ हो गया। रक्त की धाराएँ वहने लगी। जरासध की ओर से कई वार युद्ध नियमो का भग हुआ किन्तु उसके सभी प्रमुख योद्धा—जयद्रथ, रुक्मि, शिशुपाल, कर्ण, दुर्योधन आदि वीरगति को प्राप्त हुए।

दूसरे दिन जरासध अपने वचे-खुचे वीरो और अपने पुत्रो के साथ युद्धभूमि मे उतरा। उसने वात की वात मे समुद्रविजय के कई पुत्रो को मार डाला। उस समय वह साक्षात काल के समान ही दिखाई पड रहा था। जिधर भी उसकी गदा घूम जाती यादव दल त्राहि-त्राहि पुकारने लगता। तव तक वलराम ने उसके २८ पुत्रो को मृत्यु की गोद मे सुला दिया। पुत्रो की मृत्यु से तो वह साक्षात आग ही हो गया। वलराम के वक्षस्थल पर भीषण गदा प्रहार किया तो वे रक्त वमन करके कटे वृक्ष की भाँति भूमि पर गिर पडे। दूसरा गदा प्रहार करना चाहा तो धनुर्धारी अर्जुन वीच मे आ गया। उसने वाणो की बौछार से उसे रोक लिया। तव तक श्रीकृष्ण ने उसके ६९ पुत्रो को मार गिराया। जरासध दौडकर कृष्ण के सम्मुख जा पहुँचा और अफवाह फैला दी—'श्रीकृष्ण मारे गए।' इस अफवाह को सुनकर अरिष्टनेमि का सारथी मातलि घवडाया। उसने उनसे प्रार्थना की —

---

१ (क) शुभचन्द्राचार्य के पाडव पुराण मे अरिष्टनेमि के युद्ध मे सम्मिलित होने का उल्लेख नही है। सिर्फ इतना ही उल्लेख है कि—नारद से जरासध के युद्ध हेतु आगमन को जानकर कृष्ण ने उनसे अपनी जय के सम्वन्ध मे पूछा तो भगवान ने मदहास्यपूर्वक 'ओम्' शब्द कहा। कृष्ण अपनी विजय के प्रति आश्वस्त हो गए। (पाडव पुराण १९/१२-१४)

(ख) जिनसेन के उत्तर पुराण मे भी यही वर्णन है। (७१/६८-७२)

—प्रभु ! यद्यपि आप सावद्य कर्म से विरत है किन्तु इस समय यादव कुल को बचाने के लिए कुछ लीला तो दिखाइये। यद्यपि आपके समक्ष जरासध मच्छर है किन्तु इस समय उसकी उपेक्षा उचित नही।

मातलि की ओर देखकर प्रभु ने उसका अभिप्राय समझा और अपना पौरन्दर नाम का शख फूँक दिया। शख ध्वनि दिशाओ मे गूँज गई। यादव सेना स्थिर हुई और शत्रु सेना अस्थिर। सारथी ने उनका रथ समस्त रणभूमि मे घुमाया। अरिष्टनेमि ने हजारो ही वाण वरसाए। किसी का रथ भग हो गया तो किसी का क्षत्र और कोई-कोई तो शस्त्र विहीन ही हो गया। उनके अतुल पराक्रम के समक्ष युद्ध की तो वात ही क्या, किसी का सामने आने का भी साहस नही हुआ। अकेले अरिष्टनेमि ने ही एक लाख मुकुटधारी राजाओ को भग्न कर दिया। प्रतिवासुदेव वासुदेव द्वारा ही वध्य होता है—इस नियम की मर्यादा को ध्यान मे रखकर उन्होने जरासध को मारा नही।

इतने मे वलराम भी स्वस्थ हो गए और यादव सेना का जोश भी द्विगुणित हो गया। पुन. सेनाओं मे युद्ध होने लगा। जरासध ने कृष्ण के सम्मुख आकर कहा—

—कृष्ण ! अव तक तो तुम कपट से जीवित रहे। छल और प्रपच से ही तुमने कस को मारा और कालकुमार को काल कवलित किया। अव मरने के लिए तैयार हो जाओ।

मुस्कराकर कृष्ण ने उत्तर दिया—

—व्यर्थ की वातो से क्या लाभ ? शक्ति दिखाओ।

जरासध और कृष्ण परस्पर भिड गए। धनुष-वाण, खड्ग, गदा आदि सभी युद्धो मे जरासध की पराजय हुई। तव उसने अमोघ अस्त्र चक्र का प्रयोग किया किन्तु वह भी कृष्ण की प्रदक्षिणा देकर उनके हाथ मे आ गया। एक वार कृष्ण ने उसे फिर सावधान किया किन्तु जरासध न माना। चक्र का प्रयोग करके उन्होने जरासध का शिरच्छेद कर दिया।

उसी समय आकाश से देवो ने पुष्पवृष्टि की और जय-जयकार के बीच घोषणा की—'नवे वासुदेव का उदय हो गया है।'

सभी राजा और सुभट अरिष्टनेमि के चरणो मे जाकर उनसे विनय करने लगे—

—हे स्वामिन ! हमने आपका विरोध किया। हमे क्षमा कीजिए।

उन सबको लेकर अरिष्टनेमि श्रीकृष्ण के पास आए। कृष्ण पहले तो अपने भाई से मिले और फिर सभी राजाओ को अभय दिया। अरिष्टनेमि के कहने तथा समुद्रविजय की आज्ञा से उन्होने जरासध के अवशेष पुत्रो का स्वागत किया। जरासध के पुत्र सहदेव को मगध के चतुर्थ भाग का शासक बनाया। समुद्रविजय के पुत्र महानेमि को शौर्यपुर का राज्य दिया। हिरण्यनाभ के पुत्र रुक्मनाभ को कोशल देश का राजा बनाया। उग्रसेन के पुत्र धर को मथुरा का राज्य मिला।

शक्रेन्द्र का सारथि मातलि भी अरिष्टनेमि को नमन कर रथ लेकर चला गया और सभी राजा अपने-अपने नगरो की ओर चल दिए।

दूसरे दिन वसुदेव, प्रद्युम्न और शांब अनेक विद्याधरो पर विजय प्राप्त कर लौट आए। जरासध और उसके अनुचर पूर्ण रूप से पराजित हो चुके थे।

सहदेव ने अपने पिता जरासध का अग्नि सस्कार किया और जीवयशा अपने पिता की मृत्यु जानकर अग्नि मे जल मरी।

कृष्ण ने सेनपल्ली ग्राम का नाम आनन्दपुर रखा और तीन खण्ड को विजय करने चल दिए। छह माह मे उनकी विजय पूरी हो गई।

द्वारका लौटने के पश्चात् अर्द्ध चक्रेश्वर के रूप मे उनका अभिषेक बडी धूमधाम से मनाया गया। वासुदेव श्रीकृष्ण की समृद्धि विशाल थी—समुद्रविजय आदि बलवान दशार्ह, बलदेव आदि पाँच महावीर तो थे ही किन्तु उग्रसेन आदि सोलह हजार राजा, प्रद्युम्न आदि साढे तीन करोड कुमार, शांबादिक साठ हजार दुर्दान्त कुमार, वीरसेन प्रमुख इक्कीस हजार वीर, महासेन आदि महा बलवान सुभट

और अनुचरो के अतिरिक्त इभ्य, श्रेष्ठि, सार्थपति आदि हजारो पुरुष अंजलि बाँधकर उनकी सेवा और आज्ञापालन मे खड़े रहते थे।

एक बार सोलह हजार राजाओ ने अपनी दो-दो पुत्रियाँ वासुदेव कृष्ण को दी। उनमे से सोलह हजार कन्याएँ तो श्रीकृष्ण ने स्वय परणी, आठ हजार कन्याओ का विवाह बलराम से कर दिया और शेष आठ हजार का कुमारो के साथ लग्न कर दिया गया।

श्रीकृष्ण, बलराम और सभी यादवकुमार सुखपूर्वक समय बिताने लगे।

—त्रिषष्टि० ८/७-८
—उत्तरपुराण ७१/५२-१२८

●

विशेष १ वैदिक साहित्य म जरासध युद्ध न होकर जरासध वध का वर्णन है। इस परम्परा के प्रमुख ग्रन्थ महाभारत मे यह वर्णन निम्न प्रकार है—

कसवध होते ही जरासध की पुत्री जीवयशा विधवा हो गई और जरासध इसी कारण कृष्ण से शत्रुता मानने लगा। उसने ९९ बार घुमा कर गदा फेकी जो मथुरा के पास जाकर गिरी किन्तु कृष्ण की कोई हानि न हुई। उसने सत्रह बार मथुरा पर आक्रमण भी किया किन्तु सफल न हो सका। मथुरा की प्रजा भी बहुत पीडित हो गई तब अठारहवी बार के आक्रमण के अवसर पर श्रीकृष्ण मथुरा से भागे और समुद्र तट के पास जाकर द्वारका बसाई।

किन्तु कृष्ण ने समझ लिया कि जरासध को युद्ध मे मारना बहुत कठिन है। अत भीमसेन और अर्जुन के साथ वे ब्राह्मणो के वेश मे जरासध की सभा मे पहुँचे। जरासध ने उठकर उचित स्वागत किया। कुशल आदि पूछी। कृष्ण ने कह दिया कि 'अभी इनका मौन है। अर्द्धरात्रि को बाते हो सकेंगी।' तीनो को यज्ञशाला मे ठहरा दिया गया।

अर्द्धरात्रि को जरासध यज्ञशाला मे आया। उस समय उसने कहा—'आप लोग मुझे ब्राह्मण नही लगते। क्षात्र तेज स्पष्ट झलक रहा है।' तब कृष्ण ने अपना और दोनो पाडु-पुत्रो का परिचय दिया और कहा हममे से जिसे चाहो द्वन्द्व युद्ध के लिए चुन लो। उसका अपराध कृष्ण ने यह बताया कि तुम क्षत्रियो की बलि देकर महादेव को प्रसन्न करना चाहते हो। इसीलिए हम तुम्हे मारना चाहते हैं।

जरासध ने भीम से युद्ध करना स्वीकार कर लिया। कार्तिक कृष्णा प्रतिपदा से चतुर्दशी तक दोनो का युद्ध चलता रहा। दोनो वीरो ने विभिन्न प्रकार का द्वन्द्व युद्ध किया। चौदहवे दिन जब जरासध थक गया तो श्रीकृष्ण ने भीम को प्रेरित किया—'कुन्तीपुत्र! थके हुए शत्रु को सरलता से मारा जा सकता है।'

भीम इस प्रेरणा से और भी उत्साहित हो गया। उसने बडे वेग से उस पर हमला किया और उसे ऊपर उठाकर तीव्र गति से घुमाने लगा। सौ बार घुमाकर पृथ्वी पर दे मारा और घुटना मार कर उसकी पीठ की हड्डी तोड दी। फिर पृथ्वी पर खूब रगडा और टाँगे चीरकर दो टुकडे कर दिए। जरासध यमलोक को चला गया।

सभी वन्दी राजाओ को बन्दीगृह मे मुक्त करके उन्होने जरासध के पुत्र सहदेव को मगध का शासक बना दिया।

—महाभारत, सभापर्व, अध्याय १९-२४

२ देवप्रभसूरि के पाडव पुराण के अनुसार महाभारत युद्ध अलग से हुआ था। इसमे पाडव विजयी हुए तथा कौरव मारे गए।

वैदिक ग्रन्थ महाभारत के अनुसार महाभारत युद्ध के नायक कौरव-पाडव थे और पितामह भीष्म, गुरु द्रोणाचार्य, गुरुपुत्र अश्वत्थामा कृपाचार्य आदि सभी धनुर्धर तथा योद्धा कौरवो के पक्ष मे लडे और वीरगति को प्राप्त हुए। योद्धाओ के नाम पर केवल पाँच पाडव ही रह गए। धृतराष्ट्र तो वेचारे अन्धे थे ही। यहाँ कृष्ण युद्ध के नायक नही हैं। उन्होने कोई भाग भी नही लिया। केवल अर्जुन के सारथी बने। हाथ मे शस्त्र भी नही उठाया। हाँ, नीति अवश्य ही उनकी चली और उसी नीति के कारण पाडवो को विजय मिली।

नारद की करतूत

द्वारका के एक सद्गृहस्थ धनसेन ने राजा उग्रसेन के पुत्र नभ सेन के साथ अपनी पुत्री कमलामेला का विवाह निश्चित कर दिया। साधारण सी स्थिति का व्यक्ति था धनसेन; अत कार्य का समस्त भार उसी पर आ पड़ा।

नारदजी इधर-उधर घूमते हुए उसके घर जा पहुँचे। किन्तु व्यस्त होने के कारण वह उनकी ओर न देख पाया। स्पष्ट ही यह नारदजी का अपमान था और इस अपमान का बदला लिए बिना वे कैसे रह सकते थे ? वहाँ से चले तो सीधे सागरचन्द्र के पास जा पहुँचे।

सागरचन्द्र श्रीकृष्ण के बडे भाई बलराम का पौत्र और निषध का पुत्र था। उसकी घनिष्ठ मित्रता थी शाब से। सागरचन्द्र ने देवर्षि को देखा तो तुरन्त उठकर सत्कार किया। सतुष्ट होकर नारद जी आसन पर विराजे। सागरचन्द्र ने पूछा—

—नारदजी ! आप तो सदा भ्रमण करते ही रहते है, कोई आश्चर्यजनक वस्तु देखी हो तो बताइये।

—मुझे तो धनसेन की पुत्री कमलामेला के समान दूसरी कोई वस्तु नही जंची।

—क्या विशेषता है उसमे ?

—एक कुलीन कुमारी कन्या मे जो विशेषताएँ होनी चाहिए वे सभी उसमे है। इसके अतिरिक्त अनुपम सुन्दरी है वह।

सुन्दरता और वह भी किसी कुमारी कन्या की—ऐसी वस्तु है

जिसकी ओर पुरुष का चित्त आकर्षित हो ही जाता है। सागरचन्द्र भी अनुरक्त हो गया।

नारदजी उठकर चल दिए, अब उनका वहाँ क्या काम ? सीधे जा पहुँचे कमलामेला के पास। उसने भी यही प्रश्न किया—

- कोई आश्चर्यकारी वस्तु बताइये।

गम्भीर होकर नारदजी बोले—

—पुत्री ! एक हो तो बताऊँ। मैंने तो दो वस्तुएँ देखी है।

—दोनो ही बताइये मुनिवर !

—कुरूपता मे आश्चर्य है नभ सेन और सौन्दर्य मे सागरचन्द्र।

कमलामेला विचार मे पड गई और नारदजी उठकर चल दिए। उसे अपने भाग्य से शिकायत हुई और नभ सेन से नफरत। कौन कुमारी कुरूप को अपना पति बनाना चाहेगी ? वह सागरचन्द्र की ओर अनुरक्त हो गई और उसका नाम जपने लगी।

यही दशा सागरचन्द्र की थी। वह भी सोते-जागते कमलामेला का नाम रटने लगा।

एक दिन शाब ने आकर हास्य मे पीछे से उसकी आँखे मीच ली। सहसा सागरचन्द्र के मुख से निकला—

—कौन ? कमलामेला आ गई क्या ?

—कमलामेला नही कमलामेलापक !—हँसकर शाब ने कहा और उसकी आँखो पर से अपने हाथ हटा लिए।

—आप ठीक कहते है। कमलामेला से मिलाप आप ही करा सकते है।

— मैं नही करा सकता।—शाब ने स्पष्ट इन्कार कर दिया।

अपना प्रयोजन सिद्ध करने हेतु उसने शाब को मदिरा पिलाई। मदिरा-प्रेमी तो वह था ही, अधिक पी गया और पीकर बहकने लगा। तब सागरचन्द्र ने उससे कमलामेला के मिलाप का वचन ले लिया। नशा उतरने के बाद शांब को वचन की याद आई तो पछताने लगा किन्तु अब हो भी क्या सकता था। वचन तो पूरा करना ही पडेगा। सागरचन्द्र भी उससे बार-बार आग्रह करने लगा।

शाव ने प्रज्ञप्ति विद्या द्वारा कमलामेला और उसके पिता धनसेन का पूरा परिचय प्राप्त किया।

अब चिन्ता यह थी कि कार्य कैसे सपन्न किया जाय। द्वारका के शासक श्रीकृष्ण है और उनके रहते नगरी मे से किसी कन्या का अपहरण अथवा उसके पिता पर दवाव असभव है। काफी ऊहापोह के वाद एक युक्ति सोच ली गई। युक्ति थी—नगर के वाहर उद्यान से से कमलामेला के कक्ष तक सुरग वनाना और फिर उसी मार्ग से कन्या को लाकर सागरचन्द्र के साथ उसका लग्न कर देना।

अथक परिश्रम करके शाव ने सुरग का निर्माण किया। कन्या के पास यादवकुमार सागरचन्द्र जा पहुँचा। अपना परिचय वताकर चलने को कहा। कमलामेला तो अनुरक्त थी ही तुरन्त चल दी। उद्यान मे आकर उसका लग्न भी हो गया।

धनसेन को विवाह के समय जव कन्या घर मे न मिली तो चारों ओर खोज करने लगा। खोजते-खोजते नगर के वाहर उद्यान मे उसे अपनी पुत्री विद्याधर रूपी यादवकुमारो के मध्य वैठी हुई दिखाई पडी। दाँत पीसकर रह गया धनसेन। यादवकुमारो से वह भिड नही सकता था। इतनी शक्ति ही कहाँ थी ?

शीघ्र ही जाकर वासुदेव श्रीकृष्ण से पुकार की—

—आपके राज्य मे ऐसा अन्याय ? पिता को खवर भी नही और पुत्री को विद्याधर लोग ले उडे।

श्रीकृष्ण तुरन्त ही उद्यान मे जा पहुँचे। उन्होने विद्याधरो को युद्ध के लिए ललकारा। वासुदेव के कोप से प्रज्ञप्ति विद्या भाग गई और यादवकुमार अपने असली रूप मे आ गए। यह देखकर कृष्ण को वडा आश्चर्य हुआ। तव तक शाव आदि सभी कुमार उनके चरणो मे गिर पड़े और विनम्र स्वर मे वोले—

—द्वारकानाथ ! कोप करने से पहले हमारी भी सुनले।

—क्या कहना चाहते हो तुम लोग ?

—इस कन्या से ही पूछ ले कि हम इसे वलात लाए है अथवा ···

कन्या ने वताया कि मैं तो स्वय ही सागरचन्द्र से लग्न की इच्छुक थी।

धनसेन ने प्रतिवाद किया—

—किन्तु इसका वाग्दान तो राजा उग्रसेन के पुत्र नभ सेन के साथ हो चुका है। वारात आ चुकी है। मै क्या मुँह दिखाऊँ ?

तव श्रीकृष्ण ने शाव से पूछा—

—यह सव कैसे हुआ ?

शाव ने सम्पूर्ण घटना वता दी।

होनी को प्रवल मानकर कृष्ण ने कहा—अव क्या हो सकता है ?

इसके वाद उन्होने कुमार नभ सेन को समझा-वुझाकर लौटा दिया और कमलामेला सागरचन्द्र को सौप दी।

विवश सा रह गया धनसेन ! न वह यादवकुमारो से कुछ कह सकता था और न द्वारकानाथ से ही। असमर्थ और निर्वल व्यक्ति समर्थ और वलवान के समक्ष कर भी क्या सकता है ?

अपमान का कडवा घूँट पीकर रह गया और सागरचन्द्र के दोष देखने लगा।

—त्रिषष्टि० ८/८

बाणासुर का अन्त ६

शुभनिवासपुर के खेचरपति बाण की पुत्री उषा ने अपने योग्य वर की प्राप्ति हेतु गौरी नाम की विद्या का आराधन किया। प्रगट होकर विद्या ने बताया—

—पुत्री ! तेरा वर अनिरुद्ध है।

—अनिरुद्ध कौन ?

—वासुदेव श्रीकृष्ण का पौत्र और वैदर्भी से उत्पन्न प्रद्युम्न का पुत्र ! वह इन्द्र के समान ही रूपवान और बलवान है।

विद्या अदृश्य हो गई और उषा अनिरुद्ध के विचारो मे खो गई।

खेचरपति बाण ने भी गौरी विद्या के प्रिय शकर नाम के देव की आराधना की। पुत्री को पति की कामना थी तो पिता को अजेय होने की। शकर प्रसन्न हुआ और उसने प्रकट होकर पूछा—

—क्या चाहते हो, विद्याधर ?

—मैं ससार मे अजेय हो जाऊँ। रणभूमि मे कोई मुझे जीत न सके।

देव ने तथास्तु कह दिया। किन्तु ज्यो ही गौरी विद्या को मालूम हुआ उसने तुरन्त सावधान किया—देव ! तुम्हारा यह वरदान मिथ्या है।

—क्यो ?—अचकचाकर शकर ने पूछा।

—इसलिए कि बाण खेचरपति अजेय नही है। इसकी मृत्यु वासुदेव श्रीकृष्ण के हाथो युद्ध भूमि मे ही होगी।

—अब क्या करूँ ?

—अभी वाण आराधना मे ही बैठा है। उसे तुम्हारे चले आने का भान भी नही है। तुरन्त-जाओ और अपने कथन मे इतना और बढ़ा दो—'स्त्री के कार्य के अतिरिक्त !'

शकर देव पुन. वाण के सामने प्रगट हुआ और बोला—

—खेचरपति ! स्त्री सम्बन्धी युद्ध के अतिरिक्त सभी युद्धो में तुम अजेय रहोगे।

वाण ने समझा कि उसे पूरा वरदान अब मिला है। उसकी साधना अब सफल हुई है। वह प्रसन्न हो गया।

× × ×

उषा अनिद्य सुन्दरी थी। अनेक विद्याधरो ने उसकी याचना की किन्तु खेचरपति वाण ने कोई स्वीकार नही की। वह किसी विशिष्ट पुरुप की आशा लगाये बैठा था और उधर पुत्री उषा अनिरुद्ध के नाम की माला जप रही थी। अन्यो की याचना स्वीकार कैसे होती ?

एक रात्रि उपा ने अपनी प्रिय विद्याधरी से अपनी हृदय व्यथा कही और अनिरुद्ध को लाने का आग्रह किया। चित्रलेखा ने उसकी इच्छा पूरी की। सोते हुए अनिरुद्ध को उठा लाई। किसी को कानो कान खबर न लगी।

उसी रात्रि उषा-अनिरुद्ध का गाधर्व विवाह होगया। उषा तो अनुरक्त थी ही, उसकी सुन्दरता पर अनिरुद्ध भी मोहित हो गया। जब उसे लेकर चलने लगा तो उद्घोपणा की—

—विद्याधर वाण और उसके सुभट कान खोलकर सुन ले मैं वासुदेव श्रीकृष्ण का पौत्र और प्रद्युम्न का पुत्र अनिरुद्ध उपा की इच्छा से उसका हरण कर रहा हूँ, साहस हो तो मुझे रोके।

वाण क्रोध मे भर गया। उसकी सेना ने अनिरुद्ध को चारो ओर से घेर लिया। तब उपा ने उसे पाठमिद्ध[1] विद्याएँ दी। उन-विद्याओं

---

१ पाठमिद्ध -विद्याएँ वे होती हैं जिन्हे सिद्ध नही करना पडता केवल पढते ही काम करने लगती हैं।

के वल से अनिरुद्ध युद्ध करने लगा। जब काफी देर हो गई और अनिरुद्ध पर वाण विजय प्राप्त नही कर पाया तो नागपाश मे उसे बॉध लिया। अनिरुद्ध विवश हो गया। वाण ने व्यग किया—

—तुम्हारी तो कुल परम्परा ही है, कुमारियो का हरण करना। यही तुम्हारे प्रपिता कृष्ण ने किया, यही प्रद्यु म्न ने और अब तुम भी उसी राह पर चले हो। किन्तु अब बन्दीगृह की हवा खाओ।

नागपाश मे बँधा अनिरुद्ध कुछ उत्तर न दे सका।

× × × ×

इधर जब प्रात काल अनिरुद्ध शय्या पर नही मिला तो सभी को चिन्ता हुई। प्रज्ञप्ति विद्या ने वासुदेव को बताया कि 'अनिरुद्ध तो नागपाश मे जकडा शुभनिवासपुर के वन्दीगृह मे पडा है।'

पौत्र रक्षा हेतु श्रीकृष्ण वड़े भाई बलराम और पुत्र प्रद्यु म्न, आदि के साथ वडी सेना लेकर चल दिए। वाण भी युद्ध हेतु निकल आया। उसने कटूक्ति की—

—दो चोर तीसरे-चोर का पक्ष लेकर आए है।

—हम किसी का कुछ नही चुराते। —वासुदेव ने कटूक्ति का उत्तर गम्भीरता से दिया।

—स्त्रियो को चुराना—यह तुम्हारा काम नही है क्या ?

—मिथ्या कहते हो विद्याधर ! हम कभी किसी स्त्री को उसकी इच्छा विना वलात नही लाए।

—उसकी न सही, पिता-परिवारीजनो की इच्छा बिना ही तो लाते हो।

—नही, उनकी भी स्वीकृति से।

—किन्तु यह नीति यहाँ नही चलेगी। जानते नही शकरदेव के वरदान से मैं अजेय हूँ।

—साधारण देव का वरदान सृष्टि का नियामक नही। शस्त्र उठाओ और देखो कौन अजेय है। —वासुदेव ने चुनौती दे दी।

वाण ने युद्ध प्रारम्भ कर दिया। श्रीकृष्ण और उसका युद्ध काफी देर तक चलता रहा, शस्त्रवल-विद्यावल सभी प्रयुक्त हुए। अन्त मे वाण निरस्त्र हो गया और वासुदेव ने उसके शरीर के टुकडे-टुकडे कर दिए। अजेय वाण मारा गया। देव शकर का वरदान भी उसे न वचा सका।

वासुदेव उषा और अनिरुद्ध को साथ लेकर द्वारका लौट आए। वहाँ उनका विधिवत विवाह कर दिया। वैदर्भी ने अपनी पुत्रवधू के के स्वागत में वहुत उत्सव किया।

—त्रिषष्टि० ८/८

अरिष्टनेमि की प्रव्रज्या ७

पाचजन्य शख के तीव्र घोष से समस्त द्वारका नगरी स्तभित रह गई। श्रीकृष्ण और वलराम भी क्षुभित हो गए। एकाएक कृष्ण के हृदय मे आशका उठी—'क्या कोई दूसरा चक्रवर्ती उत्पन्न हो गया है अथवा इन्द्र स्वय द्वारका मे आया है।' तभी अस्त्रागार के अधिकारी ने आकर उन्हे प्रणाम किया और वताया—

—स्वामी ! आपके अनुज अरिष्टनेमि ने अस्त्रशाला मे आकर सुदर्शन चक्र को कुलाल चक्र की भाँति घुमा दिया, शार्ङ्ग धनुष को कमलनाल के समान मोड दिया, कौमुदी गदा एक साधारण छडी के समान घुमा डाली और पाचजन्य शख को इतने जोर से फूँका कि समस्त द्वारका भय से काँप उठी।

—तो क्या शखध्वनि अरिष्टनेमि ने की थी ? —कृष्ण ने साश्चर्य पूछा।

—हाँ स्वामी ! जिसकी प्रतिध्वनि अभी तक वातावरण मे गूँज रही है।

—'ठीक है ! तुम जाओ।' कहकर कृष्ण ने अस्त्रागार अधिकारी तो विदा कर दिया किन्तु वे उसकी वात पर विश्वास न कर सके। इन समस्त दिव्यशस्त्रो का प्रयोग वासुदेव के अतिरिक्त कोई नही कर सकता। इतना वली दूसरा होता ही नही। तो क्या अरिष्टनेमि मुझ से भी अधिक वलवान है ?

कृष्ण इस ऊहापोह मे पडे थे कि अरिष्टनेमि स्वय वहाँ आ गए। कृष्ण ने पूछा—

—क्या तुमने शख फूँका था ?

—हाँ भैया ! —सहज उत्तर मिला ।

—और अन्य दिव्यशस्त्र भी ?

अरिष्टनेमि ने स्वीकृतिसूचक सिर हिला दिया । उनकी स्वीकृति से कृष्ण चकित रह गए । वे बोले—

—इन दिव्यास्त्रो को प्रयोग करने की शक्ति मेरे अतिरिक्त और किसी मे नही है । किन्तु तुम्हारे वल को जानकर मुझे अति प्रसन्नता हुई । व्यायामशाला मे चलकर अपना भुजवल वताओ तथा मुझे और भी प्रसन्न करो ।

कृष्ण की चुनौती सुनकर अरिष्टनेमि ने सोचा—'व्यायामशाला मे यदि मैं इन्हे वक्षस्थल, भुजाओ, पाँवो से दवाऊँगा तो इनकी न जाने क्या दशा होगी ? साथ ही वडे भाई की अविनय भी । इसलिए ऐसा करूँ कि इनकी इच्छा भी पूरी हो जाय और इन्हे कष्ट भी न हो तथा मैं भी अविनय का भागी न वनूँ ।' यह सोचकर उन्होंने कहा—

—आप मेरा वल ही तो देखना चाहते हैं, इसके लिए व्यायामशाला मे जाने की आवश्यकता ?

—फिर ?

—आप अपनी भुजा फैला दीजिए । मैं उसे झुकाकर अपनी शक्ति का परिचय दे दूंगा ।

यह वात कृष्ण को पसन्द आई । उन्होने अपनी दायी भुजा पूरी शक्ति से तान दी । अरिष्टनेमि ने उसे कमलनाल की भाँति झुका दिया । अव कृष्ण ने उनसे भुजा फैलाने का आग्रह किया । पहले तो अरिष्टनेमि न न करते रहे किन्तु विशेष आग्रह पर वायी भुजा लम्बी कर दी । कृष्ण उसे अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर भी न झुका सके और वन्दर की तरह झूलने लगे । उन्होने समझ लिया कि अरिष्टनेमि के वल की कोई सीमा नही है । भुजा छोडकर उन्होने आलिगन किया और वोले—

—जिस तरह मेरे वल के कारण वड़े भैया वलराम ससार को तृण

के समान समझते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे वल से आज मैंने भी ससार को तिनका समझ लिया।

छोटे भाई के वल को देखकर प्रसन्नता तो स्वाभाविक ही थी किन्तु हृदय के एक कोने मे से आगका के सर्प ने फन उठाया—कही यह मेरा राज्य हडप ले तो ?[1] कृष्ण चिन्तातुर हो गए। उन्हे विचारमग्न देखकर अरिष्टनेमि चल दिए।

अभी कृष्ण का विचार-प्रवाह चल ही रहा था—उनके मुख पर चिन्ता की रेखाएँ स्पष्ट थी कि वलराम आ गए। उन्होंने पूछा—

—क्या वात है कृष्ण ? चिन्तित क्यो हो ?

कृष्ण ने कहा—

—हमारा अनुज अरिष्टनेमि महावली है। मैं उसकी भुजा से वन्दर की तरह झूल गया फिर भी झुका न पाया, जवकि उसने मेरी भुजा कमलनाल की भाँति मोड दी।

—यह तो प्रसन्नता की वात है कि हमारा भाई ऐसा वली है।

—प्रसन्नता के साथ-साथ चिन्ता भी है, यदि उसने सिंहासन छीन लिया तो ?...

---

१ इस घटना का वर्णन जिनसेनाचार्य ने अपने हरिवश पुराण मे दूसरे ढग से किया है। सक्षिप्त घटना क्रम इस प्रकार है—

एक वार अरिष्टनेमि श्रीकृष्ण की राज्यसभा मे गए। कृष्ण ने उन्हे ससम्मान विठाया। उस समय वीरता का प्रसग चल रहा था। कोई अर्जुन की प्रशसा कर रहा था, कोई भीम की और कोई श्रीकृष्ण की। तव वलराम ने कहा—जहाँ अतुलित वलशाली अरिष्टनेमि वैठे हो वहाँ किस वीर की प्रशसा करनी। इस पर कृष्ण ने परीक्षा के लिए कहा। तव अरिष्टनेमि ने कहा—मल्लयुद्ध से क्या लाभ ? आप मेरा पाँव ही हिला दें। श्रीकृष्ण अपनी भरपूर शक्ति लगाने पर भी उनका चरण न हिला सके। तव उन्हें महान् वली समझकर उनके हृदय में सिंहासन के प्रति चिन्ता व्याप्त हो गई।

(हरिवंश पुराण, ५५/१-१३)

—नही, नही, ! यह शका निराधार है। देखते नही वह सासारिक सुखो से—राज्य से कितना निस्पृह है ?

—चित्तवृत्ति वदलते देर नही लगती।

तभी आकाश से देववाणी हुई—

—अरिष्टनेमि की चित्तवृत्ति कभी नही वदलेगी। वे तुम्हारे राज्य से क्या, ससार से ही निस्पृह हैं।

वलराम और कृष्ण आकाश की ओर देखने लगे। देवताओ ने अपना कथन स्पष्ट किया—

—तीर्थंकर नमिनाथ ने कहा था कि मेरे वाद होने वाले तीर्थंकर अरिष्टनेमि कुमार अवस्था में ही प्रव्रजित हो जायेंगे। इसलिए हे कृष्ण ! अपने सिहासन की चिन्ता मत करो।

देव-वाणी सुनकर कृष्ण सिहासन के प्रति तो निश्चिन्त हो गए किन्तु भाई के कुमार अवस्था मे ही प्रव्रजित होने की वात सुनकर चिन्ता व्याप्त हो गई। एक चिन्ता छूटी तो दूसरी लगी। अव वे अरिष्टनेमि को ससार की ओर आकृष्ट करने मे प्रवृत्त हुए। उन्होंने अपनी रानियो से कहा—अरिष्टनेमि युवावस्था मे भी ससार-सुखो से विरक्त सा है तुम्हे उसे आकृष्ट करना चाहिए।

पति का सकेत पत्नियाँ समझ गई। वे अरिष्टनेमि के साथ क्रीडा करने लगी। भाँति-भाँति के हाव-भाव और कटाक्षो से उन्हे ससार सुख की ओर प्रेरित करती किन्तु अरिष्टनेमि के हृदय मे विकार उत्पन्न ही नही होता।

एक दिन सभी लोग वसन्त क्रीडा हेतु उद्यान मे गए। अरिष्ट-नेमि को भी कृष्ण की पत्नियाँ खीच ले गई। सवने उनके साथ जल-क्रीडा की। भाभियो की जल-क्रीडा का प्रत्युत्तर उन्होने भी दिया। इस प्रत्युत्तर से उत्साहित होकर सत्यभामा ने कहा—

—देवरजी ! तुम विवाह क्यो नही कर लेते ?

जाम्ववती ने कहा—

—यादव कुल मे एक तुम्ही हो जो ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे हो।

—मुझे स्त्री की कोई इच्छा नही है । —अरिष्टनेमि ने निर्विकार भाव से कह दिया ।

—स्त्री की इच्छा नही, या स्त्री के योग्य नही । —सत्यभामा ने विनोद किया ।

—कुछ भी कहो । जव ससार मे रहना नही, उसे छोडना ही है तो विवाह की वात ही क्यो सोचनी ?[1]

— विवाह तो तुम्हे करना ही पडेगा । —कृष्ण ने आकर कहा ।

—नही भैया ! मुझे इस झझट मे मत फँसाइये ।

—तो क्या हम सभी को दुखी करोगे ?

—मुझे प्रव्रजित तो होना ही है फिर-विवाह से क्या लाभ ?

कृष्ण ने समझाया—

—देखो वन्धु ! मै तुम्हारी प्रव्रज्या मे विघ्न नही डालना चाहता किन्तु यह अवश्य चाहता हूँ कि कुछ दिन गृहस्थधर्म का पालन करो । आदि जिन ऋषभदेव भी गृहस्थाश्रम को भोग कर ही प्रव्रजित हुए थे और हमारे वश मे उत्पन्न हुए वीसवे तीर्थकर मुनिसुव्रत ने भी गृहस्थाश्रम भोगा था । गृहस्थाश्रम मुक्ति मे वाधक नही है ।

१　हरिवश पुराण मे जलक्रीडा से पश्चात् शख फूंकने की घटना का वर्णन है । उसका कारण इस प्रकार दिया है—

जलक्रीडा के पश्चात् अरिष्टनेमि ने अपने गीले वस्त्र निचोडने के लिए जाववती की ओर देखा तो उसने कटाक्षपूर्वक उत्तर दिया—मैं उन श्रीकृष्ण की पत्नी हूँ जिनका वल-पराक्रम विश्व विख्यात है । क्या आप उनसे अधिक वली है जो मुझसे वस्त्र निचोडने की आशा कर रहे है ? तव अपना वल दिखाने के लिए ही अरिष्टनेमि कृष्ण की आयुधशाला मे गए और पाचजन्य शख फूंका ।

—हरिवश पुराण ५५/२६-७१

उत्तर पुराण मे जाववती की वजाय सत्यभामा का नाम दिया है । शेष घटना क्रम यही है ।

—उत्तर पुराण ७१/१३५-३६

इस तर्क का उत्तर अरिष्टनेमि के पास नही था। वे चुप रह गए। कृष्ण ने उनके मौन को स्वीकृति समझा और समुद्रविजय आदि से कह दिया। उनके योग्य कन्या भी खोज ली गई उग्रसेन की पुत्री राजीमती।

समुद्रविजय ने नैमित्तक कौष्ट्रुकि से विवाह के लिये शुभ लग्न पूछा तो उसने कहा—

—राजन्। वर्षा ऋतु मे कोई भी सासारिक शुभ कार्य नही किया जाता तो विवाह

—विवाह का मुहूर्त तो शीघ्र ही निकालिए। देर करना उचित नही है। वडी कठिनाई से कृष्ण उसे राजी कर सका है। —समुद्र-विजय ने आतुरता दिखाई।

कोष्ट्रुकि ने स्थिति की गम्भीरता समझी और श्रावण शुक्ला ६ का मुहूर्त निकाल दिया।

वारात सज-धज कर चल दी। राजीमती भी अरिष्टनेमि जैसे पति की प्राप्ति की आशा मे मगन थी।

ज्यो ही अरिष्टनेमि का रथ नगरी के समीप आया तो उन्हे पशुओ की पुकार सुनाई दी। उन्होने सारथी से पूछा—

—यह पुकार कैसी ?

—आपकी वारात मे आये लोगो के भोजन के लिये इन पशुओ को पकडा गया है।—सारथी ने वताया।

अरिष्टनेमि का हृदय दया से भर गया। उनकी आज्ञा से सारथी ने रथ पशुओ के वाडे[1] के समीप जा खडा किया। उन्होने अपने हाथ

---

१ हिरनो (पशुओ) को श्रीकृष्ण ने एकत्रित करवाया था। वह कार्य उन्होने अरिष्टनेमि को ससार मे विरक्त करने के लिए किया था।

(उत्तर पुराण ७१/१५२)

से वाड़ा खोलकर पशुओ को मुक्त कर दिया और स्वय वापिस लौट आये। वर्षीदान देकर श्रावण शुक्ला षष्ठी को प्रव्रजित हो गये। चौवन (५४) दिन की छद्मस्थ अवस्था के बाद आश्विन कृष्ण अमावस्या को उन्हे केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई।

राजीमती ने भी सयम स्वीकार कर लिया।

—त्रिषष्टि० ८।६
—उत्तरपुराण ७१/१३०-१८१

द्रौपदी का अपहरण

देवर्षि नारद के आने पर पाँचो पाडवो और कुती आदि सभी ने उठकर उनका स्वागत किया किन्तु द्रौपदी ने उन्हे असयत जानकर उनकी पर्युपासना नही की।[1] ऊपर से भद्र और विनयी दिखाई देने वाले नारद द्रौपदी के इस व्यवहार पर जल उठे। किन्तु उस समय वे अपने मनोभावो को छिपाकर पाडुराजा से कुशल क्षेम की वात-चीत करके चले गए।

नारदजी हस्तिनापुर के अन्त.पुर से चले तो आए किन्तु उनके हृदय मे द्रौपदी के अशिष्ट व्यवहार से उत्पन्न हुई शल्य खटकती रही। वे यही सोचते रहे कि द्रौपदी को किस उपाय से कष्ट पहुँचाया जाय? क्या किया जाये कि उसका दर्प-दलित हो?

सती स्त्री को दारुण-दुख एक ही होता है—पति-विछोह। नारदजी इसी उपाय पर विचार करने लगे। उन्होने सोचा—'दक्षिण भरतार्द्ध

१ (क) ज्ञाताधर्म मे नारद का नाम कच्छुल्ल वताया है—

तए ण सा दोवईदेवी कच्छुल्ल नारय अविरय अप्पडिहय-पच्चक्खायपावकम्म ति कट्टु नो आढाइ नो परियाणाइ नो अब्भुट्ठेइ, नो पज्जुवासाइ।

(ज्ञाताधर्मकथा, अध्ययन १६, सूत्र १६०)

(ख) हरिवश पुराण मे द्रौपदी की इस अशिष्टता का दूसरा कारण वताया गया है—

द्रौपदी आभूषण धारण करने मे व्यस्त थी, अतः उसने नारद को देखा नही।

—हरिवश पुराण ५४।५

मे तो श्रीकृष्ण के भय से कोई राजा न उसका हरण कर सकता है और न ही किसी अन्य उपाय से उसे उत्पीडित कर सकता है ।'

'किसी अन्य स्थान पर जाऊँ । इसका अप्रिय करना ही मुझे इष्ट है ।' यह विचार करके नारद आकाश मार्ग से उड़ते हुए धातकीखड के भरतक्षेत्र की अमरकका नगरी जा पहुँचे ।

अमरकका नगरी का अधिपति राजा पद्मनाभ विलासी और व्यभिचारी स्वभाव का था। वह अपने क्षेत्र के वासुदेव कपिल के अधीन था। नारद ने उसे अपने इष्ट की पूर्ति मे उपयुक्त पात्र समझा और वहाँ उतर पडे ।

पद्म ने नारद का उचित आदर किया और अपना अन्त.पुर दिखाने ले गया। उसके अन्त पुर मे एक-से-एक सुन्दर स्त्रियाँ थी। रानियो का प्रदर्शन करने के वाद पद्म वोला—

—नारदजी ! आप तो अनेक स्थानो पर घूमते है। इससे सुन्दर अन्त.पुर आपने कही और देखा है ?

नारदजी खिल-खिलाकर हँस पडे। पद्मनाभ तो सोच रहा था कि वे उसकी प्रशसा करेगे किन्तु नारद की व्यगपूर्ण हँसी ने उसके अरमान मिट्टी मे मिला दिये। पूछने लगा—

—आप हँस क्यो पड़े ?

—तुम्हारी कूप-मंडूकता पर ।

—कैसे ?

—तुम जिस अन्त पुर को सुन्दरियो का समूह समझ रहे हो, उनमे सुन्दरता है ही कहाँ ? तुम क्या जानो सुन्दरता किसे कहते है ?

पद्मनाभ के गर्व को चोट लगी—

—इनसे अधिक सुन्दर स्त्री और कहाँ है, वताइये ।

—कितनी गिनाऊँ ? वहुत है। एक से एक सुन्दर !

—उनमे से सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी ही वता दीजिए ।

नारदजी कहने लगे—

—राजन् ! यो तो ससार मे एक-से-एक सुन्दर स्त्री है, परन्तु

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में हस्तिनापुर के पांडुराजा की पुत्रवधू सर्वश्रेष्ठ है। तुम्हारा सम्पूर्ण अन्त पुर उसके पैर के एक नाखून की भी समता नही कर सकता।

—ऐसी सुन्दर है ?—पद्मनाभ ने विस्मित होकर पूछा।

—हाँ ऐसी ही।—नारद ने प्रत्युत्तर दिया।

नारद के मुख से द्रौपदी की प्रशसा सुनकर पद्मनाभ की आँखो मे चमक आ गई। उसके हृदय मे काम जाग्रत हो गया। नारदजी ने देखा कि तीर निशाने पर लगा है तो उठकर खडे हो गए। पद्मनाभ ने उन्हे सत्कारपूर्वक विदा कर दिया।

देवर्षि नारद तो उसकी वासना भडका कर चले गए पर अव पद्मनाभ को चैन कहाँ ? वह कल्पना मे ही द्रौपदी की सुन्दरता के चित्र वनाने लगा। किन्तु कल्पना से काम नही चलता, फल प्राप्ति के लिए कर्म आवश्यक है। उसने अपने इष्टदेव का स्मरण किया। उसका इष्टदेव पातालवासी सागतिक देव था। आराधना से प्रसन्न होकर वह प्रकट हुआ और वोला—

—पद्मनाभ ! मुझे क्यो स्मरण किया ? तुम्हारा क्या काम करूँ ?

अजलि वाँध कर पद्मनाभ ने कहा—

—द्रौपदी को लाओ।

सागतिक देव ने अवधिज्ञान से उपयोग लगाकर देखा और पद्मनाभ से कहने लगा—

—राजन् ! द्रौपदी पाडवो के अतिरिक्त और किसी की इच्छा नही करती। उसे वुलाना व्यर्थ है।

—जव वह यहाँ आ जायेगी तो मैं उसे मना लूँगा। तुम उसे यहाँ ले आओ।

देव ने समझ लिया कि पद्मनाभ मानेगा नही। इसलिए वह 'जैसी तुम्हारी इच्छा' कहकर अन्तर्धान हो गया।

रात्रि को हस्तिनापुर के अन्त पुर मे सागतिक देव पहुँचा। उसने अवस्वापिनी विद्या से सवको गहरी नीद मे सुला दिया और द्रौपदी को

हरण करके अमरकंकापुरी मे राजा पद्मनाभ को सौंपकर अपने स्थान को चला गया। राजा पद्मनाभ द्रौपदी की सुन्दरता पर मुग्ध होकर उसके जागने की प्रतीक्षा करने लगा।

प्रात.काल द्रौपदी की निद्रा टूटी तो उसने स्वय को नए स्थान मे पाया। न यह उसका अन्त पुर था और न उसके पार्श्व मे सोये हुए युधिष्ठिर। महल भी उसका अपना नही था। वह विस्मित होकर चारो ओर देखने लगी। उसके मुख मे निकला—यह स्वप्न है, या इन्द्र-जाल अथवा देवमाया ?

—न यह स्वप्न है, न इन्द्रजाल और न देवमाया वरन् यथार्थ है, सुन्दरी !—राजा पद्मनाभ ने सम्मुख आकर उत्तर दिया।

द्रौपदी राजा पद्मनाभ को देखती रह गई। ऊपर से नीचे तक देखने के बाद उसने पूछा—

—भद्र ! आप कौन है ? मेरे लिए अपरिचित ?

—देवी ! परिचित होने मे कितनी देर लगती है ? वैसे मैं तो तुम्हे जानता ही हूँ। तुम द्रौपदी हो।

—हाँ मैं तो द्रौपदी ही हूँ किन्तु आप कौन है ?

—मैं, मैं पद्मनाभ हूँ !

—कौन पद्मनाथ ?

—अमरकंकापुरी का अधिपति !

द्रौपदी ने पुन पूछा—

—आप अपना पूरा परिचय दीजिए। मैं इस समय कहाँ हूँ ? यहाँ कैसे आगई ?

पद्मनाभ ने बताया—

—सुमुखि ! इस समय तुम धातकीखंड द्वीप के भरतक्षेत्र की अमर-कंकानगरी मे हो। तुम किसी बात की चिन्ता मत करो। मेरे साथ भोगो का आनद उठाओ।

—तो तुमने मेरा हरण कराया है !—द्रौपदी के मुख से सहसा निकल पडा।

—तुम ठीक समझी।

—मुझे वापिस भेज दो अन्यथा

—अन्यथा क्या होगा ?

—तुम्हारा नाश ! पद्मनाभ तुम केवल मेरे नाम से ही परिचित हो। यह नही जानते कि मैं वासुदेव श्रीकृष्ण की बहिन हूँ। वे तुम्हारा सत्यानाश कर देगे।

द्रौपदी के शब्दो को सुनकर खिलखिलाकर हँस पडा पद्मनाभ। कहने लगा—

—तुम भ्रम मे हो द्रौपदी ! वे वासुदेव होगे जम्बूद्वीप मे स्थित भरतार्द्ध के और यह धातकीखण्ड का भरतक्षेत्र है। नाम साम्य से तुम्हे भ्रम हो गया है। वे यहाँ मेरा कुछ न बिगाड सकेगे। तुम्हे मेरी इच्छा स्वीकार करनी ही होगी।

पद्मनाभ की बात पर द्रौपदी विचारमग्न हो गई। उसने समझ लिया कि इस समय तो मै इस व्यभिचारी के पजे मे फँस गई हूँ अत चतुराई से काम लेना पडेगा। उसने शान्त स्वर मे कहा—

—ठीक है, अब तुम्हारी इच्छा स्वीकार करने के अतिरिक्त और उपाय भी क्या है। मै तुम्हारी बात मानूँगी किन्तु एक शर्त है ...

—वह क्या ?

—मुझे कुछ समय चाहिए।

—क्यो ?

द्रौपदी ने मधुर स्वर मे समझाया—

—राजन् ! तुम इतना भी नही जानते। अपने पति को स्त्री एकाएक कैसे भूल सकती है ? ठीक है कि तुमने मेरा अपहरण करा लिया। मेरा शरीर तुम्हारे वश मे हो सकता है किन्तु मन को वश मे करने के लिए कुछ समय तो चाहिए ही।

पद्मनाभ द्रौपदी के मधुर शब्दो से आश्वस्त सा हुआ। उसे लगा कि द्रौपदी का कथन यथार्थ है। ठीक ही तो कहती है कोई नारी अपने पति को, उसके साथ किये सुख-विलासो को अचानक ही कैसे भूल सकती है। हृदय कोई पट्टी तो है नही कि लिखा और मिटा दिया। इस प्रकार विचार करके बोला—

—कितना समय चाहिए, तुम्हे ?

—एक मास[1] का ! यदि एक मास के अन्दर मेरे स्वजन मुझे यहाँ से ले जायेंगे तो ठीक अन्यथा ·

मुस्कराकर पद्मनाभ ने कहा—

—तुम्हरी अवधि मुझे स्वीकार है। पर कितनी भोली हो तुम ? अव भी तुम्हे अपने स्वजनो के आने की आशा शेप है।

पद्मनाभ तो द्रौपदी की इच्छा स्वीकार करके चल गया और द्रौपदी ने अभिग्रह ले लिया—'पति विना मैं एक मास तक भोजन नही करूँगी।'[2]

और वह अपनी आत्मा को इस तप से भावित करके रहने लगी।

—त्रिषष्टि० ८।१०

●

१ (क) हरिवश पुराण मे भी एक ही मास की अवधि का उल्लेख —

मासस्याभ्यन्तरे भूप यदीह स्वजना मम।
नागच्छन्ति तदा त्व मे कुरुष्व यदभीप्सितम् ॥

(हरिवशपुराण ५४।३६)

(ख) किंतु ज्ञाताधर्मकथा मे छह माह की अवधि का उल्लेख है :—

"तए ण सा दोवईदेवी पउमणाभ एव वयासी, एव खलु देवाणुप्पिया ! जबुद्दीवेदीवे भारहेवासे वारवइये नयरीए कण्हेणाम वासुदेवे ममप्पिय माउए परिवसइ, त जइ ण से छण्ह मासाण मम कूव नो हव्वमागच्छइ।" (ज्ञातासूत्र, अ० १६, सूत्र २०६)

२ ज्ञाताधर्म० मे पष्ठ-षष्ठ आयविल तप का वर्णन है—

"तए ण सा दोवईदेवी छट्ठ छट्ठेण अणिक्खित्तेण आयविल-परिग्गहिएण तवोकम्मेण अप्पाण भावेमाणी विहरइ।"

(ज्ञाताधर्मकथा, अ० ६, सूत्र २११)

धातकीखण्ड-गमन

प्रात काल युधिष्ठिर को पार्श्व में सोई हुई द्रौपदी न दिखाई दी तो वे चिंतित हुए। सारा महल छान डाला गया किन्तु द्रौपदी कही न मिली।

पाडवो ने द्रौपदी की बहुत खोज कराई परन्तु सब प्रयास व्यर्थ हुए। अन्त मे सब ओर से निराश होकर उन्होने अपनी माता कुन्ती को बुलाया और कहा—

—तुम श्रीकृष्ण के पास जाओ और उनसे द्रौपदी की खोज करने की विनती करो।

पुत्रो की इच्छा जानकर कुन्ती द्वारका नगरी पहुँची। वासुदेव श्रीकृष्ण ने अपनी बुआ के चरण-स्पर्श करके स्वागत किया और आने का कारण पूछा। कुन्ती ने बताया—

—पुत्र युधिष्ठिर द्रौपदी के साथ सुखपूर्वक सो रहा था। जागने पर वह दिखाई न दी। न जाने कौन उसका हरण कर ले गया ? हमने बहुत प्रयास किया किन्तु वह न मिली। वासुदेव ! अब तुम्ही उसकी खोज करो तो वह मिले अन्यथा मेरा अन्तर्मन कहता है कि उसका मिलना असभव है।

वासुदेव ने द्रौपदी का हरण सुना तो उनके माथे पर बल पड गए। बोले—'कौन ऐसा दुष्ट है जो अकारण ही काल का ग्रास बनना चाहता है।' कुन्ती को आश्वासन देते हुए कहा—'आप चिन्ता न कीजिए। मैं उसे अवश्य ही खोज निकालूँगा।' यह कह कर उन्होने कुन्ती को विदा कर दिया।

श्रीकृष्ण ने अपने अनुचर सभी दिशाओ मे भेज दिए किन्तु द्रौपदी का पता कही न लगा।

प्राणीमात्र की इच्छा होती है कि अपने किये कार्य का परिणाम देखे। कच्छुल नारद भी अपने कार्य का परिणाम देखने द्वारका की राज्य सभा मे जा पहुँचे। श्रीकृष्ण ने उनका यथोचित आदर किया और पूछा—

—नारदजी ! आप तो स्वच्छन्द विहारी है। सर्वत्र घूमते है। कही द्रौपदी भी नजर आई ?

—क्यो द्रौपदी को क्या हुआ ? —नारदजी ने आश्चर्य प्रगट किया।

—वह रात्रि को सोते हुए ही अदृश्य हो गई। न जाने कौन अपहरण कर ले गया ?

—ओह अव समझा। —नारदजी वोले—मैने धातकीखण्ड के भरतक्षेत्र की अमरकका नगरी के अन्त पुर मे द्रौपदी जैसी एक स्त्री देखी थी। मै तो समझा कोई अन्य होगी। सम्भवत वही द्रौपदी हो, पर इतनी दूर कैसे पहुँच गई ?

—सव आपकी माया है। —श्रीकृष्ण ने मन्द मुस्कान के साथ कहा।

—मेरी क्यो, भाग्य की गति वडी वलवान है। नारदजी तुनके।

—चलिए, यही सही ! अव यह भी वता दीजिये कि उस नगरी का राजा कौन है ?

—उस नगरी का राजा है, पद्मनाभ। —नारदजी ने वता दिया।

कुछ समय तक इधर-उधर की बाते करने के वाद नारदजी वहाँ से उड गये।

वासुदेव ने अनुचर द्वारा पाडवो को वुलवाया और उनसे वोले—

—राजा पद्मनाभ ने द्रौपदी का अपहरण कराया है। मैं वहाँ जाकर उसे वापिस ले आऊँगा। तुम खेद मत करो।

श्रीकृष्ण से आश्वासन पाकर पाडव सन्तुष्ट हुए। वासुदेव उनको साथ लेकर पूर्व दिशा के समुद्र की ओर चल दिए। समुद्र तट पर पहुँचते ही पाडवो के मुख उतर गए। वे श्रीकृष्ण से कहने लगे—

—वासुदेव ! यह समुद्र तो दुर्लंघ्य है। इसमे पर्वत जैसे विशाल जन्तु है। कैसे पार कर सकेंगे, इसे ?

—मेरे होते हुए तुम्हे क्या चिन्ता ? बस देखते जाओ। —वासुदेव ने मुस्करा कर कहा और तट पर बैठकर लवण समुद्र के अधिष्ठायक सुस्थित देव की आराधना की।

उनकी आराधना से प्रसन्न होकर सुस्थित देव प्रगट हुआ और पूछने लगा—

—तुम्हारा क्या काम करूँ ?

—अमरकका नगरी के राजा पद्मनाभ ने द्रौपदी का हरण कर लिया है। उसी को वापिस लाने के लिये तुम्हारी आराधना की है। —श्रीकृष्ण ने अपना अभिप्राय बताया।

देव बोला—

—हे कृष्ण ! तुम कहो तो जिस प्रकार पद्मनाभ ने पातालवासी सागतिक देव के द्वारा द्रौपदी का अपहरण कराया है वैसे ही मै भी उसे उठा लाऊँ।

—नही देव ! इस प्रकार का कर्म चौर-कर्म कहलाता है। यह न तुम्हारे लिये शोभनीय है, न मेरे लिये।

—तो, पद्मनाभ को उसके पुर, बल, वाहन आदि सहित समुद्र मे डुबो दूँ।

—नही, इस उपाय मे व्यर्थ की हिंसा होगी।

—तो फिर क्या करूँ ?

—तुम सिर्फ इतनी ही सहायता कर दो कि पाडवो सहित हमारे छहो रथ निर्विघ्न अमरकका नगरी तक पहुँच जायँ।

सुस्थित देव ने श्रीकृष्ण की इच्छा स्वीकार की और पाँचो पाँडवो तथा वासुदेव कृष्ण के रथ अमरकका नगरी जा पहुँचे।

नगर के बाहरी उद्यान मे रुककर श्रीकृष्ण ने अपने सारथि दारुक को समझाकर राजा पद्मनाभ की सभा मे भेजा।

बलवान स्वामी का दूत भी निर्द्वन्द्व और निर्भय होता है। दारुक

भी निर्भय पद्मनाभ की सभा मे पहुँचा और योग्य अभिवादन करके बोला—

—राजन् ! यह तो मेरी व्यक्तिगत विनय प्रतिपत्ति है। अब मेरे स्वामी का सन्देश सुनिये ।

यह कहकर दारुक ने भ्रकुटि चढाई, क्रोध से नेत्र लाल किये और उछल कर पद्मनाभ के सिहासन मे ठोकर मारी । इतने कार्य करने के पश्चात् उच्च स्वर से गर्जता हुआ कहने लगा—

—हे मृत्यु की इच्छा करने वाले, दुष्ट और व्यभिचारी ! श्री, ह्री और वुद्धि से रहित पद्मनाभ ! आज तू जीवित नही बच सकता। तूने श्रीकृष्ण की बहन द्रौपदी का अपहरण किया है। यदि तू अपने प्राण बचाना ही चाहता है तो द्रौपदी को तुरन्त सम्मान सहित लौटा दे ।

पहले तो दूत के इस अचानक परिवर्तित रूप को देख कर सम्पूर्ण सभा स्तभित रह गई किन्तु इस उद्धत व्यवहार से राजा पद्मनाभ कुपित हो गया। बोला—

—मैं द्रौपदी को नही दूँगा ।

—तो स्वय को काल के मुख मे प्रवेश हुआ ही समझो ।

—कौन पहुँचायेगा मुझे यमलोक ?

—स्वय वासुदेव श्रीकृष्ण पाँचो पाडवो के साथ यहाँ आ गए है । वह तुम्हे यमलोक पहुँचाएँगे ।

—अच्छा हुआ, वे स्वय यहाँ आ गए। अब देखना है कौन किसको यमलोक पहुँचाता है ? जाकर कह दो मै स्वय युद्ध के लिए तैयार होकर आ रहा हूँ। —पद्मनाभ ने रक्त नेत्रो से कहा।

दूत को उसने पिछले द्वार से निकाल दिया।[1]

दारुक ने समस्त घटनाएँ श्रीकृष्ण से निवेदन कर दी ।

× × × ×

---

१. 'पिछले द्वार से निकालना' शब्द का अर्थ है बिना आदर सत्कार के अपमानित करके निकाल देना ।

राजा पद्मनाभ अपनी सेना लेकर युद्ध हेतु नगर से बाहर निकला। उसे आया देखकर श्रीकृष्ण ने पाडवो से पूछा—

—तुम लोग युद्ध करोगे या मैं करू ?

—आप देखिए, हम लोग ही युद्ध करेगे। पाडवो ने उत्तर दिया और 'आज हम हैं या पद्मराजा है' यह प्रतिज्ञा कर पाँचो भाई युद्ध में कूद पडे।

युद्ध मे उतर तो पडे पाँचो भाई किन्तु पद्मनाभ का सामना न कर सके। उसके तीक्ष्ण बाणो से विह्वल हो गए। राजा पद्मनाभ ने अपने तीव्र शस्त्रो से उनका गर्व नष्ट कर दिया। उनके ध्वजादि चिन्ह कट कर नीचे गिर पडे। उनका पराभव हो गया।

पाँचो भाई युद्ध से परागमुख होकर श्रीकृष्ण के पास लज्जा से नीचा मुख लिए लौट आये और बोले—

—यह पद्मनाभ राजा महापराक्रमी और दुर्धर्ष है। हम इस पर विजय नही प्राप्त कर सकते। अब आप ही कुछ कीजिए।

मन्द मुस्कान के साथ वासुदेव कृष्ण बोले—

—पाडवो ! तुम्हारे हृदय मे आत्मविश्वास की कमी थी। जाते समय तुमने प्रतिज्ञा की थी कि 'आज हम है, या पद्मराजा है'। इसमे तुमने पद्मनाभ को अपने समान ही बली मान लिया। और फिर तुम पाँच भाई थे, वह अकेला। तुम्हारी शक्ति पाँच भागो मे विभाजित हो गई तो तुम कैसे जीत सकते थे ?

—तो हमको क्या प्रतिज्ञा करनी चाहिए थी। —पाँचो ने उत्सुक होकर पूछा।

—तुम्हे दृढ विश्वास के साथ प्रतिज्ञा करनी चाहिए थी 'हम ही है पद्मनाभ नही।' पाडवो ! दृढ आत्मविश्वास ही सफलता की कुजी है।

पाडवो ने सफलता के इस मन्त्र को हृदयगम किया।

वासुदेव बोले—

—'मैं ही हूँ, पद्मनाभ नही' यह प्रतिज्ञा करके मैं युद्ध प्रारम्भ करता हूँ। मेरी विजय निश्चित है। तुम लोग दूर खडे रहकर देखो।

यह कहकर वासुदेव ने अपना रथ बढाया और पद्मनाभ की सेना

के बीचोबीच जा पहुँचे। प्रथम ही उन्होने सम्पूर्ण शक्ति से पाचजन्य शख को फूँका। शख की कठोर-ध्वनि दशो दिशाओं मे गूँज गई। उस ध्वनि के कारण ही पद्मनाभ एक-तिहाई कटक हत हो गया।

अभी शख-ध्वनि शान्त भी नही हो पाई थी कि कृष्ण ने अपना शार्ङ्ग धनुष हाथ मे लेकर तीव्र धनुष्टकार किया और शत्रुराजा की दूसरी एक-तिहाई सेना भग हो गई।

पद्मनाभ भयभीत हो गया। 'जिस महायोद्धा की मात्र शखध्वनि और धनुष्टकार से दो-तिहाई सेना नष्ट हो गई उसका सामना कैसे कर सकूँगा'—यह सोचकर पद्मनाभ अपने बचे-खुचे एक-तिहाई दल को लेकर नगरी मे जा छिपा और द्वार बन्द करवा लिए।

राजा पद्मनाभ की इस कायरता से कृष्ण को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने उसका पीछा किया और अमरकका के द्वार तक जा पहुँचे। नगर-द्वार को बन्द देखकर वे रथ से उतर पडे। समुद्घात से उन्होने एक विशालकाय नरसिह का रूप बनाया और घोर गर्जना करके पृथ्वी पर पाद-प्रहार करने लगे। उनके चरणाघात से पृथ्वी कॉप गई और नगर की अट्टालिकाएँ तथा किले की दीवारे गिरने लगी। नगर-निवासी प्राणो की रक्षा के लिए इधर-उधर भागने लगे। सभी के मुख से 'त्राहिमाम्-त्राहिमाम्' निकल रहा था।

भयभीत राजा पद्मनाभ द्रौपदी के चरणो मे जा गिरा। बोला—

—क्षमा करो, देवि ! क्षमा करो। यमराज के समान भयकर श्रीकृष्ण से मेरी प्राण-रक्षा करो।

—क्यो ? क्या काम-पिपासा शात हो गई ?—द्रौपदी ने उलाहना दिया।

—इस समय व्यग मत करो। मेरे प्राण सकट मे है।

—अब तो मालूम हो गया कि मैं किस महायोद्धा की बहन हूँ। मेरे अपहरण का परिणाम क्या है ?

—परिणाम ! परिणाम तो मैं क्या सारा नगर ही भोग रहा है।

तब तक नगर-निवासियो की भयग्रस्त चीख-पुकार और 'रक्षा

करो-रक्षा करो' शब्द द्रौपदी के कानो पडे। वह द्रवित हो गई। बोली—

—अव तुम मुझे आगे करके, स्वय स्त्री का वेश धारण करो और श्रीकृष्ण के चरण पकड लो तो तुम्हारी रक्षा हो सकती है, अन्यथा नही।

राजा पद्मनाभ ने द्रौपदी के कहे अनुसार ही श्रीकृष्ण के चरण पकड लिए और विनीत शब्दो मे कहने लगा –

—हे महाभुज! मैं आपके अपार पराक्रम को देख चुका। मैं आपकी शरण हूँ। आप मुझे क्षमा करें। ऐसा दुष्कर्म अव कभी नही करूँगा।

कृष्ण का कोप विनीत वचनो से शात हो गया। वे वोले—

—यद्यपि तुम्हारा अपराध अक्षम्य है किन्तु फिर भी मैं तुम्हे क्षमा करता हूँ क्योकि शरणागत की रक्षा करना क्षत्रिय का धर्म है। अव तुम मेरी ओर से निर्भय हो जाओ।

यह कहकर वासुदेव ने पुन समुद्घात द्वारा अपना सहज सौम्य रूप वना लिया और द्रौपदी को रथ पर विठाकर पाडवो के पास आए। उन्होने स्वय अपने हाथ से द्रौपदी पाँचो पाडवो को सौप दी।

पाडव द्रौपदी को पाकर हर्षित हुए। रथारूढ होकर सभी लोग जिस मार्ग मे आये थे उसी मार्ग से वापिस चल दिए।

× × × ×

धातकीखण्ड के भरतक्षेत्र की चम्पानगरी के पूर्णभद्र उद्यान मे कपिल वासुदेव भगवान मुनिसुव्रत प्रभु के समवसरण मे वैठा उनका पावन प्रवचन सुन रहा था। श्रीकृष्ण द्वारा पूरित पाचजन्य शख की ध्वनि उसके कानो मे पडी। विस्मित होकर वह सोचने गा—'क्या यह मेरा जैसा ही शखनाद नही है? तो क्या इस क्षेत्र मे कोई दूसरा वासुदेव उत्पन्न हो गया?' उसने प्रभु से पूछा—

—नाथ! यह किस महावली की शखध्वनि थी?

—यह वासुदेव कृष्ण की शखध्वनि है।

—तो क्या इस क्षेत्र मे दूसरा वासुदेव उत्पन्न हो गया?

—एक क्षेत्र मे दो तीर्थंकर, दो चक्रवर्ती, दो बलदेव और दो वासुदेव एक समय मे नही होते ।

—तो फिर यह कृष्ण कहाँ के वासुदेव है ?

प्रभु ने अमरकका नगराधिपति द्वारा द्रौपदी के अपहरण की घटना बताते हुए कहा—कृष्ण जम्बूदीप के भरतक्षेत्र के वासुदेव है ।

अपने समान ही दूसरे वीर से भेंट करने की इच्छा कपिल वासुदेव के हृदय मे उत्पन्न हो गई, वह बोला—

—प्रभु ! मेरी हार्दिक इच्छा है कि मै इनका आतिथ्य करूँ ।

भगवान ने फरमाया—

—कपिल ! ऐसा न कभी भूतकाल मे हुआ है और न भविष्य मे हो सकेगा कि एक तीर्थंकर दूसरे तीर्थंकर को, चक्रवर्ती दूसरे चक्रवर्ती को, बलदेव-बलदेव को और वासुदेव दूसरे वासुदेव को देखे । तुम उसे देख भी नही सकोगे । तुम अधिक से अधिक उसकी श्वेत-पीत ध्वजा को देख सकोगे और शख-ध्वनि का मिलाप कर सकोगे ।

कपिल वासुदेव ने भगवान को नमन किया और रथारूढ होकर समुद्र तट पर आये । लवण समुद्र के बीच मे जाते हुए श्रीकृष्ण के रथ की श्वेत-पीत ध्वजा उन्हे दिखाई दी । हर्षित होकर उन्होने शख-नाद किया । शख-ध्वनि कृष्ण के कानो मे पडी । उन्होने भी शखनाद का उत्तर शंख पूरित करके दिया ।

समवेत शख-स्वर दशो दिशाओ में गूँज गया । अपने समान ही बली कृष्ण वासुदेव की शख-ध्वनि को सुनकर कपिल वासुदेव सतुष्ट हुए ।

तत्काल ही उन्हे पद्मनाभ के दुष्कृत्य का स्मरण हो आया । वे अमरकका नगरी जा पहुँचे और पद्मनाभ की बहुत भर्त्सना की । उसे राज्य-भ्रष्ट कर दिया और उसके पुत्र को वहाँ का शासक बना दिया ।

पद्मनाभ को अपनी करनी का उचित फल मिला ।

× × × ×

पाडवो सहित श्रीकृष्ण का रथ जव लवण समुद्र मे वहने वाली महानदी गगा की धारा के समीप पहुँचे तो उन्होने कहा—

—पाडवो ! तुम लोग गगा नदी को पार करो तब तक मै लवण समुद्र के अधिपति सुस्थित देव से मिलकर आता हूँ ।

कृष्ण की आज्ञा मानकर पाडव तो गगा की धारा के पास पहुँचे और श्रीकृष्ण सुस्थित देव के पास जा पहुँचे ।

पाँचो पाडवो ने एक छोटी सी नौका की खोज की और उसमे वैठकर गगा नदी को पार किया । तट पर उतरने के वाद वे परस्पर विचार करने लगे—'नाव को यहाँ छिपा दिया जाय, देखे वे गगा को भुजाओ से पार कर सकते है, या नही ।' पाँचो भाइयो की इस वात पर सहमति हो गई । उन्होने नाव को छिपा दिया ।

जब मनुष्य के दुर्दिन आते है तो वह ऐसे ही अकरणीय कार्य किया करता है ।

श्रीकृष्ण जव सुस्थित देव से मिलकर महानदी गगा की धारा के समीप पहुँचे तो उन्हे कही नाव नही दिखाई दी । एक क्षण को उनके मानस मे विचार आया—'साढे वासठ योजन लम्वी महानदी गगा की विशाल धारा मे विपरीत दिशा मे तैर कर कैसे पार कर सकूँगा ? साथ मे रथ भी है ।' किन्तु दृढ निश्चय के धनी और प्रवल आत्म-विश्वासी श्रीकृष्ण ने यह विचार दूसरे क्षण ही उखाड फेका । उन्होने एक हाथ से रथ थामा और दूसरे हाथ की सहायता से तैरने लगे ।

आधी दूरी पार होते-होते श्रीकृष्ण के शरीर पर थकान के लक्षण दिखाई देने लगे । तभी गगा की अधिष्ठात्री देवी ने जल का स्थल वना दिया । उन्होने एक मुहूर्त वहाँ विश्राम किया और फिर गगा मे तैरने लगे । तैरते-तैरते उनके हृदय मे विचार आया—'पाडव वड़े वलवान है, जो महानदी गगा को भुजाओ से पार कर गए ।'

तव तक किनारा आ गया । श्रीकृष्ण ने तट पर खड़े पाडवो को देखा । जल से निकल कर भूमि पर आ खडे हुए और वोले—

—पाडवो ! तुम वडे वलवान हो, क्योकि तुमने महानदी गगा

को भुजाओ से तैर कर पार कर लिया। जान पडता है तुमने जान-बूझकर राजा पद्मनाभ को परास्त नही किया ।

—हमने तो गगा महानदी नौका मे बैठकर पार की।—पाडवो ने ने बतलाया।

—फिर वह वापिस क्यो नही छोडी ?

—आपके बल की परीक्षा करना चाहते थे, इसलिए। —कहते-कहते पाडवो के मुख पर मुस्कान खेल गई।

श्रीकृष्ण ने इस मुस्कान को व्यग समझा और वे भडक कर बोले—

—मेरे बल की परीक्षा ! जब मैंने दो लाख योजन लवण समुद्र को पार किया, पद्मनाभ को मर्दित किया, अमरकका नगरी को पाद-प्रहार से ध्वस्त कर दिया और द्रौपदी को लाकर तुम्हे सौप दिया—तब भी तुम्हे मेरा बल नही दिखा। अब देखो मेरा बल !!

यह कहकर वासुदेव ने लोह दण्ड से उनके रथो को चूर-चूर कर दिया। उसी समय उनके निर्वासन की आज्ञा देते हुए बोले—

—यह है मेरा माहात्म्य !

वासुदेव की वक्र भ्रू-भगिमा को देखकर पाडव सहम गए। उनके मुख से एक शब्द भी न निकल सका। वे क्षमायाचना भी न कर पाए।

उस स्थान पर रथमर्दन नाम का नगर बस गया।

श्रीकृष्ण वहाँ से चले गए और अपनी सेना के साथ द्वारका जा पहुँचे।

पाडव भी निराशमुख हस्तिनापुर पहुँचे। उन्होंने मुरझाए चेहरो से अपने निर्वासन की आज्ञा माता कुन्ती को बतला दी।

—तुमने वासुदेव श्रीकृष्ण का अप्रिय करके बहुत बुरा किया। यह कह कर कुन्ती ने पुत्रो की भर्त्सना की। पाडवो ने दुःखी स्वर मे क्षमायाचना सी करते हुए माता से कहा—

—माँ ! हम से भूल तो हो ही गई। अब तुम्हीं द्वारका नगरी जाओ और वासुदेव से पूछो कि हम लोग कहाँ रहे ?

कुन्ती गजारूढ होकर कृष्ण के पास द्वारका नगरी पहुँची। श्रीकृष्ण ने उसका पहले के समान ही आदर किया और आने का कारण पूछा। कुन्ती ने पुत्रो की ओर से क्षमा माँगते हुए कहा—देवानुप्रिय! तुमने पाँचो पाडवो को निर्वासन की आज्ञा दी है। समस्त दक्षिण भरतार्द्ध के स्वामी भी तुम्ही हो। अब बताओ कि वे किस दिशा-विदिशा को जाएँ?

कृष्ण ने अपनी सहज, मधुर वाणी मे उत्तर दिया—

—वासुदेव, वलदेव, चक्रवर्ती आदि महापुरुषो के वचन अमोघ होते हैं। अत पाचो पाडव दक्षिण दिशा के वेलातट (समुद्र किनारा) पर जाये और नई नगरी पाडुमथुरा बसा कर वहाँ मेरे प्रच्छन्न सेवक के रूप मे रहे।

वासुदेव की इस आज्ञा को सुनकर कुन्ती वहाँ से चली आई और यह आदेश पुत्रो को कह सुनाया।

इस आदेश के अनुसार पाँचो पाडव हस्तिनापुर से चल दिए और दक्षिण दिशा के वेलातट पर पहुँच कर वहाँ नई नगरी पाण्डुमथुरा बसाकर सुखपूर्वक रहने लगे।

हस्तिनापुर के राज्य पर श्रीकृष्ण ने अपनी बहन सुभद्रा के पौत्र और अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित का अभिषेक कर दिया।

—त्रिषष्टि० ८/१०

—ज्ञाताधर्म० अ० १६

दो मुनियो को अपने द्वार पर देखकर देवकी फूली नही समाई। सिह केशरिया मोदको से भक्तिपूर्वक उन्हे प्रतिलाभित किया। मुनि चले गए। देवकी बैठ भी नही पाई कि दो मुनि पुन पारणे हेतु आए। देवकी ने देखा बिल्कुल वैसे ही मुनि है। चित्त मे सशय तो हुआ परन्तु बोली कुछ नही। उन्हे भी भक्तिपूर्वक सिह केशरिया मोदको से प्रतिलाभित किया और आसन पर बैठकर सोचने लगी। उसे यह विचित्र ही लग रहा था कि जैन श्रमण एक दिन में दो बार एक ही घर मे भिक्षा हेतु आएँ। वह इन विचारो मे निमग्न ही थी कि पुनः दो मुनि बिल्कुल वैसे ही द्वार पर दिखाई दिए। देवकी ने उन्हे सिह केशरिया मोदको से प्रतिलाभित करके पूछ ही लिया—

—मुने! आप दिग्भ्रमित होकर बार-बार यहाँ आ जाते है; अथवा १२ योजन लम्बी और ९ योजन चौडी समृद्धिशाली द्वारका मे अन्यत्र शुद्ध भोजन नही मिलता?

कहने को कह तो गई देवकी किन्तु उसे अपने शब्दो पर पश्चात्ताप होने लगा। उसके हृदय मे विचार आया कि श्रमणो के प्रति ऐसी शका अनुचित है।

मुनियो ने शात-सहज स्वर मे कहा—

—हम छह भाई है, बिल्कुल एक से। देखने वाले भ्रम मे पड जाते है। आज हम दो-दो के सघाडे मे छट्ठ तप के पारणे हेतु निकले थे। सभवत हम से पहले वे लोग आए हो।

देवकी की शका का समाधान हो गया। किन्तु एक शका मिटी तो दूसरी ने आ घेरा। उसे अतिमुक्तक मुनि की भविष्यवाणी की स्मृति हो

आई—'देवकी तेरे आठ पुत्र होगे और सभी जीवित रहेगे।' छह पुत्रो पर तो कस की कृपा हो गई। सातवाँ पुत्र कृष्ण जीवित है। किन्तु इन छहो मुनियो पर मेरा वात्सल्य क्यो उमड़ रहा है ? इनसे मेरा क्या सम्बन्ध है ? " 'आदि प्रश्न उसके मानस मे चक्कर काटने लगे। इन प्रश्नो का उत्तर कौन दे ? अचानक ध्यान आया—जब अर्हंत अरिष्टनेमि ही नगर के बाहर विराजमान है तो उन्ही से क्यो न पूछूँ ?

यह विचार आते ही देवकी अरिष्टनेमि के समवसरण मे जा पहुँची। नमन-वन्दन करके एक ओर बैठी। उसके मानस मे प्रश्न चल ही रहे थे। अपनी शकाओ का समाधान करना ही चाहती थी कि अन्तर्यामी भगवान ने कहा—

—तुम्हारे हृदय मे मुनियो के प्रति विविध प्रकार के भाव उठ रहे हैं ?

—हाँ, प्रभु ! और मैं यही पूछने आई हूँ कि मुनि अतिमुक्तक की भविष्यवाणी मिथ्या कैसे हो गई। —देवकी ने कहा।

प्रभु ने बताया—

—नही, मुनि के वचन मिथ्या नही हुए। अब तक तुम्हारे सात पुत्र जीवित हैं।

भगवान के वचन सुनकर देवकी उनकी ओर देखती ही रही। तब उन्होंने रहस्य उद्घाटित करते हुए कहा—

भद्दिलपुर मे नाग गाथापति रहता है, उसकी स्त्री का नाम सुलसा[1] है। सुलसा की बाल्यावस्था मे ही किसी निमित्तज्ञ ने बताया कि 'यह कन्या मृत-पुत्रो को जन्म देने वाली होगी।' सुलसा हरिण-गमेषी देव की पूजा-अर्चना करने लगी। उसकी भक्ति से देव प्रसन्न हुआ। अत वह सुलसा और तुमको एक ही समय मे ऋतुमती करने लगा। जब तुम जीवित पुत्रो को जन्म देती तो उसी समय सुलसा

---

१ हरिवश पुराण मे पिता का नाम सुदृष्टि और माता का नाम अलका बताया गया है। (देखिए—हरिवश पुराण ५६।११५)
यही नाम उत्तरपुराण मे भी दिए गए है। (७१-२९५)

मृत-पुत्रों को। देव मृत-पुत्र तुम्हारे पास रख आता और तुम्हारे जीवित पुत्र सुलसा को दे देता। हे देवकी! जिन मुनियों को तुमने आज भोजन से प्रतिलाभित किया वे तुम्हारे ही पुत्र हैं।

देवकी का संशय मिट गया। उसने अपने छहों पुत्रों—मुनि अनीकयशा, अनन्तसेन, अजितसेन, निहितशत्रु, देवयशा और शूरसेन की वन्दना की। उसका मातृ-हृदय उमड आया। कहने लगी—

—पुत्रो! तुमने जिनदीक्षा ली यह तो बहुत अच्छा किया। मैं बहुत प्रसन्न हूँ किन्तु मेरा मातृत्व निष्फल गया। सात पुत्र जने किन्तु एक को भी गोदी में लेकर खिलाया नहीं—जी भरकर प्यार नहीं किया।

प्रभु ने कहा—

—देवकी! खेद क्यों करती हो? पूर्वजन्म में किये कर्मों का फल तो भोगना ही पडता है।

—ऐसा क्या पाप किया था, मैंने?

—तुमने अपनी सपत्नी के सात रत्न चुरा लिए थे। जब वह बहुत रोई तो एक वापिस किया। इसलिए तुम्हारे भी छह रत्न तुमसे बिछुड गये। सिर्फ एक ही तुम्हारे सामने है।

देवकी अपने कर्मों की निन्दा करते हुए प्रभु को नमन करके घर चली आई। कृष्ण ने माता को उदास देखा तो पूछा—

—माता! उदास क्यों हो?

—पुत्र! मेरा तो जीवन ही व्यर्थ गया।

—क्या हुआ?

—वत्स! उस स्त्री का भी कोई जीवन है जो अपने पुत्र को अंक में लेकर प्यार न कर सके? पुत्र की बाल-लीलाओं से जिसका आँगन न गूंजा, उस माँ का घर श्मशानवत् ही है।

कृष्ण ने माता के हृदय की पीडा समझी। पूछा—

—आपकी यह इच्छा कैसे पूरी हो सकती है?

माता ने बताया—

—मुनि अतिमुक्तक ने भविष्यवाणी की थी कि 'मेरे आठ पुत्र होगे' अभी तक सात हुए है।

वासुदेव सब कुछ समझ गये। बोले—

—आपका मनोरथ अवश्य पूरा होगा।

यह कहकर उन्होने सौधर्म इन्द्र के सेनापति नैगमेपी देव की आराधना की। देव ने प्रकट होकर कहा—

—तुम्हारी माता के आठवाँ पुत्र होगा किन्तु युवावस्था मे ही दीक्षित हो जायगा।

कुछ समय बाद ही देवकी के उदर मे स्वर्ग से च्यवकर कोई महर्द्धिक देव अवतरित हुआ। गर्भकाल पूरा होते ही उसने पुत्र उत्पन्न किया और प्रेम से लालन-पालन करने लगी। देवकी की इच्छा पूर्ण हो गई। उसने जी भर कर पुत्र को खिलाया और नाम रखा गजसुकुमाल।

गजसुकुमाल युवा हुआ तो पिता वसुदेव ने उसका विवाह द्रुम राजा की पुत्री प्रभावती से कर दिया।

एक दिन श्रीकृष्ण को उसी नगर के सोमशर्मा ब्राह्मण की कन्या दिखाई पड गई। उन्होने उसे गजसुकुमाल के लिये पसन्द कर लिया। यद्यपि कुमार की इच्छा तो नही थी किन्तु अग्रज और माता के आग्रह के समक्ष झुकना पडा। सोमा का विवाह भी उसके साथ हो गया।

उसी समय भगवान अरिष्टनेमि द्वारिका पधारे। गजसुकुमाल भी वदन हेतु गया। देशना सुनकर वह प्रव्रजित हो गया। माता और भाई का आग्रह भी उसे न रोक सका। प्रभु से आज्ञा लेकर उसी दिन सध्या समय श्मशान मे जाकर मुनि गजसुकुमाल कायोत्सर्ग मे लीन हो गए।

सोमिल ब्राह्मण भी वन से समिध, दर्भ, कुश आदि लेकर लौट रहा था। उसने गजसुकुमाल को ध्यानावस्थित देखा तो उसका माथा

ठनका। सोचने लगा—यह तो मेरी पुत्री के जीवन के साथ खिलवाड है। यदि प्रव्रजित ही होना था तो मेरी पुत्री का जीवन क्यो वरवाद किया। उसे क्रोध आ गया। वदला लेने की ठानी। उसने चारो ओर देखा कोई नही था। विवेकान्ध होकर उसने पास की तलैया मे से गीली मिट्टी लेकर उनके सिर पर पाल बाँधी। उसमे जलती चिता से उठाकर अगारे भर दिये और चला आया।

मुनि गजसुकुमाल का नवमु डित सिर जलने लगा। असह्य वेदना हुई। किन्तु उन्होंने इसे समताभाव से सहन किया और शरीर त्याग कर अशरीरी बने, मुक्त हो गए।

दूसरे दिन प्रात श्रीकृष्ण परिवार सहित भगवान अरिष्टनेमि की वदना हेतु पहुँचे किन्तु वहाँ मुनि गजसुकुमाल को न देखकर पूछा—

—प्रभो ! मुनि गजसुकुमाल नही दिखाई दे रहे है ?

भगवान ने वताया—

—वह तो रात्रि को ही कृतकृत्य हो गया।

चकित होकर कृष्ण ने पूछा—

—एक ही दिन मे लक्ष्य प्राप्ति ? ऐसी अद्‌भुत साधना ?

—हाँ, आत्मा मे अनन्तशक्ति है, इसमे आश्चर्य ही क्या ? फिर उसे एक सहायक भी मिल गया।

कृष्ण समझ गये कि किसी विद्वेषी ने घोर उपसर्ग किया होगा जिसको समतापूर्वक सहकर मुनि गजसुकुमाल ने मुक्ति पाई। उनकी आँखे लाल हो गई। किन्तु विनम्रतापूर्वक पूछा—

—यह अनार्य कर्म किसने किया ? कहाँ रहता है वह ?

—रहता तो इसी नगरी मे है किन्तु तुम उससे द्वेष मत करो। वह तो मुनि को मुक्ति-प्राप्ति मे निमित्त ही हुआ। जिस प्रकार तुम उस वृद्ध के लिए सहायी हुए। —भगवान ने कहा।

वास्तव मे वासुदेव ने नगरी से वाहर निकलते समय एक वृद्ध की सहायता की थी। वह वृद्ध पुरुष अति जर्जरित था। वाहर पडे हुए ईटो के ढेर मे से एक-एक ईट ले जाकर अन्दर रखता था। श्रीकृष्ण

को दया आ गई। वे स्वय हाथी से उतरे और उन ईटो को पहुँचाने लगे। उन्हे ईट उठाते देखकर सेवकगण भी इस कार्य मे जुट पड़े और वृद्ध पुरुष की ईटे पलक झपकते ही अन्दर पहुँच गई। श्रीकृष्ण को इस घटना की स्मृति हो आई किन्तु फिर भी उनके हृदय मे उस व्यक्ति को देखने जानने की लालसा रही, यद्यपि उनका क्रोध शान्त हो चुका था। उन्होने पूछा—

—भगवन्! मैं उस व्यक्ति को देखना चाहता हूँ।

—जव तुम यहाँ से वापिस जाओगे तो वह पुरुष नगर प्रवेश के समय मिलेगा और तुम्हे देखते ही मर जायगा। —भगवान ने वता दिया।

इधर सोमिल को जव ज्ञात हुआ कि वासुदेव अरिष्टनेमि के पास गए है तो उसने समझ लिया कि मेरा कुकृत्य अव छिप नही सकेगा। प्राण वचाने हेतु वह अरण्य की ओर जाने लगा। तभी वासुदेव ने नगर मे प्रवेश किया। भयभीत होकर वह उनके हाथी के सामने जा गिरा और उसके प्राण पखेरू उड गये।

वासुदेव समझ गए कि यह वही दुष्ट है जिसने मुनि गजसुकुमाल पर उपसर्ग किया था। उन्होने उसके शव को वन मे फिकवा दिया।

गजसुकुमाल के शोक से व्यथित होकर अनेक यादवो ने सयम स्वीकार कर लिया। वसुदेव के अतिरिक्त नौ दशार्ह भी दीक्षित हो गए। प्रभु की माता शिवादेवी, नेमिनाथ के सात सहोदर, कृष्ण के अनेक कुमार प्रव्रजित हुए। कस की पुत्री एकनाशा के साथ अनेक यादव कन्याएँ, देवकी, रोहिणी और कनकवती के अतिरिक्त वसुदेव की समस्त स्त्रियाँ साध्वी हो गई। कनकवती ने घर मे रहकर भी ससार की स्थिति का चितवन करते हुए घाती कर्मो का नाश किया और केवल-ज्ञान प्राप्त किया। देवो ने जव उसका कैवल्योत्सव मनाया तव लोग चकित रह गए। कनकवती उसके पश्चात् साध्वीवेश धारण करके नेमिप्रभु के समवसरण मे गई और एक मास का अनशन करके मोक्ष प्राप्त किया।

सागरचन्द्र[1] ने भी अणुव्रत ग्रहण करके प्रतिमा[2] धारण कर ली। एक वार वह श्मशान भूमि मे कायोत्सर्ग मे लीन था। उसी समय उसका विरोधी नभ सेन उधर आ निकला। वह वोला—

—अरे पाखडी ! कमलामेला के अपहरण[3] का फल अव भोग।

यह कहकर उसने चिता मे से अगारे लेकर एक ठीकडे मे भरे और उसके सिर पर रख दिए।

तीव्र वेदना मे भी यथाशक्ति सागरचन्द्र ने समताभाव रखा और पचपरमेष्ठी का जाप करते हुए प्राण त्यागे। वह मरकर देवलोक मे गया।

—त्रिषष्टि० ८।१०

—उत्तरपुराण ७१।२००–३००

—अन्तकृत, वर्ग ३, अध्ययन ८

१ सागरचन्द्र वलराम का पौत्र और निषध का पुत्र था।

२ श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओ का पालन करना।

३ सागरचन्द्र और नभ प्रभ के शत्रुभाव के कारण और कमलामेला के अपहरण के लिए पीछे पढिए इसी पुस्तक मे।

विशेष—यहाँ उत्तरपुराण मे देवकी और उसके पुत्रो के पूर्वभवो का विस्तार पूर्वक वर्णन है। सक्षिप्त कथानक इस प्रकार है—

देवकी ने भगवान अरिष्टनेमि के गणधर वरदत्त से पूछा—भगवन् ! आज मेरे घर दो-दो करके छह मुनि पारणेहेतु आए। उन्हे देखकर मेरे मन मे वात्सल्य भाव क्यो जाग्रत हुआ ?

वरदत्त गणधर देवकी को उसके पूर्वभव वताने लगे—

इसी जवूद्वीप के भरतक्षेत्र के मथुरा नगर मे शौर्य देश का स्वामी सूरसेन नाम का राजा रहता था। उसी नगर मे भानुदत्त नाम के सेठ के उसकी स्त्री यमुनादत्ता से सुभानु, भानुकीर्ति, भानुषेण, भानुसूर, सूरदेव, सूरदत्त और सूरसेन सात पुत्र हुए। किसी दिन अभयनदी आचार्य के पास

राजा ने नक्षम ले लिया। यह देखकर भानुदत्त और यमुनादेत्ता भी प्रव्रजित हो गए। माता-पिता के दीक्षित हो जाने पर सातो भाइयो ने व्यसनो मे फँस कर पिता का सारा धन नष्ट कर डाला। राजा ने उन कुकर्मियो को नगर से बाहर निकाल दिया। सातो भाई उज्जयिनी पहुँचे। वहाँ सबसे छोटे भाई सूरसेन को तो उन्होने श्मशान मे छोडा और बाकी छहो नगर मे चोरी करने चले गए।

श्मशान मे एक विचित्र घटना हुई। उस नगर मे राजा वृषभध्वज राज्य करता था। उसके दृढप्रहार्य नाम का एक सहस्त्रभट योद्धा था। उसकी वपुश्री नाम की स्त्री के वज्रमुष्टि नाम का पुत्र था। उसी नगर के सेठ विमलचन्द्र की स्त्री विमला से उत्पन्न पुत्री मगी के साथ वज्रमुष्टि का विवाह हुआ था। वसतऋतु मे वसतक्रीडा हेतु मगी भी अपनी सासू वपुश्री के साथ गई। वपुश्री से घडे मे पुष्पहार के साथ काला सर्प भी रख दिया था। ज्योही मगी ने घडे मे हाथ डाला त्योही उसको सर्प ने डस लिया और वह विषप्रभाव से मूर्च्छित हो गई। वपुश्री उसे घास मे ढक कर चली आई। वज्रमुष्टि ने अपनी माँ से मगी के बारे मे पूछा तो उसने झूठमूठ की बाते बना दी। वज्रमुष्टि उसके शोक मे व्याकुल होकर नगी तलवार हाथ मे लिए मगी को ढूँढने निकला। उसे श्मशान मे ही वरधर्म मुनि के दर्शन हुए। उसने उन्हे नमन करके प्रतिज्ञा की 'हे स्वामी यदि मुझे मेरी स्त्री मिल जाय तो-हजार दल वाले कमल से आपकी पूजा करूँ।' थोडी दूर जाने पर ही पलाल (घास) से ढकी उसे अपनी स्त्री दिखाई दे गई। उसने उसे लाकर मुनि के चरणो मे डाल दिया। मुनिश्री के प्रभाव मगी निर्विष हो गई। प्रसन्न होकर वज्रमुष्टि हजार दल वाले कमल की खोज मे चल दिया।

यह सब कौतुक श्मशान मे छिपा सूरसेन देख रहा था। उसने मगी की परीक्षा लेने के उद्देश्य से उसे रिझाया, मीठी-मीठी बाते बनाई और खुशामद की। मगी उस पर अनुरक्त होकर कहने लगी—'मुझे अपने साथ कही ले चलो।' तब तक वज्रमुष्टि आता दिखाई पड गया। सूर-सेन एक वृक्ष की ओट मे जा छिपा। वज्रमुष्टि ने नगी तलवार मगी

को दी और स्वय मुनि की पूजा करने लगा। उसी समय मगी ने तलवार का प्रहार अपने पति वज्रमुष्टि पर किया किन्तु सूरसेन ने उसे अपने हाथ पर रोक लिया। उसकी अगुंलियाँ कट गई। वज्रमुष्टि ने मगी से कहा—'प्रिये! डरो मत।' वह मगी की कुटिलता को न समझ पाया।

तब तक सूरसेन के छहो भाई चोरी करके लौट आए और उसे उसका भाग देने लगे। सूरसेन ने कहा—'मुझे धन नही चाहिए मैं तो सयम लेता हूँ।' भाइयो के आग्रह पर उसने अपने वैराग्य का कारण बता दिया। सभी भाइयो ने धन अपनी स्त्रियो को दिया और वरधर्म मुनि के पास प्रव्रजित हो गए। स्त्रियाँ भी विरक्त होकर आर्या जिनदत्ता के पास दीक्षित हो गई।

अन्यदा ये सातो ही मुनि उज्जयिनी नगरी मे आए तो वज्रमुष्टि उनके वैराग्य का कारण जानकर वरधर्म मुनि के पास प्रव्रजित हो गया। उन अर्जिकाओ से वैराग्य का कारण जान कर मगी भी साध्वी हो गई।

वे सातो भाई मरकर पहिले स्वर्ग मे देव हुए। वहाँ से च्यवकर धातकीखण्ड के पूर्व भरतक्षेत्र मे विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी के नित्यलोक नगर के राजा चित्रशूल और रानी मनोहारी के सुभानु का जीव चित्रागद नाम का पुत्र हुआ। बाकी छह भाई भी दो-दो करके तीन बार मे इन्ही राजा चित्रशूल के पुत्र हुए। उनके नाम गरुडध्वज, गरुडवाहन, मणिचूल, पुष्पचूल, गगानदन और गगनचर थे। इसी श्रेणी के मेघपुर नगर मे राजा धनजय राज्य करता था। उसकी पुत्री का नाम धनश्री था। उसी श्रेणी के नदपुर नगर के स्वामी हरिषेण का पुत्र था—हरिवाहन। धनश्री का स्वयवर अयोध्या नगरी (धातकी खड के पूर्व भरतक्षेत्र की) मे किया गया। अयोध्या के चक्रवर्ती नरेश पुष्पदत्त का पुत्र सुदत्त बडा पापी था। धनश्री ने हरिवाहन के गले मे वरमाला डाली किन्तु सुदत्त ने उसी समय हरिवाहन को मारकर धनश्री को छीन लिया। यह देखकर सातो भाई विरक्त हुए और भूतानन्द तीर्थंकर के चरणो मे प्रव्रजित हो गए। सातो ही सयमपूर्वक देहत्याग कर चौथे स्वर्ग मे सामानिक देव हुए।

स्वर्ग मे अपना आयुष्य पूर्ण करके सुभानु का जीव इसी भरतक्षेत्र कुरुजागल देश के हस्तिनापुर नगर मे सेठ श्वेतवाहन की स्त्री वधुमती का पुत्र शख हुआ, और वाकी के छहो भाई उसी नगर के राजा गगदेव की रानी नदयशा के गर्भ से दो-दो करके तीन वार मे छह पुत्र हुए। उनके नाम थे—गग, नददेव, खड्गमित्र, नंदकुमार, सुनद और नदिषेण। जब नदयशा के सातवाँ गर्भ रहा तो राजा उससे उदास रहने लगा। रानी ने समझा कि कोई कुपुत्र गर्भ मे आ गया है। अत. पुत्र उत्पन्न होते ही उसने रेवती नाम की धाय को सौंपकर कहा—इसे मेरी बहिन वधुमती को सौंप आओ। वधुमती ने उसका नाम निर्नामिक रखा और उसका पालन किया।

एक दिन ये सब लोग नदन वन गए। वहाँ राजा के छहो पुत्र एक साथ बैठ कर खा रहे थे। शख ने उनके साथ निर्नामिक को भी बिठा दिया। यह देखकर नदयशा को वहुत क्रोध आया। उसने निर्नामिक को एक लात मारी। इससे शख और निर्नामिक को बहुत दुख हुआ।

अन्यदा अवधिज्ञानी मुनि द्रुमसेन पधारे उनसे शख ने निर्नामिक और नदयशा का सम्बन्ध पूछा। तव मुनिश्री ने वताया—

सोरठ देश के गिरपुर नगर मे चित्ररथ नाम का राजा राज्य करता था। उसके यहाँ अमृत रसायन (सुधारसायन) नाम का रसोइया था। वह मास खिलाकर राजा को प्रसन्न किया करता था। इसलिए उसने उसे बारह गाँव दे दिए। किसी दिन राजा चित्ररथ ने सुधर्म मुनि से उपदेश सुनकर व्रत ग्रहण कर लिए। उसके पुत्र मेघरथ ने भी श्रावक के व्रत स्वीकार कर लिए। उसने रसोइये से ११ गाँव भी छीन लिए। दूसरे दिन वे ही मुनि आहार के निमित्त राजा के यहाँ पधारे। रसोइये ने गाँव छिनने के वैर के कारण कडवी तू वी का आहार दे दिया। मुनि गिरनार पर्वत पर जाकर समाधिस्थ हो गए और मरकर अपराजित विमान मे अहमिन्द्र हुए। रसोइया भी मरकर तीसरे नरक मे उत्पन्न हुआ। वहाँ से निकल कर वहुत समय तक उसने ससार-भ्रमण किया।

फिर इसी भरतक्षेत्र के मलय देश मे पलाशकूट गाँव के एक गृहस्थी यक्षदत्त की स्त्री यक्षदत्ता से यक्ष नाम का पुत्र हुआ। उनके दूसरा पुत्र यक्षिल हुआ। बडा भाई निर्दय था इसलिए लोग उसे निरनुकप कहते थे और छोटा भाई दयावान था इसलिए उसका नाम सानुकप पड गया। एक दिन निरनुकप वर्तनो से भरी बैलगाडी ला रहा था और मार्ग मे एक अन्धा सर्प बैठा था। सानुकप के बार-बार मना करने पर भी निरनुकप ने गाडी उस सर्प पर चला दी। सर्प मर कर श्वेतबिका नगरी के राजा वासव की रानी वसुधरा से यह नदयशा नाम की पुत्री हुई है। उसके बाद सानुकप के बहुत समझाने पर निरनुकप की कषाये कुछ शात हुई और मरकर यह निर्नामिक हुआ। पूर्वजन्म के वैर के कारण ही नदयशा इस पर क्रोध करती है।

मुनि द्रुमसेन का यह कथन सुनकर छहो राजपुत्र, शख और निर्नामिक सब विरक्त होकर दीक्षित हो गए। नदयशा और रेवती धाय ने भी सुव्रता आर्या के पास सयम ले लिया।

एक दिन नदयशा ने अपनी मूर्खता में यह निदान किया कि दूसरे जन्म मे भी मैं इन सातो पुत्रो की माता बनूं और रेवती ने यह निदान किया कि मैं इन छहो पुत्रो का पालन करूँ। आयु के अत मे सभी महाशुक्र विमान मे सामानिक देव हुए।

यह पूर्वजन्म का वृतान्त सुनाकर वरदत्त गणधर ने देवकी से कहा—

हे देवकी ! नदयशा का जीव तो तुम हुई और रेवती मलय देश के भद्दिलपुर नगर के सेठ सुदृष्टि की स्त्री अलका नाम की सेठानी हुई। तुम्हारे छहो युगल पुत्रो का इसने पालन किया।

शख का जीव बलभद्र हुआ है और निर्नामिक ने स्वयभू नाम के वासुदेव (नारायण) की समृद्धि देख कर निदान किया था। उसके फल-स्वरूप कृष्ण हुआ है।

देवदत्त, देवपाल, अनीकदत्त, अनीकपाल, शत्रुघ्न और जितशत्रु तुम्हारे ही पुत्र हैं। इसी कारण इन्हे देखकर तुम्हारे हृदय मे वात्सल्य भाव जाग्रत हुए थे।

नोट—इस प्रकार उत्तर पुराण के अनुसार देवकी के सात ही पुत्र थे। गज-सुकुमाल की उत्पत्ति का वहाँ कोई उल्लेख नही है।

११ चमत्कारी भेरी

एक बार इन्द्र ने अपनी सभा मे कहा—वासुदेव कृष्ण न किसी के अवगुण देखते है और न अधम (नीच) युद्ध ही करते हैं। वे गुण-ग्राहक और धर्मयुद्ध ही करने वाले है। यह प्रशसा एक देव को अच्छी न लगी। वह परीक्षा लेने के विचार से द्वारका आया और वन मे एक रोगिणी कुतिया का रूप बनाकर बैठ गया। उस कुतिया का सारा शरीर सडा हुआ था और उसमे से दुर्गन्ध आ रही थी।

उस समय कृष्ण रथ मे बैठकर स्वेच्छा विहार हेतु वन मे जा रहे थे। कुतिया को देखकर सारथी से बोले—

—देखो ! इसके दाँत कैसे मोती से चमक रहे है ? कितने सुन्दर हैं ?

यह कहकर कृष्ण आगे बढ गए। देव न कुतिया का रूप छोडा और एक तस्कर का रूप बनाकर उनका अश्व रत्न ले उडा। सेना ने पीछा किया तो उसने समस्त सेना को पराजित कर दिया। तब तक कृष्ण भी वहाँ पहुँच गए और ललकारते हुए बोले—

—अरे तस्कर ! मेरे अश्व को कहाँ लिए जा रहा है ? छोड इसे।

—युद्ध करके ले लीजिए।—तस्कर ने निर्भीक उत्तर दिया।

—मै रथारूढ हूँ और तू भूमि पर ! यह युद्ध कैसे हो सकता है ? तेरे पास कोई शस्त्र भी तो नही है ?

—मुझे न रथ की आवश्यकता है, न शस्त्रो की ! इनके बिना ही लड लूँगा।

—यह कैसे हो सकता है ?

—हो क्यो नही सकता ? हम दोनो वाहुयुद्ध करके जय-पराजय का निर्णय करले ।

—नही, यह नही हो सकता। मै अधम युद्ध[1] नही करता । तू घोड़े को ले जा ।—वासुदेव ने निर्णीत स्वर मे कहा ।

देव प्रसन्न हुआ । उसने अपना असली रूप प्रगट करके वरदान माँगने को कहा । वासुदेव ने कहा—

—यो तो मुझे किसी वस्तु की आवश्यकता नही हैं किन्तु इस समय द्वारका मे रोग वहुत फैल रहे है । इनको शात करनें का कोई उपाय वताओ ।

देव ने एक भेरी देकर कहा—

—कृष्ण ! इस भेरी को वजाते ही रोग शात हो जाएँगे और छह महीने तक कोई नई वीमारी नहीं होगी ।

भेरी पाकर कृष्ण ने उसे वजाया । रोग शात हो गए ।

हर छह महीने वाद वासुदेव भेरी वजा देते और प्रजा रोगमुक्त रहती । छह महीने के लिए भेरी उसके रक्षक के पास सुरक्षित रख दी जाती ।

अद्‌भुत वस्तुओ की महिमा स्वत ही फैल जाती है और यदि वे लोकोपकारी हो तो वहुत ही शीघ्र । भेरी की महिमा भी शीघ्र ही चारो ओर फैल गई । दाह ज्वर से पीडित एक श्रेष्ठी द्वारका आया। किन्तु उसे कुछ विलव हो गया । कुछ ही दिन पहले भेरी वज चुकी थी । लोगो ने वताया अब छ महीने तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी । किन्तु एक तो वह दाहज्वर का रोगी—जिसमे कि शरीर सदैव ही अगारे के समान तपता रहता है, तीव्र वेदना होती है और फिर धनवान

---

१ वासुदेव और चोर का युद्ध अधम युद्ध था । इसी प्रकार शस्त्ररहित पर शस्त्र से चोट करना, युद्ध मर्यादा के विपरीत अगो—जैसे उदर आदि पर घात करना, भागते हुए, पीठ दिखाते हुए, क्षमा माँगते हुए आदि शत्रुओ पर चोट करना, छिपकर चोट करना आदि—यह सव अधम युद्ध कहलाते हैं ।

श्रेष्ठी; वह इतने समय तक प्रतीक्षा कैसे कर सकता था ? जा पहुँचा सीधा भेरी रक्षक के पास। उसे अपनी स्थिति वताई और भेरी मे से एक छोटा सा टुकडा देने का आग्रह किया। पहले तो रक्षक 'ना, ना' करता रहा किन्तु जब एक लाख दीनार उसको मिल गई तो एक छोटा सा टुकडा काटकर दे दिया। श्रेष्ठी ने उसे घोटकर पिया और नीरोग हो गया। रक्षक ने उतना ही वडा चदन की लकडी का टुकडा लगाकर भेरी को पूरा कर दिया।

अव तो रक्षक को धनवान वनने का और रोगियो को रोगमुक्त होने का अचूक उपाय मिल गया। रक्षक भेरी के टुकडे काट-काटकर देता रहा। शनै -शनै पूरी भेरी ही चन्दन की हो गई। दिव्य भेरी के टुकड़े तो धनवान ले ही गए।

छह माह वाद वासुदेव ने भेरी वजाई तो उसमे से मशक की सी ध्वनि निकली। नगरी की तो वात ही क्या सभाभवन भी न गूँज सका। ध्यानपूर्वक भेरी को देखा तो सब रहस्य समझ गए। रिश्वत-खोर कर्तव्यच्युत रक्षक को प्राण दण्ड दिया और अष्टम तप करके पुन. चमत्कारी भेरी प्राप्त की।

इस वार वासुदेव ने इस रिश्वत का मूल कारण ही मिटाने का प्रयास किया। उन्होने सोचा—रोगमुक्त होने के लिए लोग वाहर से आएँगे ही और लोभ देकर वह अनाचार कराएँगे ही। अत उन्होने वैतरणि और धन्वन्तरि दो वैद्यो को आज्ञा दी कि वे लोगो की व्याधि की चिकित्सा किया करे।

वैतरणि तो भव्य परिणाम वाला था अत लोगो की योग्यता और सामर्थ्य के अनुसार औषधि देता किन्तु धन्वन्तरि पापमय चिकित्सा करता। यदि कोई सज्जन पुरुष कहता भी कि यह औषधि अभक्ष्य है मेरे खाने योग्य नही तो वह टका-सा जवाव दे देता—साधुओ के योग्य वैद्यक शास्त्र मैने नही पढा। मेरे पास जैसी औषधि है लेनी हो तो लो, नही तो कही और जाओ; मैं क्या करूँ।

इस प्रकार वैतरणि और धन्वन्तरि दोनो ही द्वारका मे वैद्यक करने लगे।

एक वार प्रभु अरिष्टनेमि द्वारका आए तो कृष्ण ने पूछा—

—भगवान् ! यह धन्वन्तरि और वैतरणि मरकर कहाँ जाएँगे ?

प्रभु ने वताया—

—धन्वन्तरि तो मरकर सातवे नरक के अप्रतिष्ठान नाम के नरकावास मे जन्म लेगा और वैतरणि विध्याचल अटवी मे युवा यूथपति वानर होगा। वहाँ एक साधु के निमित्त से आठवे सहस्रार देवलोक मे महर्द्धिक देव होगा।

—वह कैसे प्रभो !—वासुदेव ने जिज्ञासा की तो प्रभु ने समाधान दिया—

—एक सार्थ के साथ कुछ मुनि जाएँगे। उनमे से एक मुनि के पग मे काँटा लग जाएगा। अन्य मुनि वही रुकना चाहेगे तो वह मुनि यह कहकर उन्हे जाने के लिए प्रेरित करेगे कि सार्थ भ्रष्ट होकर सभी साधुओ के प्राणो पर वन आएगी। अत्यधिक आग्रह पर अन्य मुनि वहाँ से चले जाएँगे। उस मुनि को अकेला जगल मे देखकर इस वानर को जातिस्मरण ज्ञान होगा। इसे वैद्यक का ज्ञान भी याद आ जाएगा। तव विशल्या और रोहिणी औषधियो द्वारा यह मुनि के काँटे को निकालकर घाव को भर देगा और तीन दिन का अनशन ग्रहण कर देवलोक मे उत्पन्न होगा। वहाँ से आकर मुनि को अन्य साधुओ के पास पहुँचा देगा।

भगवान के वचनो पर विश्वास करके कृष्ण नगरी को लौट आए और प्रभु अन्यत्र विहार कर गए।

१२

कुछ प्रेरक प्रसंग

[१] वीरक

एक वार भगवान अरिष्टनेमि वर्षावास हेतु द्वारका मे समवसृत हुए। कृष्ण ने सहज ही जिज्ञासा की—

—भगवन्! सन्त तो स्वेच्छाविहारी होते है, फिर भी वर्षा ऋतु मे चार मास तक गमन नही करते—क्या कारण है?

प्रभु ने वताया—

—वर्षाऋतु मे त्रस-स्थावर जीवो की अधिक उत्पत्ति हो जाती है। जीवो की विराधना न हो इस कारण अहिसा महाव्रत धारी श्रमण गमनागमन नही करते। एक ही स्थान पर रहकर ज्ञान-सयम की आराधना करते है।

—तव तो मैं भी वर्षा ऋतु मे दिग्विजय आदि के लिए प्रस्थान नही करूँगा, न ही सभा आदि का आयोजन करूँगा। कृष्ण ने निर्णय किया।

इस निर्णय के अनुसार सभा आदि मे कृष्ण का आना-जाना स्थगित हो गया। वे राजमहल से वाहर न निकलते। सेवको को आज्ञा दे दी कि 'किसी को भी राजमहल मे न आने दिया जाय।'

इस आज्ञा का सवसे अधिक प्रभाव हुआ वीरक पर। वह कृष्ण के प्रति विशेष अनुरागी था। उनके दर्शन किये विना भोजन न करता। कृष्ण वाहर निकले नही तो उसे दर्शन भी न हुए। वह राजमहल के वाहर वैठा रहता किन्तु दर्शन न होने से भोजन न करता।

वह अत्यन्त कृश हो गया। वर्षाकाल बीत जाने पर कृष्ण बाहर निकले तो उससे पूछा—

—अरे वीरक ! तुम इतने निर्बल कैसे हो गए ?

वीरक तो कुछ न बोला किन्तु द्वारपालो ने हकीकत कह सुनाई। कृष्ण को बडा दु ख हुआ और वीरक पर दया भी आई। उन्होने उसे निराबाध प्रवेश की आज्ञा दे दी।

इसके बाद कृष्ण अरिष्टनेमि को वदन करने गए तो यतिधर्म सुनकर बोले—

—मैं स्वय तो यतिधर्म का पालन करने मे अपने को असमर्थ पाता हूँ, किन्तु यदि कोई सयम लेना चाहेगा तो उसका अनुमोदन करूँगा और अपनी ओर से प्रेरणा भी दूँगा।

यह अभिग्रह लेकर कृष्ण घर लौट आए। उनकी पुत्रियाँ नमस्कार करने आई। उनसे पूछा—

—स्वामिनी बनोगी या दासी ?

दासी कौन बनना चाहे ? सबने स्वामिनी बनने की इच्छा प्रकट की। कृष्ण ने बताया—

—स्वामिनी बनना है तो सयम ग्रहण करो।

अत उनकी प्रेरणा से सभी ने अरिष्टनेमि के पास जाकर प्रव्रज्या ग्रहण कर ली।

यह देखकर एक रानी ने अपनी पुत्री केतुमजरी को सिखाया कि जब पिता तुमसे पूछे तो दासी बनने की इच्छा प्रकट करना। माता के बहकावे मे आकर पुत्री ने कहा—

—पिताजी ! मैं तो दासी बनूँगी।

इस विपरीत इच्छा को सुनकर कृष्ण विचारने लगे कि इस पुत्री को शिक्षा देनी चाहिए। यदि इसका पाणिग्रहण किसी राजा के साथ कर दिया गया तो अन्य सन्ताने भी इसका अनुसरण करेगी और भोग का फिसलन भरा मार्ग चालू हो जायेगा। इसलिए ऐसा उपाय करूँ कि लोग भोग के कीचड़ मे न फँसे।

यह सोचकर कृष्ण ने उसके विवाह का विचार किया—किसी राजा से नही, वरन् साधारण पुरुष से। उन्हे आस-पास वीरक कौलिक ही दिखाई दिया। एकान्त मे उससे पूछा—

—तुमने कोई वीरता का कार्य किया हो तो बताओ।

—मैंने तो ऐसा कार्य कोई नहीं किया जो कहने योग्य हो। —विनम्रतापूर्वक कौलिक ने उत्तर दिया।

—याद करो कुछ तो किया ही होगा ?—वासुदेव ने जोर दिया।

वीरक याद करके बताने लगा—एक बार मैंने वृक्ष पर बैठे रक्त मुख नाग को पत्थरो से मार डाला था। गाड़ियो के पहियो से बनी हुई नालियो के बहते हुए गन्दे पानी को बाएँ पाँव से रोक दिया था और एक बार बहुत सी मक्खियाँ एक घडे मे घुस गई थी तब मैंने अपने हाथ से उस घडे का मुँह बन्द कर दिया और वे मक्खियाँ भड़फड़ाती रही।

उसके इन कृत्यो का बखान करते हुए कृष्ण ने अपनी सभा मे कहा—

—वीरक ने अपने जीवन मे जो कार्य किये हैं वे इसकी जाति के गौरव से बढकर हैं। इसने एक बार भूमि शस्त्र से रक्त फन वाले नाग को मार दिया। चक्र से खोदी हुई, कलुषित जल को वहन करने वाली गगा नदी को अपने पैर से ही रोक दिया। घटनगर मे रहने वाली घोष करती हुई विशाल सेना को बाएँ हाथ से रोके रखा। इन कार्यो को करने वाला निस्सन्देह क्षत्रिय है। इसलिये मैं अपनी पुत्री केतुमजरी इसे देता हूँ।

केतुमजरी का विवाह वीरक से हो गया।

× × × ×

एक दिन कृष्ण ने वीरक से पूछा—

—कहो भद्र! केतुमजरी उचित रूप से पत्नीधर्म का निर्वाह तो करती है ? तुम्हारी सेवा तो करती है, न!

—कहाँ महाराज ? वह तो आदेश देती रहती है, सेवा करने का कार्य तो मेरा है। वीरक ने कह ही दिया।

—कैसे पति हो तुम, जो पत्नी की सेवा करते हो ?

—स्वामी ! वह आपकी पुत्री है, उसे तनिक भी कष्ट न हो यह देखना मेरा कर्त्तव्य है ।

—नही, वह तुम्हारी पत्नी है। उससे सेवा लेना ही तुम्हारा कर्तव्य है । यदि तुम कर्तव्यच्युत हुए तो घोर दण्ड के भागी होगे ।

श्रीकृष्ण के ये शब्द सुनकर वीरक भय से कॉप उठा । वह समझ गया कि मुझे क्या करना है । घर आकर उसने केतुमंजरी को गृह-कार्य करने की आज्ञा दी ।

पति का आदेशात्मक स्वर केतुमजरी के लिए अनोखी घटना थी । उसने एक बार गौर से देखा उसके चेहरे पर और ऑखे निकाल कर कहने लगी—

—शायद तुम भूल गए हो कि मै वासुदेव की पुत्री हूँ । मुझे आदेश देने का अर्थ है मेरा अपमान ! अपनी मर्यादा का ध्यान रखो ।

—अपनी मर्यादा का ही ध्यान आ गया है आज, मुझे । तुम मेरी पत्नी हो । पत्नीधर्म का पालन करते हुए मेरी सेवा करो ।

—तुम्हारी सेवा और मै करू—यह असम्भव है ।

—तुम्हे करनी ही पडेगी ।

—नही करूँगी ।

वात वढ गई । वीरक ने केतुमजरी को पीट दिया । वह भाग कर अपने पिता के पास गई और करने लगी वीरक की शिकायत ? कृष्ण ने टका-सा उत्तर दे दिया—

—मै क्या करू ? पत्नीधर्म का पालन नही करोगी तो दण्ड पाओगी ही । इसीलिये तो मैंने तुमसे पहले पूछा था स्वामिनी वनोगी या दासी । दासी वनोगी तो सेवा तो करनी ही पडेगी ।

केतुमजरी की ऑखे खुल गई । पिता के चरणो पर गिरकर वोली—

—मैने माताजी के कहने से भूल की । अव मै स्वामिनी वनना चाहती हूँ ।

उसके अत्यधिक आग्रह पर कृष्ण ने वीरक को समझाया और केतुमजरी भगवान अरिष्टनेमि के पास प्रव्रजित हो गई ।

एक बार कृष्ण वासुदेव भगवान अरिष्टनेमि की धर्मसभा मे गए । वहाँ साधु मण्डली को देखकर विचार आया—'आज सभी सन्तो का विधिपूर्वक वदन करूँ ।'

सभी सन्तो को अनुक्रम मे भाव वन्दन करने लगे । देखादेखी वीरक ने भी उनका अनुकरण किया । १८००० सन्तो की वदना के पश्चात बैठे तो भगवान से विनम्र स्वर मे पूछा—

—प्रभो ! मैंने जीवन मे ३६० सग्राम किए है किन्तु कभी ऐसा श्रम नही हुआ जैसा आज ।

भगवान ने बताया—

—वासुदेव अन्य सग्रामो मे तो तुम बाह्य शत्रुओ से लडे थे और इस समय आन्तरिक शत्रुओ से ।

कृष्ण बात का रहस्य न समझ पाए तो भगवान ने स्पष्ट किया—

—सतसमाज के भाववन्दन से तुमने सातवी भूमि का बधन तोडकर तीसरी का कर लिया है, सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई है और तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध हुआ । कर्मप्रकृतियो के बधन तोडने के कारण ही तुम्हे अधिक श्रम हुआ है ।

उत्सुकतावश कृष्ण ने पूछ लिया—

—और इस वीरक को ?

—इसने तो कायक्लेश ही किया । तुम्हे प्रसन्न करने हेतु इसने द्रव्यवदन किया और द्रव्यवदन से काया-कष्ट ही होता है ।—प्रभु ने फरमाया ।

[२] शाम्ब और पालक

शाम्ब और पालक दोनो ही कृष्ण के पुत्र थे । एक दिन वासुदेव ने कहा—जो भी कल प्रात भगवान को पहले वन्दन करेगा उसे मुँह-माँगा पुरस्कार मिलेगा ।

पालक को रात भर नीद नही आई। उसे वासुदेव के दर्पक अश्व को पाने की इच्छा थी। प्रात काल ही उठकर प्रभु के पास जा पहुँचा और जल्दी-जल्दी वदन करके लौट आया।

शाम्ब की प्रवृत्ति दूसरे प्रकार की थी। उसे पुरस्कार का लोभ नही जागा। चैन से सोया। प्रात उठकर शैय्या से उतरा और वही से भक्तिभाव-विभोर होकर नमस्कार किया।

श्रीकृष्ण के पास पहुँचकर पालक ने दर्पक अश्व की माँग की। वासुदेव ने जाकर भगवान से पूछा—

—प्रभो! आपको आज प्रात प्रथम वन्दन किसने किया—शाम्ब ने अथवा पालक ने ?

—भाव से शाम्ब ने और द्रव्य से पालक ने।—प्रभु ने बताया।

निर्णय हो गया। पुरस्कार शाब को मिला।

[३] ढढण मुनि

श्रीकृष्ण की ढढणा नाम की रानी से उत्पन्न ढढणकुमार पुत्र था। वह भगवान अरिष्टनेमि की धर्मदेशना सुनकर प्रव्रजित हुआ। अल्प समय मे ही उग्र तपोसाधना करने लगा।

एक बार श्रीकृष्ण ने पूछा—

—प्रभो! आपके १८००० श्रमणो मे सबसे अधिक उग्रतपस्वी और कठोर साधक कौन है ?

सर्वज्ञ सदैव स्पष्ट और यथार्थवक्ता होते हैं। भगवान ने कहा—

—ढढण मुनि!

चकित होकर वासुदेव ने पुन पूछा—

—अल्प समय मे ही ऐसी कौनसी कठोर साधना की, उन्होंने।

—अलाभ परीषह को जीत लिया। अन्तराय कर्म के प्रबल उदय के कारण उसे निर्दोष भिक्षा नही मिलती, अत वह नही लेता।

प्रभु का यह कथन सुनकर साधुओ ने जिज्ञासा की—

—आप जैसे त्रैलोक्यनाथ का शिष्य और वासुदेव जैसे त्रिखण्डाधिपति का पुत्र होते हुए भी उसे भिक्षा नही मिलती जबकि द्वारका में अनेक उदार गृहस्थ है और वे सदैव साधुओ को भिक्षा देने के लिए उत्सुक रहते हैं।

भगवान ने बताया—

—यह सब होते हुए भी कर्म का उदय प्रबल होता है। पूर्वजन्म मे जब यह मगधदेश मे धान्यपूरक गाँव मे पारासर नाम का ब्राह्मण था तो राजा की भूमि मे खेती करवाता था। उस समय भोजन की बेला होने पर भी यह उनको खाने का अवकाश नही देता था। जिन लोगो का भोजन आ भी जाता था उन्हे भी वहाँ न खाने देता। जब मनुष्यो के साथ इसका ऐसा व्यवहार था तो पशुओ के साथ तो और भी बुरा। उन्हे तो एक-एक मास तक भूखा रखता। इस प्रकार इसने लाभान्तराय कर्म का तीव्र बन्ध कर लिया और अब उसके उदय के कारण इसे निर्दोष भिक्षा नही मिलती।

यह सुनकर ढढण मुनि को बडा पश्चात्ताप हुआ। उन्होने और भी कठोर अभिग्रह लिया—'आज से मैं पर-लब्धि से प्राप्त भोजन ग्रहण नही करूँगा।'

इस अभिग्रह का पालन करते हुए कितने ही दिन गुजर गए। न उन्हे निर्दोप भिक्षा मिली और न उन्होने ग्रहण की।

एक दिन गजारूढ कृष्ण नगरी मे प्रवेश कर रहे थे। सामने से भिक्षा की गवेपणा करते हुए ढढण मुनि दिखाई पड़े। वासुदेव ने गज से नीचे उतर कर मुनि को वन्दन किया। वासुदेव अपने महल मे चले गए और मुनि नगर मे।

यह दृश्य अपने भवन के गवाक्ष मे से एक सेठ देख रहा था। उसने सोचा—'यह मुनि अवश्य ही श्रेष्ठ तपस्वी है, तभी तो वासुदेव ने स्वय हाथी से उतर कर इनकी वन्दना की।'

ज्यो ही मुनि ने उस सेठ के घर मे भिक्षार्थ प्रवेश किया त्यो ही

उसने भक्तिपूर्वक मोदक वहरा दिए। भिक्षा लेकर मुनि भगवान के चरणो मे पहुँचे और विनम्रतापूर्वक जिज्ञासा की—

—प्रभो ! क्या मेरा अन्तराय कर्म क्षीण हो गया है ? क्या यह भिक्षा मेरी अपनी लब्धि की है ?

भगवान ने वताया—

—न तो तुम्हारा अन्तराय कर्म क्षीण हुआ और न ही यह भिक्षा स्व-निमित्त की है। श्रीकृष्ण के प्रभाव से तुम्हे इसकी प्राप्ति हुई है।

मुनि ने सुना तो विना चित्त मे खेद किए एकान्त प्रासुक स्थान मे पहुँचे। विवेक से मोदको को परठने (डालने) लगे। विचार शुद्ध से शुद्धतम हो गए। घनघाती कर्म की जजीरे टूट गई। उन्हे अक्षय केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। तव वे भगवान की प्रदक्षिणा कर केवलि परिषद् मे जा वैठे।

[४] थावच्चापुत्र

थावच्चापुत्र का यह नाम उसकी माता के नाम पर पड़ा। माता का नाम था थावच्चा अत पुत्र का नाम हो गया—थावच्चा-पुत्र। वह किसी सार्थवाह का पुत्र था। किन्तु था वचपन से ही गभीर चिन्तक। एक वार पडौस मे मगल गीतो की ध्वनि सुनाई पडी तो माँ से पूछा—

—ये कर्णप्रिय मधुर गीत क्यो गाए जा रहे है ?

—पडौस मे वालक का जन्म हुआ है, इसलिए। —माँ ने वताया।

वालक थावच्चापुत्र वड़े मनोयोग से सुनने लगा। एकाएक मधुर गायन आक्रन्दन मे परिणत हो गया। उसने पुन. पूछा—

—माँ ! यह आक्रन्दन कैसा ? वडा भयानक लग रहा है।

आँखो मे आँसू भरकर माँ ने वताया—

—अभी-अभी जिस वालक का जन्म हुआ था उसकी मृत्यु हो गई है।

—माँ ! लोग जन्म पर गाते और मृत्यु पर रोते क्यो हैं ?

—बेटा ! जन्म होने पर प्रसन्नता और मृत्यु पर दु ख जो होता है ।

—जब मैं मरूँगा तो तुम्हे भी दु ख होगा, तुम भी रोओगी ।

अबोध बालक की यह बात सुनकर माँ का हृदय भर आया। उसकी आँखो से आँसू बहने लगे। पुत्र ने सहज बाल-चपलता से कहा—

—अभी तो मैं मरा नही और तुम रोने लगी ।

माँ ने लाल को अक मे भर लिया और बोली—

—मृत्यु से भी अधिक दु खदायी उसका विचार है । तू ऐसी बाते मत किया कर । मुझे कष्ट होता है ।

—अच्छा ! मैं फिर कभी ऐसी बात नही करूँगा । पर यह तो बता दे कि क्या मैं कभी नही मरूँगा ।

माँ ने ठण्डी साँस लेकर कहा—

—पुत्र ससार मे अमर कौन है ? जो पैदा हुआ है वह एक न एक दिन अवश्य मरेगा । पर अब तू जा, खेल । फिर कभी ऐसी बात मत करना ।

बालक थावच्चापुत्र खेल मे लग गया किन्तु मृत्यु शब्द उसके कोमल मानस से न निकल सका ।

समय गुजरता गया और वह युवक हो गया ।

एक बार भगवान अरिष्टनेमि की देशना सुनकर वह प्रतिबुद्ध हुआ और माता से सयम लेने का आग्रह करने लगा। माँ ने बहुत समझाया-बुझाया पर जब वह न माना तो अन्त मे राजी हो गई और अभिनिष्क्रमण उत्सव मनाने हेतु छत्र, चँवर आदि कृष्ण के पास माँगने गई। उन्होने कहा—

—तुम चिन्ता न करो। मैं स्वय उसका अभिनिष्क्रमण उत्सव करूँगा ।

इसके पश्चात उसकी वैराग्यभावना की दृढता की परीक्षा करने के लिए पूछा—

—थावच्चापुत्र ! तुम श्रमण बनने की अपेक्षा मेरी छत्रछाया मे रहकर काम-भोगो का सेवन करो । मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा ।

—क्या आप वृद्धावस्था और मृत्यु से भी मेरी रक्षा कर सकेगे ? थावच्चापुत्र ने प्रश्न किया।

इस प्रश्न पर वासुदेव मौन हो गए और थावच्चापुत्र प्रव्रजित।

(ज्ञातासूत्र, अ० ५)

[५] श्रीकृष्ण और पिशाच

एक समय श्रीकृष्ण, बलदेव, सात्यकि और दारुक—ये चारो वन विहार को गए। भयकर वन मे ही सूर्यास्त हो गया। प्रगाढ अधकार के कारण नगर लौटना सभव न था अत एक विशाल वृक्ष के नीचे विश्राम करने का विचार किया। सभी थके-हारे थे किन्तु वन मे सुरक्षा भी होनी आवश्यक थी—कही कोई हिंसक पशु न आ जाय। अत निश्चित हुआ कि एक-एक व्यक्ति एक-एक पहर तक जाग कर पहरा दे और बाकी तीन आराम से सो जायँ।

इस व्यवस्था के अनुसार दारुक ने निवेदन किया—

—प्रथम प्रहर मेरा है, आप तीनो सुख से नीद ले।

सभी ने उसकी बात स्वीकार की और सो गए। दारुक पहरा देने लगा। कुछ समय पश्चात ही वहाँ एक भयकर पिशाच आया और बोला—

—दारुक ! मैं बहुत दिन से भूखा हूँ। मुझे भोजन नही मिला है। तुम अपने प्राण बचाओ और मुझे इन तीनो को खा लेने दो।

परन्तु दारुक पिशाच की इस इच्छा को कहाँ स्वीकार करने वाला था ? उसने गर्जते हुए कहा—

—अरे पिशाच ! मेरे जीवित रहते खाना तो बहुत दूर, तू इनको छू भी नही सकता।

—खा तो मैं जाऊँगा ही। तुम चाहो तो मेरी बात मान कर अपने प्राण बचा सकते हो। —पिशाच ने चाल चली।

—तू यहाँ से चला जा, क्यो व्यर्थ ही काल के गाल मे जाना चाहता है। —दारुक ने गर्वोक्ति की।

—तो मै तुझे ही खा जाऊँगा।

—शक्ति हो तो युद्ध कर।

पिशाच ने चुनौती स्वीकार कर ली। दोनो युद्ध करने लगे। ज्यो-ज्यो दारुक का क्रोध वढता गया त्यो-त्यो पिशाच अधिकाधिक बल-शाली होता गया। दारुक थक गया, परन्तु पिशाच पर विजय न प्राप्त कर सका। उसे काफी चोटे भी आई। प्रथम प्रहर व्यतीत हो गया और पिशाच अन्तर्धान।

द्वितीय प्रहर प्रारम्भ होते ही सात्यकि उठकर पहरा देने लगा और दारुक सो गया। वह इतना निढाल हो गया था कि पिशाच के बारे मे सात्यकि को कुछ बता भी न सका।

सात्यकि को पहरा देते कुछ ही समय गुजरा कि पिशाच फिर आ धमका। सात्यकि भी अपने साथियो की प्राण-रक्षा के लिए जी-जान से लड़ने लगा, किन्तु पिशाच परास्त न हुआ।

तीसरे पहर बलदेव भी पिशाच से लडते रहे पर स्थिति वही रही। वे भी थककर निढाल हो गए।

चौथे पहर श्रीकृष्ण पहरा देने लगे। पिशाच फिर आया। शात-भाव से कृष्ण ने पूछा—

—भाई! तुम कौन हो और यहाँ क्यो आए हो?

—मैं पिशाच हूँ। कई दिन से भूखा हूँ। क्षुधा की ज्वाला से मैं क्रोधान्ध हो रहा हूँ। आज मुझे भाग्य से वढिया भोजन मिला है। —पिशाच ने श्रीकृष्ण के तीनो सोते हुए साथियो की ओर सकेत किया।

कृष्ण उसकी इच्छा समझ गए। उन्होने दृढ स्वर मे प्रतिवाद किया। किन्तु मानव और पिशाच के बलाबल को जानकर शान्त भाव से खडे रहे। उनकी शाति और दृढता को देखकर पिशाच को क्रोध आ गया। वह युद्ध हेतु आगे वढा। कृष्ण ने कहा—

—पिशाच! तुम बहुत बलशाली हो, गजब के योद्धा हो।

इन मधुर वचनो ने पिशाच की क्रोधाग्नि मे घी का काम किया। वह और भी कुपित हो गया। ज्यो-ज्यो उसका क्रोध बढा त्यो-त्यों

बल क्षीण होता गया। कृष्ण मुसकराते रहे। वे जानते थे—उवसमेण हणे कोह। पिशाच अपनी ही क्रोधाग्नि मे जलकर क्षीण-बलहीन हो गया। वह उनके चरणो मे आ गिरा और बोला—

—कृष्ण ! तुमने मुझे जीत लिया। मै तुम्हारा दास हूँ।

तब तक चौथा प्रहर भी समाप्त हो चुका था। प्रात. की प्रथम किरण के साथ सात्यकि, दारुक और बलदेव भी उठ बैठे। उनकी दशा बुरी थी। सभी लोहूलुहान और घायल थे। कृष्ण ने पूछा—

—आप सब लोगो की यह दशा कैसे हुई ?

—रात को पिशाच आया था। उससे युद्ध का परिणाम है।

—युद्ध तो मैंने भी किया। —कृष्ण ने कहा।

सभी आश्चर्य से उनके अक्षत शरीर को देखने लगे। तभी कृष्ण ने कहा—

—साथियो ! तुम्हे युद्धकला का समुचित ज्ञान नही है। क्रोध को सदा मधुर वचन और उपशात भाव से जीतना चाहिए। जिस पिशाच को तुम युद्ध मे नही जीत सके, वह क्षमा, मधुर वचन और उपशम भाव के अमोघ अस्त्र से विजित यहाँ पडा है।

सभी ने कृष्ण की महानता की सराहना की।

—उत्तराध्ययन २।३१ की टीका

विशेष—थावच्चापुत्र का वर्णन ज्ञाताधर्मकथा, श्रुतस्कन्ध १, अध्ययन ५ मे भी आया है। वहाँ इतना उल्लेख और है कि उन्होंने प्रव्रजित होने के पश्चात भगवान अरिष्टनेमि से हजार साधुओ के साथ जनपद विहार की आज्ञा माँगी। भगवान की आज्ञा मिलने पर वे शैलकपुर नगर मे पहुँचे और वहाँ के राजा शैलक को उपदेश देकर पाँच सौ मन्त्रियो सहित श्रमणोपासक बनाया।

सौगन्धिका नगरी (विहार जनपद) मे शुक परिव्राजक को तत्त्व ज्ञान देकर प्रव्रजित किया।

कुछ काल बाद राजा शैलक भी प्रव्रजित होकर मुक्त हुआ।

—ज्ञाताधर्मकथा, श्रु० १, अ० ५

१३ द्वारका-दाह

सहस्राम्रवन मे भगवान अरिष्टनेमि की वैराग्यपरक धर्मदेशना सुनकर कृष्ण विचारने लगे—धन्य है, जालि, मयालि, उवयालि आदि यादवकुमार जिन्होंने युवावस्था मे सयम ग्रहण करके आत्म-कल्याण का पथ ग्रहण किया और एक मैं हूँ, जो काम-भोगो से विरक्त ही नही हो पा रहा हूँ। यो तो अर्द्धचक्री हूँ किन्तु प्रव्रज्या मे कितना असमर्थ ?

अन्तर्यामी भगवान ने कृष्ण के हार्दिक भावो को जानकर कहा—

—कृष्ण ! सभी वासुदेव सदैव कृत-निदान होते हैं अत. वे सयम पथ पर चल ही नही सकते।

—तो क्या मैं भी सयम नही ले सकता।—कृष्ण ने सविनय पूछा।

—ऐसा ही है।

अब कृष्ण को और भी चिन्ता हुई। वे अपने मरण के प्रति जिज्ञासु हो गए। पूछा—

—प्रभो ! मेरा मरण किस प्रकार होगा ?

—तुम्हारे भाई जराकुमार के द्वारा।—प्रभु ने बताया।

—क्या द्वारका मे ही ?

—नही, द्वारका तो पहले ही विनष्ट हो जायगी।

—कारण ?

—मदिरा, द्वीपायन और अग्नि ही इसके विनाश के कारण होगे।

द्वारका का विनाश सुनकर सभी यादव चिन्तित हो गए। कृष्ण ने ही पुन. पूछा—

—प्रभो ! स्पष्ट बताइये कि द्वारका के विनाश में ये तीनो किस प्रकार कारण बनेगे। यह द्वीपायन कौन है ?

प्रभु बताने लगे—

शौर्यपुर के बाहर परासर नाम का एक तापस रहता है। उसने यमुना द्वीप मे जाकर एक निम्न कुल की कन्या के साथ सबध स्थापित किया था। उससे द्वीपायन नाम का पुत्र हुआ है। यादवो के प्रति स्नेह के कारण वह द्वारका के समीप रहने लगेगा। ब्रह्मचर्य को पालने वाला वह ऋषि एक बार तपस्यारत बैठा होगा तब यादव कुमार मदिरा के नशे मे उन्मत्त होकर उसे उत्पीडित करेंगे और वह क्रोधान्ध होकर द्वारका को जलाकर भस्म कर देगा।

उस समय तुम और बलभद्र बच निकलोगे। तब दक्षिण दिशा मे पाडुमथुरा जाते हुए वन मे जराकुमार के बाण से तुम्हारा प्राणान्त हो जायगा और तुम तीसरी बालुकाप्रभा पृथ्वी मे उत्पन्न होओगे।

तीसरी पृथ्वी मे उत्पन्न होने की बात सुनकर श्रीकृष्ण के मुख पर खेद की रेखाएँ उभर आई। तब अरिष्टनेमि ने कहा—

—दु खी मत हो कृष्ण ! तृतीय पृथ्वी से निकल कर तुम जबूद्वीप के भरतक्षेत्र मे पुड्र जनपद के शतद्वार नगर मे उत्पन्न होगे। उस समय तुम अमम नाम के बारहवे तीर्थंकर होगे।

तीर्थंकर जैसे महागौरवशाली पद की प्राप्ति सुनकर श्रीकृष्ण हर्षित हो गए। तभी बलदेव ने भी अपनी मुक्ति की जिज्ञासा प्रकट की। प्रभु ने बताया—

—यहाँ से कालधर्म प्राप्त कर तुम ब्रह्मदेवलोक मे उत्पन्न होगे। वहाँ से च्यवकर मनुष्य होगे, फिर देव और तब मनुष्य भव प्राप्त करके अमम तीर्थंकर के शासनकाल मे मुक्त हो जाओगे।

बलदेव भी सतुष्ट हो गए किन्तु जराकुमार द्वारा कृष्ण की मृत्यु अन्य यादव न भूल सके। वे उसे हेय दृष्टि से देखने लगे। जराकुमार को भी अपने हृदय मे बडा दु ख हुआ। वह विचारने लगा - मेरे हाथ से भाई की मृत्यु—यह तो घोर पाप है। मुझे चाहिए कि इस नगर को छोड कर इतनी दूर चला जाऊँ कि फिर कभी भी न आ सकूँ। न मैं

पास रहूँगा और न भ्रातृ-हत्या मेरे हाथ से होगी। यह निश्चय करके उसने धनुप-बाण लिए और सर्वज्ञ की वाणी को अन्यथा करने हेतु वन की ओर चला गया।

वासुदेव भी धर्मसभा से उठे और नगर मे आकर मद्यपान का सर्वथा निषेध कर दिया। राजाज्ञा से लोगो ने समस्त मदिरा कदव वन की कादवरी गुफा मे प्रकृति-निर्मित शिलाकुडो मे फेक दी। नगर मे मदिरापान वन्द हो गया और प्रजा धर्मनिष्ठ जीवन विताने लगी।

द्वीपायन को भी कर्ण-परपरा से भगवान की भविष्यवाणी ज्ञात हुई तो वह द्वारका की रक्षा के निमित्त नगर के वाहर आकर तपस्या करने लगा।

प्रभु की देशना सुनकर वलभद्र का सिद्धार्थ नाम का सारथी प्रवुद्ध हुआ। उसने वलभद्र से विनती की—

—स्वामी! अव मुझे आज्ञा दीजिए, मैं सयम ग्रहण करना चाहता हूँ।

वलभद्र ने उसे स्वीकृति देते हुए कहा—

—सिद्धार्थ! तुम मेरे सारथी ही नही, भाई जैसे हो। तुमने प्रव्रजित होने की वात कही सो रोकूँगा नही। यदि तुम देव वन जाओ और मैं कदाचित कभी मार्ग-भ्रष्ट हो जाऊँ तो भाई के समान मुझे प्रतिवोध अवश्य देना।

सिद्धार्थ ने स्वामी की इच्छा शिरोधार्य की और प्रव्रजित होकर छह मास तक तपस्या करके स्वर्ग गया।

× × ×

शिलाकुडो मे पडी-पडी मदिरा अधिक नशीली भी हो गई और स्वादिष्ट भी। एक वार वैशाख की गर्मी मे प्यास से व्याकुल यादव-कुमारो के किसी सेवक ने उसे पी लिया। उत्कृष्ट स्वाद से लालायित होकर एक पात्र भरकर वह उनके पास लाया। यादवकुमारो ने पूछा—

—ऐसी उत्तम मदिरा तुझे कहाँ से मिल गई? द्वारका मे तो मद्यपान निषिद्ध है।

—कदव वन की कादवरी गुफा मे विशाल भडार है।—सेवक ने वताया।

यादवकुमारो को वहुत दिन वाद मदिरा पीने को मिली थी। वे लालायित हो उठे। सीधे कदव वन मे जा पहुँचे और मद्यपान की गोष्ठी ही आयोजित कर डाली। सभी ने छककर मदिरा पी और उत्सव सा मनाते हुए नगर की ओर चल दिये।

सयोग से द्वीपायन ऋषि पर उनकी दृष्टि पडी। देखते ही क्रोव आ गया। नशे मे अवे तो थे ही। वोले—

—अरे! इसी के कारण तो द्वारका का विनाश होगा। इसे मार-पीट कर खतम कर डालो।

वस, सवके सव ऋषि को मारने लगे। कोई हाथ से और कोई लात से। कुछ देर तक तो ऋषि पिटते रहे किन्तु जव मारने वाले रुके ही नही और पीडा असह्य हो गई तो उन्होने सपूर्ण द्वारका को भस्म करने का निदान कर लिया।

ऋषि को अधमरा छोडकर यादवकुमार नगर मे आ गये।

कृष्ण को ज्यो ही इस घटना का पता लगा त्यो ही अग्रज वलभद्र के साथ द्वीपायन के कोप को शात करने हेतु जा पहुँचे। क्षमा माँगते हुए वोले—

—हे ऋषि! यादवकुमारो की धृष्टता और उद्दण्डता के लिए मै क्षमा माँगता हूँ। आप भी शात होकर उन्हे क्षमा कर दीजिए।

—वासुदेव! तुम्हारे मधुर वचन मेरी कोपाग्नि को और भी भड़का रहे हैं। तुम्हे कुमारो को पहले ही रोकना चाहिए। क्या यही तुम्हारा राजधर्म है कि तपस्वियो को ताडना दी जाय।—तपस्वी द्वीपायन ने सकोप कहा।

—मैं कुमारो को दण्डित करने का वचन देता हूँ। आप

—दण्डित तो मैं करूँगा, सपूर्ण द्वारका को भस्म करके। न द्वारका रहेगी न यादवकुमार।—द्वीपायन ने वात काटकर कहा।

—शात ! शात !! तपस्वी शात होइये । क्रोध रूपी राक्षस जीवन भर की तपस्या को नष्ट कर डालता है ।

—वह तो नष्ट हो ही चुकी, कृष्ण ! मैंने द्वारका-नाश का निदान कर लिया है ।

—अब भी समय है । आलोचना करके निदान को मिथ्या कर डालिए ।—कृष्ण ने विनम्र स्वर मे कहा ।

— नही ! अब यह नही हो सकता । शात-तपस्वी की क्रोधाग्नि किस प्रकार प्रलय के अगारे बनकर बरसती है, यह द्वारका अवश्य देखेगी ।—तपस्वी द्वीपायन की आँखो से अगारे बरस रहे थे ।

कृष्ण कुछ बोलना ही चाहते थे कि बलभद्र ने रोककर कहा—

—वासुदेव ! क्या तुम सर्वज्ञ भगवान अरिष्टनेमि के शब्दो को मिथ्या करना चाहते हो । यह न त्रिकाल मे हुआ है और न होगा ।

श्रीकृष्ण जैसे मिथ्या मोह से जागे । होनी के सम्मुख उन्होने सिर झुका दिया और खिन्न मन वहाँ से चले आये ।

द्वीपायन तपस्वी मरकर अग्निकुमार देवो मे उत्पन्न हुआ । पूर्वभव की शत्रुता का स्मरण करके तुरन्त द्वारका आया किन्तु नगरवासी छट्ठम, अट्ठम तप आदि अनेक धार्मिक क्रियाओ मे लीन रहते थे इसलिए वह कुछ न कर सका । अवसर की खोज मे वह ११ वर्ष तक प्रतीक्षा करता रहा ।

इधर शनै शनै द्वारकावासी भी धर्मपालन मे शिथिल होते गए । उन्होंने भक्ष्याभक्ष्य सेवन प्रारम्भ कर दिया । उन्हे विश्वास हो गया कि अब द्वीपायन कुछ नही बिगाड सकता । इस मिथ्या विश्वास के कारण वे लोग आमोद-प्रमोद मे लीन हो गए । मद्यपान तथा मासाहार भी करने लगे ।

अग्निकुमार देव द्वीपायन तो इसी प्रतीक्षा मे था । उसने उत्पात करना प्रारभ कर दिया । सवर्त वायु के प्रयोग से वन का काष्ठ, घास आदि द्वारका मे एकत्र हो गया । तभी अगारे बरसे और द्वारका जलने लगी । श्रीकृष्ण के अस्त्र-शस्त्र और दिव्य वस्त्र तक जल गए । नगर-

वासी नगर से वाहर निकलने का प्रयत्न करते तो द्वीपायन देव उन्हे उठाकर अग्नि मे होम कर देता । सारा नगर त्राहि-त्राहि करने लगा ।

इस भयकर अग्निकाड और विनाशलीला मे भी कृष्ण अपने माता-पिता का ध्यान न भूले । उन्होने वसुदेव, देवकी और रोहणी को रथ मे विठाया तथा कृष्ण-वलभद्र दोनो भाई चल पडे । अश्व कुछ ही कदम चल सके कि द्वीपायन देव ने उन्हे स्तभित कर दिया । अश्वो को वही पर छोडा और दोनो भाई रथ को खीचकर जैसे-तैसे नगर-द्वार के समीप तक लाए । तभी रथ टूट गया । भीपण ताप से कराहते हुए माता-पिता ने पुकार की—अरे वेटा कृष्ण-वलराम ! हमे वचाओ ! माता-पिता का आर्तनाद हो ही रहा था कि नगर-द्वार वन्द हो गया । वलभद्र ने आगे वढ़कर पाद-प्रहार से द्वार को तोड डाला और माता-पिता को लेने लपके । तभी द्वीपायन देव ने प्रगट होकर कहा—

—हे कृष्ण ! हे वलराम ! तुम्हारा परिश्रम व्यर्थ है । मैं वही द्वीपायन तपस्वी हूँ । सिर्फ तुम दोनो ही जीवित निकल सकते हो । वाकी सभी को इस अग्नि मे भस्म होना ही पड़ेगा । इसके लिए ही तो मैंने अपना सम्पूर्ण तप वेचा है और ग्यारह वर्ष तक प्रतीक्षा की है ।

देव की वात पर दोनो भाइयो ने तो ध्यान दिया नही किन्तु वसुदेव, रोहिणी और देवकी ने समवेत स्वर मे कहा—

—पुत्रो ! अव तुम चले जाओ । तुम दोनो जीवित हो तो समस्त यादवकुल ही जीवित है । तुमने हमे वचाने का वहुत प्रयास किया, किन्तु हमारी मृत्यु इसी प्रकार है । अव हम सथारा लेते है ।

यह कह कर तीनो ने भगवान अरिष्टनेमि की शरण ग्रहण की, चारो प्रकार का आहार त्याग कर सथारा लिया और महामन्त्र नव-कार का जाप करने लगे । आकाश से अगारे वरस ही रहे थे । तीनो अपनी आयु पूर्ण करके स्वर्ग गए ।

माता-पिता जल रहे थे, और त्रिखण्डेश्वर, महावली, नीति-निपुण श्रीकृष्ण खडे-खडे देख रहे थे—विवश निरुपाय । वारह योजन लम्बी

और नौ योजन चौडी वासुदेव की नगरी द्वारका धू-धू करके जल रही थी। जिस नगरी को वासुदेव ने अपने तप के प्रभाव से सुस्थित देव द्वारा निर्मित कराया था। कुबेर ने जिसे अनुपम रत्नो और अक्षय कोषो से परिपूर्ण किया था। जो इन्द्रपुरी से होड लगाती थी। जिसकी समृद्धि और सम्पन्नता समस्त दक्षिण भरतार्द्ध मे विख्यात थी। वही द्वारका अग्नि-लपटो मे घिरी हुई थी।

वासुदेव के दिव्य अस्त्र-शस्त्र जो उनके पुण्य योग से प्रकट हुए थे, उनके दिव्य आभूषण, वस्त्र सव कुछ अग्नि मे स्वाहा हो रहा था।

यह था मद्यपान का भयकर दुष्परिणाम।

निराश और विवश कृष्ण-बलराम नगर मे वाहर निकलकर जीर्णोद्यान मे खडे हो गए और द्वारका को जलती हुई देखने लगे। कृष्ण अत्यन्त दुखी स्वर मे वोले—

—भैया! मुझ से अव यह विनाशलीला नही देखी जाती। कही और चलो।

फिर कुछ सोचकर स्वय ही वोले—

—किन्तु कहाँ जाएँ अनेक राजा तो हमारे विरोधी हो गए है?

—पाडव हमारे परम-स्नेही है। उन्ही के पास चलना चाहिए। —बलराम ने सुझाया।

—मैंने उन्हे भी निष्कासित कर दिया था। क्या वहाँ चलना उचित होगा?—कृष्ण ने शका की।

—तुम इन शंका को हृदय से निकाल दो। पाडव हमारा स्वागत ही करेगे, निश्चिन्त रहो।—बलराम ने उत्तर दिया।

बलराम की इच्छा स्वीकार करके कृष्ण पाण्डुमथुरा जाने के लिए नैऋत्य दिशा की ओर चल दिए।

जिस समय द्वारका जल रही थी तो बलराम का पुत्र कुब्जावारक महल की छत पर जा खडा हुआ। वह जोर-जोर से कहने लगा—

—इस समय मैं भगवान अरिष्टनेमि का व्रतधारी शिष्य हूँ। भगवान ने मुझे चरम शरीरी और इसी भव से मोक्ष जाने वाला

वताया है। अर्हन्त के वचन कभी मिथ्या नही होते । ये अग्नि ज्वालाएँ मेरा कुछ भी नही विगाड सकती। देखता हूँ मुझे यह अग्नि कैसे जलाती है ?

उसके शब्द सुनकर जम्भृक देव प्रकट हुआ और उसे उठाकर अरिष्टनेमि की शरण मे ले गया। कुमार कुब्जावारक ने वहाँ दीक्षा ग्रहण की।

× × ×

द्वारका छह महीने तक जलती रही। उसमे साठ कुल कोटि और वहत्तर कुल कोटि यादव भस्म हो गये। उसके पश्चात सागर में भयकर तूफान उठा और नगरी जलमग्न हो गई। जहाँ छह माह पूर्व समृद्ध द्वारका थी उस स्थान पर सागर लहराने लगा। द्वारका का नाम निशान भी मिट गया। जल मे से निकली द्वारका जल में ही समा गई।

—अतकृत, वर्ग ५
—त्रिषष्टि० ८।११
—उत्तरपुराण ७२।१७८-१८७ तथा २२१

उत्तरपुराण की विशेपताएँ निम्न है :—

(१) यहाँ द्वारका के विनाश के वारे मे वलभद्र भगवान अरिष्टनेमि से पूछते हैं।

(२) श्रीकृष्ण ने पहली भूमि मे प्रयाण किया। (श्लोक १८१)

(३) वलभद्र चौथे स्वर्ग मे उत्पन्न होगे। (श्लोक १८३)

१४ वासुदेव-वलभद्र का अवसान

कृष्ण-वलराम दोनो भाई चलते-चलते हस्तिकल्प नगर के समीप जा पहुँचे। कृष्ण को उस समय क्षुधा सताने लगी। वलभद्र से कहा—

—भैया! आप नगर मे जाकर भोजन ले आइये।

वलभद्र ने जाते-जाते कहा—

—मैं जा रहा हूँ किन्तु तुम सावधान रहना।

—आप अपना भी ध्यान रखिए।

—वैसे तो मैं ही काफी हूँ किन्तु यदि किसी विपत्ति में फँस गया तो सिंहनाद करूँगा। तुम तुरन्त चले आना।

यह कहकर वलभद्र नगर मे चले गए। उस नगर का नरेश था धृतराष्ट्रपुत्र अच्छदन्त। श्रीकृष्ण-जरासंध युद्ध मे कौरवो ने जरासध का साथ दिया था। इस कारण वह कृष्ण-वलराम से शत्रुता मानता था।

नगर मे प्रवेश करके वलभद्र भोजन की तलाश करने लगे। उनके अनुपम रूप को देखकर नगरवासी चकित रह गए। वे सोचने लगे—यह स्वय वलभद्र हैं, अथवा उन जैसा ही कोई और? तभी विचार आया—द्वारका तो अग्नि मे जलकर नष्ट हो गई हे। अवश्य ही यह वलभद्र हैं।

वलभद्र ने अपनी नामाकित मुद्रिका देकर हलवाई से भोजन लिया। हलवाई अँगूठी को देखकर अचकचाया। उसने वह मुद्रिका राजकर्मचारियो को दे दी। राजकर्मचारी उसे राजा के पास ले गए और वोले—

—महाराज ! वलभद्र सरीखे एक व्यक्ति ने यह मुद्रिका देकर हलवाई से भोजन सामग्री खरीदी है। वह कोई चोर है अथवा स्वय वलभद्र, हमे यह नही मालूम। जैसी आज्ञा हो, वैसा ही किया जाय।

अच्छदन्त ने मुद्रिका को उलट-पुलट कर देखा और निश्चय कर लिया कि वह व्यक्ति वलभद्र ही है। वदला लेने का अच्छा अवसर जानकर उसने नगर का द्वार वन्द करवा दिया और स्वय सेना सहित बलभद्र को मारने आ पहुँचा। वलभद्र चारो ओर से घिर गए। उन्होने भोजन एक ओर रखा और सिंहनाद करके सेना पर टूट पड़े।

वलभद्र का सिंहनाद ज्यो ही कृष्ण के कानो मे पडा वे दौडे हुए आए। नगर के वन्द दरवाजे को पाद-प्रहार से तोड डाला और शत्रु पर टूट पडे। दोनो भाइयो ने मिलकर शत्रु सेना का बुरी तरह सहार किया और अच्छदन्त के मद को धूल मे मिला दिया।

अपना पराभव होते ही अच्छदन्त कृष्ण के चरणो मे आ गिरा तब उन्होने उसे उठाते हुए कहा—

—अरे मूर्ख ! हमारे भुजवल को जानते हुए भी तूने यह दुस्साहस किया। हमारी भुजाओ का वल कही चला नही गया है। फिर भी हम तेरा अपराध क्षमा करते है। जा और सुखपूर्वक शासन कर।

अच्छदन्त उन्हे प्रणाम करके राजमहल की ओर चला गया और दोनो भाई नगर से वाहर निकल आए। उद्यान मे वैठकर भोजन किया और दक्षिण दिशा की ओर चलते हुए कौशाम्बी वन मे आ पहुँचे।

मार्ग की थकावट और गर्मी की तीव्रता से कृष्ण का गला सूखने लगा। अनुज को तृषातुर देखकर वलराम ने कहा—

—भाई ! तुम इस वृक्ष के नीचे विश्राम करो। मैं अभी जल लेकर आता हूँ।

यह कहकर वलराम तो पानी लाने चले गए और कृष्ण वृक्ष के नीचे लेट गये। उनका एक पाँव दूसरे पर रखा था। थकावट के कारण उन्हे नीद आ गई।

संयोग से उसी समय व्याघ्रचर्म धारण किए, हाथ मे धनुष-बाण लिए जराकुमार उधर आ निकला। क्षुधा तृप्ति के लिए पशुओ का शिकार करना ही उसका कार्य था। श्रीकृष्ण के पीताम्बर को दूर से ही देखा तो उसे भ्रम हुआ कि कोई मृग बैठा है। उसने एक तीक्ष्ण तीर मारा। बाण लगते ही कृष्ण की निद्रा भग हो गई, वे उठ बैठे। उच्च स्वर मे कहा—

—यह बाण किसने मारा है ? बिना नाम-गोत्र बताए प्रहार करना अनुचित है। बताओ तुम कौन हो ?

जराकुमार ने वृक्ष की ओट से ही उत्तर दिया—

—हे पथिक ! मैं दसवे दशार्ह वसुदेव और जरादेवी का पुत्र जराकुमार हूँ। श्रीकृष्ण और बलराम मेरे अग्रज है। इस वन मे मुझे रहते बारह वर्ष हो गये है। भगवान अरिष्टनेमि की भविष्यवाणी सुनकर अग्रज कृष्ण की रक्षा हेतु वनवास कर रहा हूँ। आज तक मैंने इस वन मे किसी भी पुरुष को नही देखा। तुम बताओ कि तुम कौन हो ?

इस परिचय से कृष्ण के मुख पर हल्की सी मुसकराहट फैल गई। शान्त स्वर मे उन्होने जराकुमार को अपने पास बुलाया और द्वारका-दहन आदि सम्पूर्ण घटनाएँ सुनाकर कहा—

—बन्धु ! होनी बडी प्रबल होती है और सर्वज्ञ के वचन अन्यथा नही होते। तुम्हारा यह वनवास निरर्थक ही रहा।

यह सुनते ही जराकुमार के हृदय मे घोर पश्चात्ताप हुआ। वह कहने लगा—

—धिक्कार है मुझे ! मैंने अपने ही अग्रज को मार डाला।

कृष्ण ने अवसर की गम्भीरता को देखकर उसे समझाया—

—जराकुमार ! शोक मत करो। इस समय यादव कुल मे तुम अकेले ही जीवित हो। यदि बलराम आ गए तो तुम्हे भी मार डालेगे।

—मेरा मर जाना ही अच्छा है। —जराकुमार ने अश्रु बहाते हुए कहा।

—नही तुम्हारे मरते ही यादव कुल की परम्परा नष्ट हो जायगी। वश रक्षा के लिए तुम्हारा जीवन आवश्यक है।

—यह काला मुँह लेकर मै जीवित नही रहना चाहता।

—किन्तु मै चाहता हूँ कि तुम जीवित रहो। यह कौस्तुभमणि लेकर पाडवो के पास चले जाओ और द्वारका एव यादवो की स्थिति वता देना। मेरी ओर से कहना कि मैंने पहले उन्हे जो निष्कासित किया था उसके लिए मुझे क्षमा कर।

कृष्ण ने उसे कौस्तुभमणि देकर पाडुमथुरा जाने का आदेश दिया। अग्रज के आदेश से विवश जराकुमार ने मणि ली, वाण निकाला और वहाँ से चल दिया।

वाण निकलते ही कृष्ण को अपार वेदना हुई। पूर्वाभिमुख होकर पच परमेष्ठी को नमस्कार किया। कुछ समय तक शुभ भावो का विचार करते रहे, फिर एकाएक उन्हे जोश आया और उनका आयुष्य पूरा हो गया। उनकी आत्मा तीसरी भूमि के लिए प्रयाण कर गई।

श्रीकृष्ण वासुदेव सोलह वर्ष तक कुमार अवस्था मे रहे, छप्पन वर्ष माडलिक अवस्था मे और नौ सौ अट्ठाईस वर्ष अर्द्धचक्री के रूप मे, इस प्रकार उनका सम्पूर्ण आयुष्य एक हजार वर्ष का था।[१]

---

१ (क) वैदिक ग्रन्थो मे उनकी आयु १२० वर्ष मानी गई है। चिंतामणि विनायक वैद्य की मराठी पुस्तक 'श्रीकृष्ण चरित्र' के अनुसार उनका जन्म ३६२८ विक्रमपूर्व हुआ और मृत्यु ३००८ वि० पू० मे। वहाँ मृत्यु के स्थान पर तिरोधान माना गया है—इसका अभिप्राय है देखते-देखते अदृश्य हो जाना।

(ख) द्वारका-दाह और कृष्ण की मृत्यु एव यादवो के अन्त के वारे मे श्रीमद्भागवत मे कुछ भिन्न उल्लेख है—

महाभारत के युद्ध मे अनेक वीर और गुणी यादवो की मृत्यु हो चुकी थी। जो शेप थे वे भी दुर्व्यसनी अनाचारी। वृद्धावस्था के कारण कृष्ण-वलराम का उन मदान्ध यादवो पर प्रभाव भी

बलराम जल लेकर लौटे तो उन्होंने कृष्ण को निश्चल पड़े देखा।

कम हो गया था। द्वारका के समीप ही समुद्र और रैवतक पर्वत के मध्य प्रभास क्षेत्र में पिंडारक नाम का स्थान था। वहाँ द्वारका-वासी आमोद-प्रमोद के लिए जाया करते थे। एक बार विशाल-उत्सव हुआ। मद्यपान से उन्मत्त द्वारकावासी परस्पर लड़ने लगे और वहीं मर गए। कृष्ण, बलराम, सारथी दारुक, उग्रसेन, वसुदेव, कुछ स्त्रियाँ और बाल-बच्चे ही जीवित लौटे। इस विनाश लीला से वे बहुत दुखी हुए उन्होंने प्राण त्याग दिये। श्रीकृष्ण दारुक के साथ द्वारका लौटे। उन्होंने दारुक को हस्तिनापुर जाने का आदेश दिया और कहा कि अर्जुन यहाँ आये और अवशेष यादव-वृद्धों और स्त्रियों को हस्तिनापुर ले जाए।

दारुक हस्तिनापुर चला गया और कृष्ण अग्रज बलराम के देहावसान से दुखी होकर एक पीपल के वृक्ष के नीचे जा बैठे। जराकुमार नाम के व्याध ने उन्हें बाण मारा। कृष्ण ने उसे स्वर्ग प्रदान किया।

इसके पश्चात उनके चरण चिन्हों को देखता हुआ दारुक वहाँ आया। उसके देखते-ही-देखते गरुड़ चिह्न वाला उनका रथ अश्वों सहित आकाश में उड़ गया और फिर दिव्य आयुध भी चले गए। सारथी के विस्मय को दूर करते हुए कृष्ण ने कहा—'तुम द्वारका जाओ और शेष यादवों से कहो कि वे अर्जुन के साथ चले जायँ, क्योंकि मेरी त्यागी हुई द्वारका को समुद्र अपने गर्भ में समेट लेगा।' इसके पश्चात कृष्ण का तिरोधान हो गया।

अर्जुन ने द्वारका की दुर्दशा देखी तो बहुत दुखी हुआ। कृष्ण-बलराम तो समाप्त हो ही चुके थे। शेष यादवों, स्त्रियों और अनिरुद्ध के पुत्र वज्र को लेकर हस्तिनापुर चल दिया।

[**श्रीमद्भागवत, स्कन्ध 11, अध्याय 30, श्लोक 10–48**]

द्वारका निर्जन और सूनी होगई। समुद्र में भयंकर तूफान आया और महानगरी द्वारका जलमग्न हो गई।

[श्रीमद्भागवत 11/31/23]

एक-दो बार पुकारा तो भी स्पन्दन न हुआ। हाथ पकडकर हिलाया-डुलाया किन्तु कृष्ण न उठे तो उन्होने समझा रूठ गए है। कातर स्वर मे कहने लगे—भाई ! मुझे जल लाने मे देर हो गई तो तुम रूठ गए। पर क्या भाई से इतने नाराज होते है ? उठो और जल पी लो।

निश्चल-निष्प्राण देह क्या उत्तर देती ? बलराम के सभी प्रयास विफल हो गए तो उन्होने मृत कलेवर को उठाकर कधे पर रखा और जगलो मे भटकने लगे। वे स्वय भी खाना-पीना भूल गए, अपनी सुध-बुध खो बैठे। निरतर कृष्ण-कृष्ण की रट लगाए रहते। मोह के तीव्र आवेग मे चिरनिद्रा को उन्होने सामान्य निद्रा समझ लिया था। इस प्रकार छह मास का समय व्यतीत हो गया।

बलराम का सारथी सिद्धार्थ जो सयम पालन करके देव बना था उसने अवधिज्ञान से उनकी यह दशा देखी तो उन्हे प्रतिबोध देने वहाँ आया। उसने अपनी माया से एक पाषाण-रथ का निर्माण किया। उसमे बैठकर वह पहाड से उतरने लगा। रथ लुढकता हुआ धडाम से विषम स्थान मे गिरा और चूर-चूर हो गया। देवरूप सारथी उन पाषाण-खडो को पुन जोडने का उपक्रम करने लगा।

यह सब कौतुक बलराम देख रहे थे। उन्होने कहा—

—मूर्ख ! क्या ये पाषाण-खंड पुन जुड सकेगे ?

देव ने प्रत्युत्तर दिया—

—जब मरा हुआ व्यक्ति पुन जीवित हो सकता है तो यह रथ क्यो नही तैयार हो सकता ?

बलराम ने मन मे सोचा कि 'यह तो वज्रमूर्ख है कौन मुँह लगे' और अनसुनी करके आगे बढ गए।

देव ने एक किसान का रूप रखा और पत्थर पर कमल उगाने लगा। बलराम ने देखकर कहा—

—अरे मूढ ! क्या कभी पत्थर पर भी कमल लगते है ?

—तो क्या कभी मुर्दे भी जीवित होते है ?—देव का प्रत्युत्तर था।

बलराम ने मुँह बिचकाया और आगे बढ गए। देव भी आगे

बढ़ा और एक सूखे ठूँठ को पानी पिलाने लगा। बलराम ने व्यंगपूर्वक कहा—

—अरे ठूँठ को पानी पिलाने से क्या लाभ ?

—हरा हो जायगा।

—वज्रमूर्ख है तू। यह कभी हरा नही हो सकता।

—क्यो नही हो सकता ? जब तुम्हारा मृत भाई जीवित हो सकता है तो यह ठूँठ हरा क्यो हो सकता ?

बलराम पुन सुनी-अनसुनी करके आगे बढ गए। देव ने भी एक ग्वाले का रूप बनाया और एक मरी गाय को घास खिलाने लगा। बलराम ने उससे कहा—

—कही मरी गाय भी घास खाती है ? जीवित होती तो खाती। क्यो व्यर्थ परिश्रम कर रहे हो ?

—जब तुम अपने भाई के मृत कलेवर को छह माह से ढोने का परिश्रम कर रहे हो तो ....

—क्या मेरा भाई मृत है ? बलराम ने सरोष कहा।

—तो क्या मेरी गाय मृत है ?—देव का प्रतिप्रश्न था।

—जब घास नही खाती, हलन-चलन नही करती तो मृत ही है।

—यह लक्षण तो तुम्हारे भाई के शरीर के भी है। वह भी तो नही खाता, हलन-चलन भी नही करता, फिर वह कैसे जीवित है ?

बलराम मौन होकर सोचने लगे। देव ने ही पुन कहा—

—विश्वास न हो तो स्वय परीक्षा कर लो।

देव की बात सुनकर बलराम ने अपने कधे से कृष्ण का शव उतारा और देखने लगे। शव मे से तीव्र दुर्गन्ध आ रही थी। जीवन का कोई लक्षण शेष नही था। वे विचारमग्न हो गए तभी देव ने सिद्धार्थ सारथी का रूप बनाकर बलराम को सबोधित[1] किया—

---

१ (क) आचार्य जिनसेन के हरिवशपुराण के अनुसार—

'जरत्कुमार (जराकुमार) द्वारा श्रीकृष्ण के निधन का समाचार पाकर पाडव माता कुती और द्रौपदी के साथ आते है और बलभद्र से कृष्ण

—हे वलभद्र ! मैं पूर्वजन्म मे आपका सारथी था। सयम पालन के फलस्वरूप स्वर्ग मे देव हुआ हूँ। प्रव्रज्या की अनुज्ञा देते हुए आपने मुझसे कहा कि उचित अवसर पर प्रतिवोध देना। मै इसीलिए आपके पास आया हूँ। आप इस अनर्थकारी मोह को त्यागिए, यथार्थ को पहचानिए और इस शव का अन्तिम सस्कार करके सयम पालन कीजिए। भगवान अरिष्टनेमि ने जो भविष्य कथन किया था, वैसा ही हुआ। इनकी मृत्यु जराकुमार के बाण से हुई है और भ्रातृमोह के कारण छह माह से इस शव को आप ढो रहे है।

सिद्धार्थ के प्रतिबोध से बलभद्र की सुप्त चेतना जागृत हुई। मोह का पर्दा हटा और उन्होने मृत देह का अन्तिम सस्कार कर दिया।

उसी समय सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान ने वलभद्र की इच्छा जानकर एक विद्याधर मुनि को वहाँ भेजा। मुनि ने धर्मोपदेश दिया और वलभद्र प्रव्रजित हो गए।

सिद्धार्थ देव ने मुनियो को भावपूर्वक नमन किया और स्वर्गलोक को चला गया।

प्रव्रजित होकर मुनि वलभद्र घोर तपस्या करने लगे।

एक वार मासखमण के पारणे हेतु वे किसी नगर मे प्रवेश कर रहे थे। वही कुए पर पानी भरने के लिए एक महिला आई थी।

का अन्तिम सस्कार करने का निवेदन करते है। किंतु वलभद्र कुपित हो जाते है। तव पाडव उनकी (वलभद्र की) इच्छानुसार चलने लगे। वर्षावास (चातुर्मास) के पश्चात जव श्रीकृष्ण के शरीर से दुर्गन्ध आने लगी तव सिद्धार्थ देव ने आकर उन्हे प्रतिवोध दिया।

[हरिवंश पुराण, ६३/५४–६८]

(ख) शुभचन्द्राचार्य के पाडवपुराण के अनुसार—

पहले सिद्धार्थ देव आकर वलभद्र को प्रतिवोध देने का प्रयास करता है किन्तु उन पर कोई प्रभाव नही पडता। वाद मे पाडव आते हैं और उन्हे स्नेहपूर्वक समझाते है तव वलभद्र का मोह कम होता है।

[पाडवपुराण, पर्व २२, श्लोक ८७-८९]

उसके साथ उसका वालक भी था। उनके रूप को देखकर महिला वेभान हो गई। घडे के गले मे रस्सी का फदा लगाने के वजाय उसने फदा वच्चे के गले मे डाल दिया। वलभद्र मुनि ने यह अनर्थ देखा तो महिला को सचेत किया और उलटे पैरो वन की ओर लौट गए। उन्होने इस दृश्य को देखकर अपने रूप को धिक्कारा—'वह रूप निकृष्ट है जो ऐसे महान अनर्थ का कारण वने।' उन्होने अभिग्रह ग्रहण किया--'मैं आज से किसी भी ग्राम और नगर मे प्रवेश नही करूँगा। जगल मे ही यदि निर्दोप भिक्षा मिल जायगी तो ग्रहण करूँगा।'

महाभयानक वन मे ऐसे दिव्य तेजस्वी सन्त को देखकर सभी आने-जाने वाले चकित थे। उनके मानस मे भाँति-भाँति के प्रश्न उठते—यह कौन है ? कहाँ से आया है ? किसी मत्र-तत्र की साधना कर रहा है अथवा देवी-देवता की ? जिज्ञासा ने सदेह का रूप धारण किया और किसी काष्ठ ले जाने वाले ने अपनी शका राजा को कह सुनाई। राजा ने तुरन्त सेना सजाई और चल दिया वलभद्र मुनि को मारने।

चतुरगिणी सेना निस्पृह श्रमण के हनन के लिए वनप्रान्तर को कँपाती हुई चल दी। तभी सिद्धार्थ देव को यह सव अवधिज्ञान के वल से ज्ञात हुआ। उसने अपनी शक्ति से अनेक सिह विकुर्वित कर दिए। सिहो की इस सेना को देखते ही राजा भयभीत हो गया। उसने मुनिश्री के चरण पकड लिए। वार-वार अपने अपराध की क्षमा माँगने लगा। उसकी दीन-याचना से सतुष्ट होकर देव ने अपनी माया समेट ली और राजा नगर को वापिस लौट आया।

अहिसा सवको निर्भय वनाती है, शत्रुभाव का नाश करती है। वलभद्र मुनि के आस-पास भी वन के पशु पारस्परिक वैर-भाव भूलकर विचरण करने लगे। एक मृग तो जातिस्मरणज्ञान से अपने पूर्व-भवो को जानकर उनका भक्त ही वन गया। वह जगल मे इधर-उधर घूमता और जहाँ भी निर्दोप आहार प्राप्ति की आशा होती वही उन्हे सकेत से ले जाता।

एक दिन मृग के सकेत से मुनि एक रथवाले के पास पहुँचे । मास-खमण का पारणा था । रथवाला मुनि को देखकर अति प्रसन्न हुआ । विह्वल होकर वह चरणो मे गिर पडा । उदार भावना से उसने आहार-दान दिया । मृग सोच रहा था—रथवाला कितना भाग्यशाली है जो मुनि को दान दे रहा है । मुनि विचार रहे थे—यह श्रावक उत्तम बुद्धि वाला और भद्र-परिणामी है ।

तीनो अपने विचारो में लीन थे कि वृक्ष की एक मोटी शाखा टूट कर अचानक ही गिर पडी और तीनो उसके नीचे दब गए । शुभध्यान से देह त्यागकर तीनो ब्रह्मदेवलोक के पद्मोत्तर नामक विमान मे उत्पन्न हुए ।

—त्रिषष्टि० ८/११-१२
—अन्तकृत, वर्ग ५